* ओ३म् *

आत्म-कथा

—नारायण स्वामी

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी लिखित—

आत्म-कथा

प्रकाशकः—

आर्य-साहित्य-सदन

देहली-शाहदरा

प्रथम संस्करण

सम्वत् २००० वि०

सन् १९४३ ई०

मूल्य २।)

पूर्व्व वचन

आर्य-साहित्य-सदन का यह परम सौभाग्य है कि वह एक वीतराग संन्यासी महात्मा की आत्म-कथा की भेंट को लेकर सर्व-प्रथम प्रजा के समक्ष आया है। हम श्री० रघुनाथप्रसाद जी पाठक और उनके द्वारा श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के आभारी हैं कि हमें इस पवित्र ग्रन्थ-रत्न के प्रकाशन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

साहित्य-सदन ने अपनी इस प्रथम भेंट में स्वामी जी महाराज की पुस्तकों की मूल्य-गत-सहज-सुलभता की चिर प्रतिष्ठित मर्य्यादा को लक्ष्य में रखते हुए इस ग्रन्थ का मूल्य लगभग लागत मात्र रक्खा है। यद्यपि हमने इसके मूल्य की २) की घोषणा की थी तथापि लागत का व्यय बढ़ जाने और इसे सचित्र बनाने के कारण इसका मूल्य २।) रखने के लिए हमें बाधित होना पड़ा है। परन्तु हमारे विज्ञापन के अनुसार जो आर्डर पूर्व्व से हमें प्राप्त हुए थे उन्हें विज्ञापन में उद् घोषित मूल्य अर्थात् २) पर ही पुस्तक दिए जाने की व्यवस्था की गई है। हमें आशा है कि इस असाधारण समय के व्यतीत हो जाने तथा छपाई और कागज़ के सुलभ और सस्ता हो जाने पर यह ग्रन्थ इससे कम मूल्य पर प्रजा के हाथ में पहुँचेगा। हमें

देहली के सुप्रसिद्ध 'चन्द्र प्रिंटिंग प्रेस' के संचालकों एवं कार्य कर्ताओं के प्रति भी आभार प्रकाशित करना है जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन को एक पवित्र कर्त्तव्य समझकर दिन रात एक करके प्रेस के अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी अधिक से अधिक कम समय में छापकर हमें दिया है। यदि प्रेस का सहयोग हमें प्राप्त न होता तो सचमुच हम अभी तक इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में असमर्थ रहते।

देहली शाहदरा
१६-१२-१६४३

ज्ञानचन्द्र 'ज्ञान'
व्यवस्थापक

विषय सूची

विषय पृष्ठ

सातवाँ अध्याय

आठवां अध्याय

नवाँ अध्याय

दसवां अध्याय

ग्यारहवां अध्याय

विषय पृष्ठ

बारहवां अध्याय

तेरहवाँ अध्याय

चौदहवाँ अध्याय

पन्द्रहवाँ अध्याय

विषय पृष्ठ

सोलहवाँ अध्याय

सत्रहवां अध्याय

अठारहवाँ अध्याय

उन्नीसवां अध्याय

विषय पृष्ठ

बीसवां अध्याय

इक्कीसवां अध्याय

बाईसवाँ अध्याय

तेइसवाँ अध्याय

चौबीसवाँ अध्याय

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

छत्तीसवां अध्याय

सैंतीसवां अध्याय

अड़तीसवां अध्याय

विषय पृष्ठ

उनतालीसवां अध्याय

चालीसवां अध्याय

इकतालीसवां अध्याय

विषय पृष्ठ

बयालीसवां अध्याय

तेंतालीसवां अध्याय

सैंतालीसवां अध्याय

अड़तालीसवां अध्याय

उनचासवां अध्याय

आत्म-कथा

पहला अध्याय

प्रारम्भ

एक व्यक्ति, जिसने पारिवारिक साधनों से, किसी प्रकार की भी, उपयोगी उच्च शिक्षा न प्राप्त की हो, किस प्रकार समाज की सेवा करने के योग्य बन सकता है, इसी का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये, इन पृष्ठों के लिखने का साहस किया गया है। आगे के पृष्ठों में अंकित घटनाओं से, इस कथन की पुष्टि होगी। कई सज्जन कह दिया करते हैं कि "हम अयोग्य हैं, किस प्रकार कोई सेवा का कार्य कर सकते हैं?" ऐसे महानुभावों के हृदयों से, इस आत्म-अविश्वास को दूर कर देना, इन पृष्ठों को मुख्यतया इष्ट है। यह आशा और आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि इन पृष्ठों के पाठक, आत्म-विश्वास की उपयोगिता भली भाँति अपने हृदयांकित कर सकेंगे। मैं जब कभी रामायण को पढ़ा करता था तो इस घटना पर देर देर तक विचार करता रहता था कि जब किष्किंधा पर्वत पर रहते हुये रामचन्द्र को निश्चय हो

गया कि रावण से युद्ध करना अनिवार्य है तो क्यों नहीं उन्होंने अयोध्या से, सेना आदि की सहायता मांगी ? अंत में अनेक बार विचार करने पर, यह समझ में आया कि यदि रामचन्द्र ऐसा करते तो उनमें आत्म-विश्वास की कमी पाई जाती जब कि उनमें, इसकी कमी नहीं थी। उन्होंने उसी किष्किंधा के जंगल में, फौज, रसद, युद्ध-सामिग्री हथियार सब कुछ और समुद्र का पुल बांधने के लिये नल और नील जैसे इञ्जिनियरों को भी, जमा कर दिया इससे बढ़ कर आत्म-विश्वास का कोई उदाहरण, कठिनता से मिल सक्ता है। यह और इस प्रकार की अनेक घटनायें थीं, जिन की स्मृति बराबर आते रहने से, मैं आत्म-विश्वास के पथ का पथिक बन गया और यह विश्वास हृदय में हिलोरें मारने लगा कि इस पथ का पथिक, संसार में जो चाहे कर सक्ता है! यही मार्ग था जिसको मैंने दृढता से पकड़ा और उस पर चलने का भर सक यत्न किया।

आर्य समाज में प्रविष्ट होने के बाद, आर्य्य समाज के प्रवर्त्तकके जीते जागते, आत्म-विश्वास पूर्ण चरित्र ने भी मेरे लिये सोने में सुहागे का काम दिया। देश की तत्कालीन घोर अविद्या और ऋषि दयानन्द के तने तनहा, उसके विध्वंस करने के यत्न में लगे होने की घटना पर विचार करते हुये किसका हृदय होगा जो उत्साह से भर पूर होकर वल्लियों न उछलने लगेगा ? इस प्रकार हृदय में अंकुरित आत्म-विश्वास को और भी उत्तेजना मिली।

दूसरा अध्याय

जन्म और शिक्षा आदि

माघ सुदी ५ (वसंत) संवत् १६२२ वै० को मेरा जन्म हुआ था। मेरे पूर्वजों का वतन तो शृंगारपुर जि० जौनपुर में है परन्तु मेरा जन्म अलीगढ़ के जिले में हुआ था जहां मेरे पिता सर्विस में थे। बनारस के स्वतन्त्र महाराज चेतसिंह के महामन्त्री मेरे पूर्वजों में से एक थे। इन्हीं चेतसिंह से अंगरेजों ने बनारस राज्य लेकर एक साधारण राज्य का रूप दे दिया। बनारस की स्वतंत्रता चले जाने पर भी मेरे पूर्वजों का संबंध दो पुश्त तक और उस राज्य से बना रहा। मेरे परम पितामह श्रीमान सुखलाल जी बनारस राज्य और तत्कालीन ईस्ट इन्डिया कम्पनी दोनों के कृपा पात्र थे। उन्हीं की सहायता से कम्पनी ने जौनपुर आदि पूर्वी ज़िलों का जो बनारस के राज्य से पृथक् किये गये थे बन्दोबस्त करके माल गुज़ारी नियत की थी। उनकी स्मृति रूप में सुखलाल गंज आदि उनके बसाये हुये अनेक बाज़ार और स्थान अब भी शृंगार पुर के समीप मौजूद हैं। अस्तु, इस प्रकरण को शीघ्र और कुछेक शब्दों ही में समाप्त करके फिर असली विषय पर आ जाता हूँ। उस समय संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा का विशेष स्थानों के सिवा, प्रायः अभाव ही सा था। यज्ञोपवीत और वेदारंभ संस्कारों के नाम भी लोग नहीं जानते थे। सात वर्ष

की आयु प्रारम्भ होने पर मेरे लिये शिक्षा का द्वार कुछेक अरबी के वाक्यों के साथ खोला गया और इस द्वार के उद्घाटक एक फ़ारसी के मकतब के मौलवी थे। इस संस्कार को उस समय मकतब कराना कहते थे। कुछेक प्रारंभिक फारसी की किताबों के पढ़ने के बाद मुझे अपने परिवार के साथ शृंगारपुर जाना पड़ा। उस समय प्रचलित पारिवारिक रिवाज के मुताबिक विवाह आदि संस्कार वहीं हुआ करते थे। शृंगारपुर में, एक पेन्शिनर तहसीलदार म० गंगा बिशन ने एक फ़ारसी का मकतब खोल रक्खा था। शृंगारपुर पहुँच कर में भी उसी मकतब में दाखिल हुआ। इसके सिवा शिक्षा का साधन वहां और आस पास कुछ भी नहीं था। इस प्रकार फ़ारसी की तालीम जारी रही। वहां से लौटने पर भी यही तालीम जारी रही। फारसी के ऊंचे दरजे की किताबों के पढ़ने साथ अरवी के व्याकरण (सर्फ व नह्वी) को भी पढ़ता रहा। इसके बाद अंगरेजी की तालीम शुरू हुई। हमारे पिता पुराने ढांचे के व्यक्ति थे और मोह के कारण अपने पुत्रों को अपने साथ ही रखते थे। शिक्षा के लिये भी अपने से पृथक् करना उचित नहीं समझते थे। यह कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करने के रास्ते में बाधक हुआ; परन्तु हमारे पिता को इसकी परवाह न थी। वे प्रायः समझा करते थे और कभी कभी कह भी दिया करते थे कि परिवार से अलग रहने से लड़के ख़राब हो जाया करते हैं। उनके इस विचार में कुछ तथ्य अवश्य था। अस्तु। शिक्षा का यह क्रम कि कभी फारसी और कभी अंगरेजी पढ़ी जाती थी बराबर चलता रहा।

पिता का देहांत और शिक्षा की समाप्ति

१८८६ ई० में पिताजी का बावन वर्ष की आयु में देहान्त होगया और उनके इस प्रकार वियुक्त हो जाने से, जहाँ एक ओर बेढंगे तौर से मिलने वाली शिक्षा की समाप्ति हुई तो दूसरी ओर चिन्ता हुई कि अब हमको अपने पाँव पर खड़ा होने का यत्न करना चाहिये। पिता जी प्रायः सभी अपनी सन्तान से असाधारण प्रेम रखते थे, इस लिये उनके देहावसान से प्रायः सभी परिवार को अत्यन्त दुःख हुआ। मौत की यह पहली घटना थी जिससे मुझे काम पड़ा। इस घटना ने मेरे ऊपर विलक्षण प्रभाव डाला और मानवी-जीवन की निस्सारता का एक चित्र मेरे सामने खींच दिया। यह चित्र समय समय पर मेरे सामने आता रहा और मेरे भावी कार्य-क्रम पर भी प्रभाव डालता रहा।

तीसरा अध्याय

विवाह और गवर्नमेंट सरविस

२३ वर्ष की आयु में मेरा विवाह हुआ परन्तु सर्विस और सम्मिलित परिवार (Joint family system) की मर्यादानुसार मुझे प्रायः ५ वर्ष तक परिवार से पृथक् रहना पड़ा। मुझे मुरादाबाद के कलेक्टर के दफ़्तर में एक क्लर्की मिल गई थी, परन्तु मैं वहां एकाकी रहा। परिवार के लोग अलीगढ़ रहते थे।

जप और आलस्य

मेरे विचारों में लड़कपन ही से कुछ धार्मिकता का प्रभाव था। एक दिन भक्तमाल पढ़ते हुये एक जगह मैंने लिखा पाया कि शरीर पर जितने रोम होते हैं उतनी बार राम नाम का जप करते रहने से मनुष्य पर पाप अपना प्रभाव नहीं डालते और शरीर पर रोम संख्या ३५५०० बतलाई गई थी। मैंने निष्पाप रहने की आशा से, नियमपूर्वक नियमित संख्या में राम नाम का जप प्रारम्भ कर दिया। इस जप को अभी केवल एक मास से कुछ अधिक समय बीता था कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता ने प्रसन्नता प्रकट करते हुये, एक सज्जन से, जो उनसे मिलने आये थे, मेरे इस जप करने की चर्चा की। उन्होंने छूटते ही उत्तर दिया कि इतना अधिक जप करने से मनुष्य आलसी हो जाता है। मैं इस बात को सुन रहा था, और अपने

भीतर कुछ आलस्य की मात्रा भी, जपकाल में अनुभव करता था, मुझे उनकी बात से निश्चय हो गया कि मैं इस जप से जरूर आलसी हो जाऊंगा इसलिये उस जप करने को मैंने छोड़ दिया। सचमुच निरर्थक जप करने से मनुष्य के अन्दर कुछ आलस्य अवश्य आ जाता है परन्तु सार्थक जप में, जिसमें मन भी जुबान के साथ अर्थ चिन्तन में लगा रहता है, ❀ ऐसा नहीं होता परन्तु सार्थक और निरर्थक जप का भेद उस समय किसे मालूम था।

ऋषि दयानन्द के दर्शन

एक दिन जब मैं एक अंगरेजी स्कूल में पढ़ा करता था, स्कूल में चर्चा हुई कि आज एक बड़े सुधारक, जिनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है, आने वाले हैं। उत्सुकता से बहुत से विद्यार्थी और अध्यापक देखने के लिये स्कूल से बाहर उस रास्ते में आकर, जहां से वे गुज़रने वाले थे, खड़े हो गये। थोड़ी ही देर में देखा कि एक जोड़ी में स्वामी जी सवार होकर हम सब के सामने से जा रहे थे, उनके दिव्य और चमकते हुये चेहरे के देखने मात्र ही से हम में से कोई न था जो प्रभावित न हुआ हो। उनके सायंकाल के समय, व्याख्यान होने की घोषणा भी हुई और हम में से अनेक विद्यार्थी, जिनमें एक मैं भी था, उनके व्याख्यान सुनने को उत्सुक हुये परन्तु स्कूल में एक संस्कृता-

❀ तस्य वाचकः प्रणवः ॥
तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥

ध्यापक ने हम सबको बतलाया कि स्वामी जी अधर्म की बात सुनाया करते हैं, उनके सुनने से पाप लगेगा, इसलिये उनके व्याख्यान में किसी को नहीं जाना चाहिये। इस पाप के भय से अनेक विद्यार्थी रुक गये उनमें एक मैं भी था इस प्रकार ऋषि के मुख से कुछ सुनने से हम लोग वंचित रहे।

उर्दू और फारसी की कविता

फारसी का अधिक ज्ञान होने से मुझे फारसी और उर्दू की कविता का शौक हुआ, और इतनी धुन लगी कि रोजाना कुछ समय इसमें व्यय होने लगा। तत्कालीन कविता के उर्दू मासिक पत्रो में मेरी बनाई हुई गजलें छपने लगीं। थोड़े ही काल में एक दीवान बन जाने के योग्य सामिग्री जमा हो गई परन्तु दीवान के छपने से पहले, जिसका छापना नवल किशोर प्रेस लखनऊ ने स्वीकार कर लिया था मैं आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गया और उस समय विचारो में परिवर्तन आ जाने से उस दीवान को उपयोगी साहित्य न समझकर फाड़ दिया। कुछ थोड़े से शेर पृष्ठों के अन्त में दिये गये हैं। (देखो परिशिष्ट १)

चौथा अध्याय

आर्य सामाजिक जीवन का प्रारम्भ

आर्य समाज के लिये मेरी धारणा यह बन गई थी कि यह समाज सबका खन्डन ही किया करता है इसके अपने कुछ सिद्धान्त नहीं हैं। एक दिन मुरादाबाद में जब मैं स्वर्गवासी म० हरसहाय सिंह से जो आर्य समाज मुरादाबाद के सभासद थे इसी सम्बन्ध में बातचीत कर रहा था तो मुझको आर्य समाज के नियमों को देखने का अवसर मिला। उनमें खन्डन की एक भी बात न देखकर मेरे पुराने विचार जगमगा उठे। उससे पहले, अपने एक अध्यापक के प्रभाव से मैं शैव था परन्तु मुझे मूर्ति पूजा में जरा भी श्रद्धा न थी इसलिये वर्ष में दो एक बार भूखा रहने के सिवाय और मेरा शैव सम्प्रदाय सम्बन्धी कोई क्रियात्मक जीवन न था।

आर्य समाज के नियमों के देखने के बाद इच्छा हुई कि उसके कुछेक ग्रन्थ देखने चाहियें। म० हरसहाय सिंह की कृपा से मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई। जब मैं ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा तब मेरी आंखें खुलीं और मैं ने आर्य समाज के महत्व को समझा। यही वह समय था जब मैंने सबसे अधिक पश्चात्ताप इस बात का किया कि क्यों मैं ने ऋषि दयानन्द का उपदेश उनके मुख से नहीं सुना ? मैं उस समय यज्ञोपवीत धारण नहीं करता था,

विवाह के समय "दुर्गा जनेऊ" के नाम से एक यज्ञोपवीत मुझे पहनने को दिया गया था और देते समय बतला दिया गया था कि विवाह के बाद उसे उतार देना चाहिये वरना पाप लगेगा, तदनुसार पाप के भय से वह जनेऊ विवाह के बाद उतार दिया गया था। मुझे उस समय आत्म ग्लानि ने घेर लिया और प्रबल इच्छा पैदा हो गई कि मुझे अपने जीवन में तबादिला पैदा करना चाहिये इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये रामगंगा के किनारे नियम पूर्वक यज्ञोपवीत धारण किया गया और यज्ञ की समाप्ति पर निश्चय किया और इसकी वहीं घोषणा भी कर दी कि भविष्य में निम्नानुकूल जीवन व्यतीत करूंगा:—

१—कभी मांस और मदिरा का सेवन न करूंगा।

२—कभी थ्येटर आदि न देखूंगा।

३—नियम पूर्वक संध्या और हवन करूंगा।

४—ईमानदारी और परिश्रम से जीविका उपलब्ध करूंगा।

५—यत्न करूंगा कि एक सद्गृहस्थ की तरह जीवन व्यतीत करूं।

६—संस्कृत और अंगरेजी शिक्षा प्राप्ति का पूरा यत्न करूंगा।

कुछ काल तक जो लगभग एक वर्ष के था उपर्युक्त नियमों पर आचरण करके देखा गया कि मैं कहां तक उन नियमों का पालन करता हूं। जब इस परीक्षण में सफलता हुई और मैंने भली भांति अनुभव कर लिया कि मैं उनका अक्षरशः पालन

करने लगा हूँ तब मैं ने निश्चय कर लिया कि अब मुझे आर्य समाज का सभासद बन जाना चाहिये तदनुसार मैं आर्य समाज का सभासद बन गया।

आर्य समाज मुरादाबाद की सेवा

११ मास व्यतीत होने पर मुझे समाज का आर्य सभासद बनाया गया, और उपमन्त्री नियत किया गया। उस समय आर्य समाज मुरादाबाद का न मन्दिर था न उसके वार्षिक उत्सव होते थे। आर्य समाज के साप्ताहिक संघ साहू श्याम सुन्दर साहिब की कोठी में हुआ करते थे। यह साहू साहिब वे ही सज्जन थे जिनका स्वामी जी के जीवन चरित्र में जिक्र है। पूरा यत्न किया गया कि पहले मन्दिर बने। प्रशंसित साहू साहिब ने जगह दी और कुछ धन भी दिया; बाकी धन चन्दा करके वसूल किया गया और एक ही वर्ष के भीतर १८६१ ई० में मन्दिर तैयार हो गया। उसके बाद दूसरे वर्ष से समाज के वार्षिक उत्सव होने लगे। जब समाज का पहला उत्सव होने को था तब उत्सव के कार्यों का विभाजन हुआ, तो मैं ने भोजन का प्रबन्ध अपने जिम्मे लिया। इससे मुझे दो लाभ हुए। एक तो विद्वानों की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ दूसरे उनसे अच्छी वाकफियत हो गई। इस काम को ४ वर्ष तक बराबर मैं लेता रहा उसके बाद छोड़ दिया गया। पं० तुलसी राम स्वामी जो उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के एक मात्र उपदेशक थे, प० लेखराम जी, ला० मुन्शीराम, पं० आर्यमुनि,

पं० घनश्याम शर्मा मिरजापुरी तथा अन्य अनेक आर्य भाइयों से उन्हीं दिनों में वाकफियत हो गई।

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की सेवा का प्रारम्भ

उस समय सभा के वार्षिक अधिवेशन मात्र हुआ करते थे। कोई अन्तरंग सभा न थी इसलिये साल भर तक और कोई विचार नहीं होता था। १८६१ ई० के अधिवेशन में जो दिसम्बर मास में हुआ था पहली बार मुझे शरीक होने का अवसर मिला, पं० भगवान दीन जी मंत्री थे। उपस्थिति ३० के लगभग थी। मैं ने अन्तरंग सभा बनाने का प्रस्ताव किया वह स्वीकार हो गया। अन्तरंग सभा बनी और मैं उसमें शरीक किया गया। सन् १६१६ ई० अर्थात् गुरुकुल छोड़ने तक मैं बराबर सभा के कार्यों में भाग लेता रहा और किसी न किसी रूप में अन्तरंग सभा में बराबर शरीक रहा।

आर्य समाजों के उत्सव

उन दिनों संयुक्त प्रान्त में बहुत थोड़े समाज थे और शायद मुरादाबाद, चन्दौसी, बरेली और लखनऊ चार ही समाजों के नियम पूर्वक उत्सव हुआ करते थे। ये उत्सव बहुत छोटे स्केल पर हुआ करते थे परन्तु इनका नगर निवासियों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा करता था। उस समय पेशेवर भजनीक नहीं बन पाये थे इसलिये नगर कीर्तनों में भजन स्वयम् आर्य भाई ही गायन किया करते थे। एक से अधिक बार चन्दोसी और लखनऊ के नगर कीर्तनों में जाने वालों में मैं भी शरीक हुआ

था जब कि मुझे गान विद्या से कुछ भी निसबत नहीं थी। परन्तु सुनने वाले ताल और स्वर की उतनी चिन्ता न करते थे जितनी हृदयगत भावों की। वे समझा करते थे कि ये लोग जो कुछ भी करते हैं हृदय की लग्न से करते हैं।

संस्कृत और अंगरेजी शिक्षा

उस समय संस्कृत पढ़ने के लिये आम तौर से अष्टाध्यायी से प्रारम्भ करने की सलाह दी जाया करती थी। मुझे भी यही सलाह दी गई थी। पं० कल्याण दत्त जी राजवैद्य अपनी तत्कालीन पत्नी श्रीमती सुरेन्द्र बाला के साथ जालन्धर में आर्य समाज की ओर से कुछ काम किया करते थे। मुरादाबाद के उत्सवों में ये युगल भी आने लगे थे। पं० जी से मेरा अच्छा परिचय हो गया था। इन पति और पत्नी में अन्त को न बनी इसलिये दोनों ने मिलकर विवाह विच्छेद कर डाला। पं० कल्याणदत्त एक पहाड़ी देवी से विवाह करके मुरादाबाद चले आये और वहीं चिकित्सा कार्य करने लगे। पं० जी अष्टाध्यायी के बड़े विद्वान थे इसलिये मैं ने उन्हीं से अष्टाध्यायी पढ़नी शुरू की। ८ मास के अन्दर कुल ४ हजार सूत्र अर्थ के साथ कण्ठ कर लिये गये। इसके बाद उदाहरण और उनकी सिद्धि के विषय प्रारम्भ हुये। परन्तु इसमें पं० जी के इधर उधर चले जाने से बराबर विघ्न होता रहा। अंगरेजी के लिये उस समय के विद्वानों से सलाह लेकर ऐसा निश्चय किया गया था कि केवल अंगरेजी भाषा का कोर्स जो स्कूल की अन्तिम श्रेणियों और कालिजों में पढ़ाया जाता

है पढ़ लेना चाहिये। गणित, रेखागणित आदि का ज्ञान पहले ही से था क्योंकि ये मेरे रुचिकर विषय थे। रेखागणित की ६वीं पुस्तक तक जो उस समय मिल सकी थीं मैंने पढ़ लिया था। इसके साथ ही इनसे सम्बन्धित अनेक प्रश्नों के भी देखने का यत्न किया गया था। केवल पहली किताब की ४८ शक्लों से सम्बन्धित १००० मशकें थीं। सभी मशकें मैंने सिद्ध की थीं। अंगरेजी की शिक्षा में मुझे बाबू हरिदास जी बी. ए. ऐल. ऐल. बी. वकील से बड़ी सहायता मिली जिसके लिये मैं उनका बड़ा ऋणी हूँ।

पांचवाँ अध्याय

वर्ष गांठ पर आत्म निरीक्षण

दो वर्ष अर्थात् १९६३ ई० तक, उपर्युक्त निश्चित बातों पर अमल करता रहा। कुछेक फारसी अरबी के ग्रंथ भी देखता रहा। यह एक नियम सा प्रारम्भ से अब तक बना हुआ है कि प्रत्येक बसंत अर्थात् अपने जन्म दिवस के अवसर पर मैं देखा करता था और अब भी देखा करता हूँ कि नियमों का कहां तक पालन किया गया और पालन करने में क्या क्या त्रुटियां रहीं। तदनुसार संवत् १९४९ वै० में बसन्त के दिन जब मैं अपनी अवस्था पर विचार करने लगा तो मुझे निम्न त्रुटियां मालूम हुईं। १—संस्कार विधि में विशेषतया गृहस्थ प्रकरण के पढ़ने से मुझे मालूम हुआ कि पति और पत्नी के पृथक् पृथक् रहने से गृहस्थ के कर्तव्यों का पूर्णतया पालन नहीं हो सकता। इसलिये मुझे यत्न करना चाहिये कि पत्नी को अलीगढ़ से बुलाकर अपने साथ रक्खूं और अगले वर्ष ऐसा ही कर लिया गया। २—फारसी अरबी के ग्रन्थों के अध्ययन में कुछ समय लगा देने से संस्कृत और अंगरेजी की शिक्षा के लिये जितना समय अपेक्षित था उतना नहीं दिया जा रहा था इसलिए फारसी आदि का अध्ययन बन्द कर दिया गया। ३—मुझे संतोष हुआ कि बाकी बातों की पूरी पूरी पाबन्दी की गई थी। इस वर्ष गांठ

को मैं एक विशेष अवसर समझता हूँ कि मुझे अन्तरात्मा से प्रेरणा मिली कि बनाये हुये ६ नियम पर्याप्त नहीं हैं उन्हें बढ़ाना चाहिये तदनुसार निम्नांकित १० नियम बनाये गये जिन पर गृहस्थ के अन्त तक बराबर अमल होता रहा। वे नियम ये हैं—

१—आर्य समाज के नियम और मन्तव्यों को दृढ़ता के साथ पालन करना चाहिये।

२—ईमानदारी और परिश्रम से धन कमाना चाहिये। ईमानदारी और परिश्रम से कमाये हुये धन ही का उपभोग करना चाहिये।

३—समस्त कार्यों के करने का समय विभाग बनाना चाहिये और उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये।

४—मांगना निकृष्ट कर्म है। अपने लिये यदि मांगना पड़े तो उससे मर जाना अच्छा है। कर्ज भी कभी नहीं लेना चाहिये।

५—स्त्री व्रत होना चाहिये और स्त्रियों के साथ सद्व्यवहार करना चाहिये।

(६) नाच, तमाशा, थियेटरों का देखना समय, धन और आचार का खून करना है इस लिये इनसे सदैव बचना चाहिये।

(७) निष्पक्षता श्रेयस्कर है जनता के साथ व्यवहार करने में उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

(८) स्वाध्याय शील होना और हृदय को उच्च सेवा के भाव से भर देना चाहिये।

(९) आराम तलब और सुगमता प्रिय न होकर कठिन कार्यों के करने का अभ्यास करना चाहिये। विरोध से डरना कायरता है।

(१०) जीवन का अन्तिम भाग केवल परोपकार में व्यतीत करना चाहिये।

छठा अध्याय

दयानन्द कालिज लाहौर

स्वर्गवासी पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने मुरादाबाद आकर दयानन्द कालिज के लिये धन की अपील की। अपील करने के लिये वही सारी बातें, गौतम और कणाद के उत्पन्न करने की जो कुछ वर्ष पहले गुरुकुलों के लिये कही जाया करती थीं और जिन्हें आज कहते हुए गुरुकुल के पृष्ठ पोषक भी संकोच करते हैं। दयानन्द कालिज की स्थापना का उद्देश्य बतलाते हुए पंडित गुरुदत्त ने कही। भला जब गुरुदत्त जैसा वक्ता हो और स्कीम हो गौतम और कणाद ढालने की मशीन बनाने की तो धन तो एकत्र हो जाना ही चाहिये था। तदनुसार एक हजार से अधिक धन जमा हो गया। कालिज में इस धन के पहुंचने का दूसरा फल यह हुआ कि मुरादाबाद आर्य समाज को उपर्युक्त कौलिज सुसायटी में, कुछेक सभासदों के भेजने का अधिकार प्राप्त हो गया। कुछेक अन्यों के साथ मेरा नाम भी लाहौर भेजा गया और इस प्रकार मैं दयानन्द कौलिज सोसाइटी लाहौर का सभासद बन गया।

पंजाब का मांस सम्बन्धी झगड़ा

इसके कुछ दिन बाद ही पंजाब में मांस भक्षण के झगड़ा फैलने की बात का सूत्रपात हो गया। इस झगड़े के व्यक्त हो

जाने का निकटवर्ती कारण मेरी उस समय की डायरी में इस प्रकार लिखा है:—"राय मूलराज ने, जिन्हें आर्यसमाज की तत्कालीन शान्ति और प्रेम भाव का भंग करने वाला शत्रु कहना चाहिये, लाहौर आर्यसमाज के एक अधिवेशन में यह ऐलान कर दिया कि वे वेद के रूसे मांस भक्षण को जायज़ समझते हैं।" इसका दुष्परिणाम यह निकला कि लाहौर में एक की जगह एक दूसरे के विरुद्ध दो समाज हो गये। इस प्रकार माँस के पक्ष का पोषक दूसरा समाज जो बना वह आर्यसमाज अनारकली था। इन दो समाजों के बन जाने का नतीजा यह हुआ कि पञ्जाब के आर्य दो पार्टियों में विभक्त हो गये। इन पार्टियों के नाम समय समय पर बदलते रहे। पहले इनके नाम घास और मांस पार्टी थे, उसके बाद महात्मा और कलचर्ड (Cul-tured) हुए और अब इनका प्रचलित नाम गुरुकुल और कौलिज विभाग है।

इस पार्टी बन्दी से प्रेम किस प्रकार घटा ?

एक घटना

मैं इन पार्टियों के बनने से पहले, एक बार लाहौर गया था। लाहौर के कुछ भाई मुझे लेने आये थे। प्लेटफार्म पर, रेल से उतरते ही, ज्यों ही हम लोगों ने एक दूसरे को देखा प्रेम से एक दूसरे के साथ छाती लग कर मिले। मैंने सचमुच उस समय अनुभव किया कि मैं मानो अपने ही एक दूसरे घर में आ गया हूँ। इसके बाद दूसरी बार मुझे पार्टियों के बनने के बाद कौलिज सोसाइटी की एक मीटिंग में शरीक होने के लिये

फिर लाहौर जाना पड़ा। मेरे साथ मुरादाबाद के कुछेक और भाई भी थे। उस समय लाहौर में दो समाज बन चुके थे हम लोगों को आर्य समाज बच्छों वाली में जाकर ठहरना था। जब गाड़ी लाहोर के प्लेटफार्म पर पहुँची तो हमने दोनों समाज के स्वयंसेवकों को प्लेटफार्म पर देखा और दोनों यही कहते थे कि आर्यसमाज लाहौर के वे स्वयं सेवक हैं। हमारे लिये उस समय इस लिये यह जान लेना कठिन हो गया कि कौन स्वयं सेवक बच्छों वाली समाज के हैं और कौन अनारकली समाज के परन्तु हमारे लिये इसका जान लेना आवश्यक था क्योंकि हमें बच्छों वाली समाज में जाना था। उस समय अनारकली मांस पार्टी का समाज कहा जाता था। इसलिये हम सब ट्रेन ही में बैठे रहे। प्लेट फार्म पर नहीं उतरे परन्तु ध्यान पूर्वक किसी परिचित व्यक्ति के पा लेने के लिये प्लेट फार्म की ओर देखते रहे। हमें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। थोड़ी देर बाद ही एक परिचित भाई मिल गये और उनके साथ हम बच्छोंवाली समाज में चले गये।

कौलिज के द्वार पर झगड़ा

जब कौलिज सोसाइटी में शरीक होने के लिये हम कौलिज के द्वार पर पहुँचे तो एक अवांछनीय दृश्य देखना पड़ा। बच्छो वाली समाज के कुछेक पक्ष पोषक द्वार में घुसना चाहते थे परन्तु कौलिज के पक्षपाती उन्हें रोकते थे। यह संघर्ष बढ़ा और आपस में दोनों फरीक लड़ने लगे। मैंने और मेरे कुछेक साथियों ने पूरा यत्न किया कि लड़ाई न हो परन्तु हम उसमें

सफल न हो सके इसलिये इस युद्ध द्वार से अलग होकर खड़े हो गये। अन्त में प्रवेशार्थियों का पक्ष प्रबल हो गया और वे सब के सब कालिज के अहाते में घुस गये। इस पर कौलिज के अधिकारी जिन में महात्मा हंसराज भी थे, कमरों में घुस गये और कमरे के द्वारों को भीतर से बन्द कर लिया। कुछ शांति हो जाने पर हम लोग हंसराज जी से मिले तब उन्होंने बतलाया कि मीटिंग कल होगी। दूसरे दिन मीटिंग पुलिस की निगरानी और पहरे में हुई।

भविष्य के लिये एक प्रतिज्ञा

दोबारा के कालेज जाने और वहाँ घटित घटनाओं के देखने से, एक बात जो हृदयांकित हो गई वह यह थी कि पंजाब की इस पार्टी बन्दी ने, आर्यों के पारस्परिक प्रेम और विश्वास को बड़ी हानि पहुँचाई। मेरे भीतर जब मैं ट्रेन में बैठा हुआ किसी परिचित पुरुष की प्रतीक्षा कर रहा था, आत्मग्लानि पैदा हुई कि मैं क्यों आर्यों में भेदभाव से काम ले रहा हूँ और क्यों जब पहले स्वयंसेवक की आवाज सुनी थी उसी के साथ नहीं चला गया वह चाहे बच्छों वाली का स्वयं सेवक होता चाहे अनारकली का। मैंने उसी समय दृढ़ संकल्प कर लिया कि भविष्य में कभी इस प्रकार का भेद भाव न रक्खूंगा और कभी किसी हालत में भी, किसी पार्टी में शरीक होकर न रहूँगा। आगे की घटनायें बतायेंगी कि कितनी दृढ़ता से मैंने इस प्रतिज्ञा का पालन किया।

सातवां अध्याय

संयुक्त प्रान्त में शुद्धि का काम

उस समय इस प्रान्त में शुद्धि का कार्य प्रायः दिखावटी सा होता था। शुद्ध होने वाले को केवल उससे हवन कराके रुखसत कर दिया जाता था। उसे अपने भीतर जज़्ब करने का कोई यत्न नहीं किया जाता था। जब मैं आर्यसमाज मुरादाबाद के मन्त्री पद का कार्य कर रहा था तो डाक्टर हुक्मसिंह जी मन्सूरी से एक ईसाई हुए भाई को अपने साथ लाये और प्रार्थना की कि इसे शुद्ध क॰ दिया जावे, उन्होंने यह भी प्रकट किया कि यह व्यक्ति पटियाला का रहने वाला सारस्वत ब्राह्मण था और इसका नाम श्रीराम है भूल से ईसाई हो गया है। देहरादून आदि उस ओर के किसी समाज ने उसको शुद्ध करना स्वीकार नहीं किया इस लिये वे इसे यहाँ लाये हैं। मैंने डाक्टर साहिब से वादा कर लिया कि इसे शुद्ध कर दिया जावेगा। इसलिये वे उसे मेरे पास छोड़ कर चले गए। जब यह मामला आ॰ स॰ मुरादाबाद की अन्तरंग सभा में पेश हुआ तो कई सज्जनों ने बल पूर्वक इस शुद्धि का विरोध किया परन्तु बहु पक्ष से शुद्धि करना स्वीकार हो गया। इस प्रस्ताव के स्वीकार होते ही तीन सज्जनों ने न केवल अन्तरंग सभासदी से अपितु समाज की मेम्बरी से भी त्यागपत्र दे दिया। मुझे उनके त्यागपत्र देने का दुख

अवश्य हुआ परन्तु वे ऐसा करने में गलती पर थे, इसलिये निश्चय यही किया गया कि इन त्याग पत्रों की परवाह नहीं करनी चाहिये। शुद्धि का दिन निश्चय हो गया और यह भी निश्चय कर लिया गया कि शुद्धि के बाद शुद्ध हुए व्यक्ति के हाथ से जलपान करना चाहिये। नियत समय पर शुद्धि के देखने वाले कम परन्तु पानी पीने के देखने वाले सहस्रों पुरुष समाज मन्दिर के भीतर और बाहर एकत्रित होगये। शुद्धि होगई और जलपान भी कर लिया गया। उन जलपान करने वालों में एक मैं भी था।

मुरादाबाद में शुद्धि का सनातनियों ने विरोध किया

इस शुद्धि और विशेषकर जलपान का, सनातन धर्मावलम्बियों ने प्रबल विरोध किया। उनकी शहर में जगह जगह सभायें हुईं किसी में निश्चय किया गया कि आर्य्यों को पुराने ढाँचे की बिरादरी से खारिज किया जावे, किसी में निश्चय हुआ कि उन्हें कुओं पर नहीं चढ़ने देना चाहिये, इनके यहाँ कोई नौकर न रहने पावे। न महतर इनके यहां की सफ़ाई करें, न दूकानों से इन्हें कोई सौदा मिलने पावे इत्यादि। इनमें से कुछ तजवीज़ें तो काग़ज़ ही पर रह गईं कुछ पर अमल ज़रूर और बिरादरी से बहुत लोग ख़ारिज कर दिये गये।

एक घटना

एक सज्जन मेरे पास भी आये और कहा कि "आप को भी बिरादरी से ख़ारिज करने की तजवीज़ हो रही है।" मैंने उन्हें उत्तर दिया कि "मैं उनका ऐसा करने के लिये कृतज्ञ रहूंगा परन्तु एक बात है जो जान लेनी चाहिये, कि जो लोग अब तक

मुझे अपनी बिरादरी का आदमी समझते रहे थे वह गलती करते रहे थे। मैं आर्य्य हूं वे अनार्य्य हैं, भला आर्य्यों और अनार्य्यों की एक विरादरी कैसे हो सक्ती है? इसके बाद फिर मेरे पास कोई इस प्रकार का संदेश लेकर नहीं आया। एक बात जो आम तौर से शहर के गली गली कूँचे कूँचे में प्रचलित थी यह थी कि प्रत्येक आर्य्य को, रास्ते चलते हुये सनातनधर्मी गालियाँ देने लगे। यह हरवोंग लगभग ३ मास तक जारी रहा। आर्य्यों ने, जिस धैर्य्य और सहनशीलता से, इन कठोरताओं का सामना किया, उसकी प्रत्येक समझदार हिन्दू या मुसलमान, प्रशंसा किये बिना नहीं रहता था।

सरकारी हस्तक्षेप

इन दिनों मुरादाबाद के कलेक्टर और मजिस्ट्रेट एक इटेलियन विद्वान रिडेची थे। उन्हें संस्कृत से प्रेम था और इस सम्बन्ध में- इसीलिये वे अनेक वार मुझसे बात चीत किया करते थे। शहर में किस प्रकार आर्य्यों को गाली गलोज दिया जाता है इसकी रोजाना रिपोर्टें उनके पास पहुंचा करती थीं। मैं उन्हीं की पेशी में काम किया करता था और वे इस वात को अच्छी तरह जानते थे कि मैं स्थानिक आर्य्यसमाज का मन्त्री भी हूँ। एक दिन उन्होंने अपने टिफन के कमरे में मुझे बुलाया और कहा कि शहर में जो गालियाँ आर्य्यों को दी जाया करती हैं उसके खिलाफ़ पुलिस में रिपोर्ट क्यों नहीं की जाती? मैं अभी उत्तर नहीं देने पाया था कि उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तुम्हें भी गालियाँ दी जाती हैं? जब मैंने हाँ में उत्तर दिया तो

उन्होंने पूछा कि फिर शिकायत क्यों नहीं करते ? मैंने उन्हें उत्तर दिया कि वह गाली देने वाले अभी समझते नहीं हैं कि कि आर्य्यसमाज उनकी कितनी सेवा करता है ? जब समझने लगेंगे तो फिर अपने आप गालियां देना बन्द कर देंगे। मेरे उत्तर को रिडोची महोदय ने बड़े ध्यान से सुना और सुनकर पूछने लगे कि तुम लड़कपन ही में बूढ़े क्यों हो गये हो ? उन्हें जब यह निश्चय होगया कि हम लोगों में से कोई शिकायत नहीं करेगा तब उन्होंने, उसी समय कोतवाल को बुलाकर हुक्म दिया कि जितने सनातनधर्म के पण्डित हों उन्हें कोतवाली में बुलाकर समझा दो कि यदि इस प्रकार आर्य्यों को गाली देना जारी रहा तो फिर उनपर अभियोग चलाया जायगा। इस चेतावनी का अच्छा प्रभाव पड़ा और शहर में गाली देना बन्द होगया और प्रायः शुद्धि का विरोध भी समाप्त होगया। इस विरोध काल में आर्यसमाज ने जी खोलकर प्रचार कराया। पण्डित लेखरामजी आदि उपदेशकों के बराबर उपदेश होते रहे। आर्य्यसमाज के सभासद् निरन्तर बढ़ते रहे। इसके बाद दूसरे तीसरे मास बराबर शुद्धि होती रही परन्तु फिर विरोध नहीं हुआ। शुद्धि का काम इस प्रकार लोकप्रिय होगया। १८९३ से १८९८ई० तक ६ वर्ष के भीतर केवल मेरे तुच्छ प्रयत्न से ८७ ईसाई और मुसलमानों की शुद्धि हुई जिनमें अनेक जन्म के ईसाई और मुसलमान थे। शुद्धि के इस उदाहरण से प्रान्त भर में शुद्धि का काम आम तौर से प्रचलित होगया और अनेक सज्जनों ने इस मामले में अच्छा काम किया।

आठवां अध्याय

प्रान्तीय सभा का सुधार और वेद प्रचार की तहरीक

संयुक्त प्रान्त में यद्यपि १८८६ ई० अथवा कुछ पहले से प्रचनिधि सभा स्थापित हो चुकी थी परन्तु १८९४ ई० तक, वह प्रायः प्राण रहित शरीर की तरह रही। उसको बड़ा धक्का कौलिज खोलने की तहरीक से पहुंचा। प्रशंसित सभा ने पंजाब की तरह इस प्रान्त में भी एक दयानन्द कौलिज खोलने का प्रस्ताव स्वीकार करके, उसे क्रियात्मक रूप देने के लिये एक उपसभा बना दी। प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन अधिकारियों की सम्मिति में, उसकी रजिस्ट्री नहीं हो सकती थी इसलिये उन्होंने उपर्युक्त कालिजों पर सभा की रजिस्ट्री कराली। ऐसा करने से वह एक (Registered Society) रजिस्ट्री हुई संस्था बनजाने से, बिना रजिस्ट्री वाली प्रतिनिधि सभा से, स्वतन्त्र होगई और प्रतिनिधि सभा उसका कुछ न कर सकी।

१८९६ ई० के प्रारम्भ में प्रतिनिधि सभा के सुधार के उद्देश्य से मुरादाबाद, नहटौर और बिजनौर के समाजों के मुख्य मुख्य कार्य्य कर्त्ताओं की एक कान्फ्रेंस की गई और उसमें विचार के बाद निश्चय किया गयाः—(१) नियमों का संशोधन करके प्रतिनिधि सभा की रजिस्ट्री कराई जावे (२) वेद प्रचार फंड खोल कर उस से प्रचार का कार्य्य बढ़ाया जावे।

इस कार्य्य के करने के लिये एक "मुहर्रिक वेद प्रचार कमेटी" इस नाम से एक कमेटी बनाई गई। मैं उसका मंत्री नियत हुआ एक उर्दू साप्ताहिक पत्र "मुहर्रिक" (प्रस्तावक) नाम से निकालना भी निश्चय हुआ जिससे कमेटी के काम का विस्तार हो। पत्र का सम्पादक भी मुझे बनना पड़ा। मौखिक और पत्र द्वारा लेख बद्ध प्रचार किया गया। पण्डित कृपारामजी ने जो इस यत्न में सहयोग देने के लिये, पंजाब से संयुक्त प्रान्त में, आगये थे, प्रचार में अच्छा योग दिया। जगह जगह डिपुटेशन लेजाकर वेद प्रचार फंड के लिये धन एकत्रित किया गया। इस कार्य्य से असन्तुष्ट व्यक्तियों ने विरोध भी जी खोलकर किया परन्तु वे असफल और हम सफल मनोरथ हुये। १८९६ ई० के दिसम्बर में प्रतिनिधि सभा के लिये बने हुये नवीन नियम स्वीकार हो गये और वेद प्रचार फण्ड खोलना स्वीकार होगया। १८९७ ई० के पहले सप्ताह ही में सभा की रजिस्ट्री भी होगई। इस अधिवेशन में सभा का हेड क्वार्टर मुरादाबाद बनाया गया और मुझे मन्त्री बनाकर सभा का काम मेरे आधीन किया गया। उस समय सभा का केवल एक उपदेशक था और सभा पर ४००) का ऋण था। प्रायः सात वर्ष तक लगातार मन्त्री पद का काम मैंने किया और इस परिश्रम का फल यह हुआ कि:—

(१) सभा की आर्थिक अवस्था का सुधार होगया।

(२) २० उपदेशक सभा की ओर से काम करने लगे।

(३) मुहर्रिक अखबार का नाम आर्य्यमित्र रक्खा गया।

वह १८९८ ई० तक उर्दू में निकलता रहा, उसके बाद हिन्दी में निकलने लगा।

(४) स्वर्गवासी पण्डित भगवानदीनजी ने अपना (आर्य्य-भास्कर) प्रेस सभा को दे दिया।

इन सुधारों के हो जाने से सभा एक जीती जागती सभा बन गई।

प्रान्तीय सभा के सुधार में बाधक दो विघ्न

पहला विघ्न यह था कि १८९७ ई० के शुरू ही में लोकल गवर्नमेण्ट ने बुन्देलखण्ड में काम करने के लिये एक योग्य और ईमानदार व्यक्ति मांगा और प्रकट किया गया कि वह वहां क़हतसाली के काम का तहसीलदार होगा। काम समाप्त और उसका अच्छा काम होने पर स्थिर तहसीलदार बन सकेगा। एफ० एल० पोटर जो उस समय मुरादाबाद के कौलेक्टर थे उन्होंने मुझे बुन्देलखण्ड भेजने के लिये नामजद करके बुलाया और मेरी रजामन्दी चाही, मैंने दूसरे दिन उत्तर देने का वायदा किया और चला आया। उस दिन के बाद की रात, बड़े संघर्षण की रात थी एक और व्यक्तिगत लाभ और वह भी बिना मांगे, दूसरी ओर आर्य समाज का काम। प्रान्तीय सभा का कार्यालय आये हुए अभी कठिनता से ३ मास ही बीते थे और जितने भी सुधार कार्य प्रारम्भ किये थे सभी प्रारम्भिक अवस्था में थे। तमाम रात यही सोचते बीत गई कि क्या करना चाहिये। अन्त को इस देवासुर संग्राम में, देवों ही की विजय हुई और मैंने निश्चय कर लिया कि बुन्देलखण्ड जाना अस्वीकार करके

जो सामाजिक सुधार के काम प्रारम्भ किये हैं, उन्हीं को पूरा करना चाहिये। इससे मेरा चित प्रफुल्लित हो उठा। मैंने दूसरे दिन दफ्तर में जाकर पीटर साहिब से कह दिया कि मैं इस समय यह तरक्की नहीं चाहता हूं। हेतु पूछने पर जब आर्य समाज के काम का समस्त विवरण उनके सामने रक्खा गया तो उन्होंने आश्चर्य से मेरा उत्तर सुना और मेरे इस नये काम को स्वीकार न करने पर पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए अफसोस किया। इस प्रकार यह विघ्न तो समाप्त हो गया।

दूसरा विघ्न हाथ की बीमारी

इन दिनों में प्रत्येक दिन रात के कार्यों का मेरा समय विभाग इस प्रकार था—

प्रातः ४½ से ६ बजे—शौच, स्नान सन्ध्या तथा हवन।
६ से ७ तक—संस्कृताध्ययन (व्याकरण साहित्य)
७ से ९½ तक—आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय का काम।
९½ से १० तक—भोजनादि।
१० से ५ तक—सरकारी दफ्तर का काम।
५½ से ७ बजे तक—अङ्गरेजी पुस्तक तथा अखबारों को देखना।
७ से ८ बजे तक—संध्या तथा भोजनादि।
८ से १० तक—संस्कृत तथा अंगरेजी का अभ्यास।
१० से ४½ बजे तक—विश्राम।

लिखने के काम की अधिकता से हाथ में दर्द (Writer's Crams) शुरू हो गया। यह तकलीफ बढ़ती इस तरह से थी

कि प्रारम्भ में अंगूठे में दर्द शुरू होता था और लिखना यदि इसके बाद भी जारी रक्खा गया तो सारा पंजा दुखने लगता था। इसके बाद काम बन्द न करने पर कन्धे तक सारे हाथ में दर्द होने लगता था। उसके बाद कलम थामना प्रायः असम्भव सा हो जाता था।

बायें हाथ से लिखने का अभ्यास और चिकित्सा

डाक्टरों ने सलाह दी कि लिखनेका काम बन्द करना चाहिये वरना हाथ बेकार हो जायगा। इधर प्रतिनिधि सभा का काम दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था। सरकारी काम भी अपील के मुकद्‌मात से सम्बन्धित अङ्गरेजी में प्रेमी लिखने आदि का कम नहीं था। इसकी पूर्ति के लिये विवश होकर बायें हाथ से लिखने का अभ्यास करना पड़ा। ईश्वर की कृपा से इसमें सफलता हुई और मैं सीधे हाथ की तरह शीघ्रता के साथ बायें हाथ से हिन्दी और अङ्गरेजी आदि लिखने लगा। कुछ दिनों तो दोनों हाथ के काम का विभाग ऐसा रहा कि बायें हाथ से सरकारी दफ्तर का और सीधे हाथ से आर्यसमाज का काम करता रहा परन्तु जब सीधे हाथ ने बिलकुल ही जवाब दे दिया तो बायें हाथ ही से दोनों जगह का काम करने लगा। मुरादाबाद के सिविल सरजन ने एक जन्तु विशेष की खाल का दस्ताना बनवा कर सीधे हाथ में पहनने की तजबीज की थी और यह भी बतलाया कि मुझे सीधे हाथ को पानी से बिलकुल बचाना चाहिये कुछ औषधि भी हाथ में लगाने को दी थी। मैं ये सब चिकित्सा कर रहा था और सीधे हाथ से प्रायः कोई काम नहीं लिया जाता था वह दस्ताने के

भीतर बन्द ही रहता था। कई वर्ष तक यही हालत रही। उसके बाद एक विलक्षण घटना घटित हुई।

एक विलक्षण घटना

बाबू गुरुचरण एम० ए० साइन्स मास्टर मेरे बड़े घनिष्ट मित्र थे। घनिष्ठता इतनी थी कि दिन में एक बार हम दोनों जरूर एक साथ भोजन करते थे चाहे वह मेरे घर हो चाहे उनके घर। वे अचानक बीमार हो गये। हिस्टेरिया के दौरे उन्हें होने लगे। सायंकाल जब मैं उन्हें देखने गया तो उनकी हालत देखकर वेहद चिन्तित हो जाना पड़ा। वहां सिविल सरजन भी मौजूद थे। वे ही सिविल सरजन जो मेरे हाथ की चिकित्सा कर रहे थे। सिविल सरजन ने बतलाया कि रात भर इनके माथे पर वर्फ रक्खी जावे तब शायद यह बच सकते हैं। बाबू गुरुचरण बेहोश थे उनका तमाम बदन अकड़ता रहता था और वे चारपाई से उछल उछल पड़ते थे। ऐसी हालत में कौन बर्फ रखने का काम जिम्मे ले। बूढ़े मास्टर दुर्गाचरण, उनके पिता चिन्तित हो कर मेरी ओर देखने लगे। मैंने उनसे कहा कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है, मैं इस काम को करूंगा। मुझे उस समय उनकी जान बचाने की धुन में यह ख्याल भी नहीं रहा कि इसी सिविल सरजन ने मुझे हिदायत की थी कि मेरे सीधे हाथ से पानी न लगने पावे। मैंने कभी एक हाथ से, कभी दूसरे हाथ से उनके माथे पर बर्फ रख कर उन्हें रात भर दबाये रक्खा। जब कभी रात में वे चारपाई से उछलने को होते थे तो मैं हाथ को माथे से हटाये बिना कुहनी से उनके शरीर को दबा लेता

था और इस प्रकार वे उछल नहीं पाते थे। प्रातःकाल होने पर मैं घर चला आया और बाबू गुरुचरण को उनके पिता ने अपने चार्ज में ले लिया। बाबू गुरुचरण तो बच नहीं सके उनकी दोपहर के समय मृत्यु हो गई परन्तु मेरा हाथ अच्छा हो गया और दर्द बिलकुल जाता रहा। कौन जानता था कि यह वदपर-हेजी मेरे हाथ का इलाज थी। इस घटना से जो भाव मेरे हृदय में उत्पन्न हुए ये थे "कर्म विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को तो ईश्वर ही जानते हैं परन्तु यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य सेवा करके दुख नहीं उठा सकता।"

नवां अध्याय

प्लेग के ज़माने में सेवा कार्य

इस देश में प्लेग ने सचमुच लोगों को वह ज़माना दिखला दिया जिसके लिये कहा जाता है कि उसमें भाई भाई का, पिता पुत्र का, पुत्र पिता और माता का साथी नहीं होता। हिन्दू जाति की स्वार्थ परायणता ने उनको और भी अधिक मुसीबतों का शिकार बनाया था। सहानुभूति के अभाव से उनके रोगी और मुर्दों की वह दुर्दशा हुई जिसे देखकर बिना किसी संकोच के कहा जा सकता था कि उनसे मनुष्यत्व कोसों दूर हो गया था। यह दुर-वस्था देखकर विचार उत्पन्न हुआ कि इस समय का कर्तव्य बैठे बैठे तमाशा देखना ही है या इसके सिवा कुछ और भी ? अन्तरात्मा ने चुप रहने के विरुद्ध आवाज़ उठाई और निश्चय किया गया कि कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिये। सहृदय लोगों से सलाह करके एक कमेटी बनाई गई जिसने अपने जिम्मे निम्न कार्यों को लिया:—

(१) प्लेग के रोगियों की देखभाल और चिकित्सा का प्रबन्ध करना।

(२) गरीबों को दवा भी मुफ्त देना।

(३) स्मशान के करीब लकड़ी की एक टाल खुलवा कर सस्ते भाव से लकड़ी स्मशान ही में मिल जाया करे ऐसा प्रबन्ध करना।

(४) आवश्यकता पड़ने पर कफ़न और लकड़ी मुफ्त देना।

(५) जिन लाशों का उठाने वाला कोई न हो उनका दाह पर्यन्त समस्त बातों का प्रबन्ध करना।

पर्याप्त धन इन कामों के लिए एकत्र हो गया। कमेटी के उत्साही कार्यकर्ताओं ने बड़े उत्साह से काम लिया और हिन्दू जाति के लिये यह कमेटी बड़ी बरकत सिद्ध हुई। जिले के राज कर्मचारियों ने भी मुक्त कण्ठ से कमेटी के काम की प्रशंसा की। सब से कठिन कार्य शव का श्मशान तक पहुंचाना था इसी काम से अधिकतर लोग आना कानी करते थे। इसलिये इस काम में मुझे अधिकतर भाग लेना पड़ता था। यहां दो घटनाओं का उदाहरण के लिये, उल्लेख किया जाता है:—

(१) महाशय लक्ष्मीनारायण शहर के एक प्रतिष्ठित पुरुष थे, उनके पिता बीमार हुए, उनको शहर से अलग करके एक बाग में रक्खा गया, उनका इलाज तत्परता के साथ हुआ। हम लोग बराबर उन्हें देखने के लिये जाया करते थे। वे बच न सके उनका देहावसान होगया। लक्ष्मीनारायण ने हम लोगों को खबर नहीं की और शव को ठेले पर उठवा कर ले गये। हम लोगों को मालूम होने पर दुख हुआ और हमने उनसे इसकी शिकायत भी की। इत्तफ़ाक़ से उनकी बहन भी बीमार हुई और उसकी भी अच्छी देख भाल और चिकित्सा करने पर आराम नहीं हुआ। उसका भी शरीरान्त हो गया। इस बार लक्ष्मीनारायण ने हमको खबर की। मैं कुछ विश्वास के योग्य स्वयं सेवकों को लेकर उनके घर पहुँच गया। उनके शायद चचा ला० सांवलदास, जो इससे

पहिले आर्य-समाज के बड़े विरोधी थे, वहाँ मौजूद थे, बार-बार कहते थे कि लाश के ले चलने का प्रबन्ध तो करो परन्तु हमने उन्हें कुछ उत्तर नहीं दिया। जब सब सामान ठीक होगया और लाश के ले चलने का समय आगया तो एक बार फिर उन्होंने घबराहट के साथ पूछा कि लाश को कौन उठायेगा? परन्तु जब हम सब अपने अपने कन्धों पर, लाश को उठा कर ले चले तो उनके आश्चर्य का कुछ ठिकाना नहीं रहा। म० लक्ष्मीनारायण हमारी इस सहायता से बड़े सन्तुष्ट हुए और उनका दुख एक प्रकार से कम हो गया और उनके चचा ने तो उसी दिन से आर्य-समाज का विरोध करना छोड़ दिया। देवी का अन्तिम संस्कार उत्तम रीति से हुआ।

(२) महाशय गोविन्दराम जी आर्य्य-समाज मुरादाबाद के एक बड़े उत्साही और शिक्षित सभासद थे, और अपने परिवार में एक मात्र आर्य्य धर्मावलम्बी थे। दुर्भाग्य से उन्हें भी प्लेग हो गया। उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध अच्छा किया गया और हम लोग उन्हें बराबर रोजाना देखते रहे। एक दिन रात में ११ बजे के लग भग उनका छोटा भाई घबराया हुआ आया कि भाई (गोविन्दराम) का देहान्त हो गया और उसने समस्त परिवार की ओर से इच्छा प्रकट की कि रात्रि ही में उनका संस्कार हो जावे जिससे प्रातः काल से पहिले परिवार के सब आदमी शहर छोड़ कर एक दूसरे निश्चित स्थान पर चले जायें। शरद् की ऋतु थी और आधी रात का समय, प्रत्येक व्यक्ति के अपने अपने घरों में सोने का समय था फिर भी उनके अवशिष्ठ परिवार की

इच्छाको लक्ष्य में रखते हुए यत्न किया गया कि रात्रि ही में संस्कार हो जावे। आवश्यक सामग्री और आर्य्य सेवकों का प्रबन्ध करके एक बजे रात उनके घर पहुँचे और शवको लेकर श्मशानकी ओर चल दिये। उत्तम रीति से, संस्कार विधि के अनुसार उनका संस्कार किया गया और लग भग ५ बजे प्रातः काल के सब अपने अपने घर पहुँच गये। श्मशान तक पहुंचने में कई जगह पानी में होकर भी जाना पड़ा। इस सेवा कार्य्य ने, शहर के लोगों में सेवा-कार्य्य के लिये उच्च भाव पैदा कर दिये। यह घटनाएँ उस समय की हैं जब देश में सेवा-कार्य्य का अभाव सा था और सेवा समितियों का जन्म भी नहीं हुआ था।

दसवाँ अध्याय

पारिवारिक जीवन

१८६७ ई० से क्रियात्मक पारिवारिक (गृहस्थ) जीवन का प्रारम्भ हुआ। थोड़े ही काल साथ रहने से प्रकट होगया कि विवाह के बाद अब तक गृहपत्नी के साथ न रह कर स्वयं मैंने अपने को, गृहस्थ होते हुए, न केवल गृहस्थ के सुखों से वंचित रक्खा किन्तु एक सुशिक्षिता और सती साध्वीदेवी की सत्संगति से भी अलाभान्वित रक्खा। मैंने अपने को सौभाग्यवान् समझा कि विवाह में कुछ अपनी आवाज न होने पर भी मुझे एक ऐसी समझदार देवी की संगति प्राप्त हुई। देवी जी ने उद्योग किया कि आर्य जीवन रखने में जो त्रुटियां थीं उनको दूर करें। उन्होंने नियम से संध्या और हवन मेरे साथ करना प्रारम्भ कर दिया और रात्रि में एक घण्टा समय सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि आदि ग्रन्थों के देखने का निकाला जिससे उन्हें और मुझे दोनों को बड़ा लाभ हुआ। घर का सारा प्रबन्ध देवीजी ने अपने आधीन कर लिया। इस प्रकार मुझे निश्चिन्तता से स्वाध्याय और सामाजिक कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। समस्त कार्य उत्तमता से होने लगे। किसी फ़िजूल खर्ची का नाम भी बाकी नहीं रहा। गृह-प्रबन्ध की उत्तमता यह थी कि यदि कुछ देर से रात को भी, किसी भद्र अतिथि के लिये भोजन

बनाने की आवश्यकता हो, और कई बार ऐसा हुआ ही करता था तो हरा शाक भी घर में मौजूद मिलता था, किसी भी वस्तु के बाहर से खोज करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वाकफियत बढ़ जाने से बहुधा संन्यासी, उपदेशक और दूर दूर से आकर आर्य भाई ठहरा करते थे उनसे न किसी प्रकार का पर्दा होता था और न उनके आतिथ्य की मुझे चिन्ता करनी पड़ती थी। अस्तु, मैं अपने को बड़ा सुखी गृहस्थ मानता था।

आश्रम विभाग की मर्यादा

एक बार उपर्युक्त १० नियमों में से नियम नं० ३ और १० पर विचार करते हुए निश्चय किया गया कि आश्रम की दृष्टि से जीवन का समय विभाग बनाना चाहिये। अच्छी तरह से मनन करने के बाद अन्त में २९ वीं वर्षगांठ वसन्त सम्वत् १९५२ वै० के दिन, निम्न प्रकार से, समय विभाग बनाया गया।

(१) मेरा विवाह, जैसा कहा जा चुका है, २३ वें वर्ष में हुआ था इस लिये निश्चय किया गया कि २० वर्ष गृहस्थ में रहना चाहिये।

(२) गृहस्थ समाप्त करने के बाद कम से कम १० वर्ष तक वान-प्रस्थाश्रम में रह कर, नियम सं० १० में निर्दिष्ट कर्त्तव्य की पूर्ति के लिये, विशेष रीति से तय्यारी करनी चाहिये।

(३) तय्यारी हो जाने पर, संन्यस्थाश्रम में आकर, संसार के उपकार के लिये, जो कुछ हो सके, करना चाहिये।

हिन्दी में समस्त कारोबार

अब तक सामाजिक कार्य और पत्र व्यवहार प्रायः उर्दू ही

में हुआ करता था, उर्दू न जानने वालों के साथ ही, हिन्दी या अंग्रेजी में पत्र व्यवहार होता था। इसी वर्ष गाँठ के समय निश्चय किया गया कि भविष्य में आर्य्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय तथा अपने निजू कार्य्य और पत्र व्यवहार की भाषा हिन्दी (आर्य्य भाषा) होनी चाहिये। विना किसी असाधारण आवश्यकता के उर्दू नहीं इस्तैमाल करनी चाहिये।

उपनिषदों से प्रेम

जैसा कि कहा जा चुका है, मैं एक सुखी गृहस्थ था जब कभी मुझे शहर से बाहर जाना पड़ता था, और अकसर जाना पड़ता था, तो मुझे सदैव घर लौटने में शीघ्रता करने की चिन्ता करनी पड़ती थी। बाहर रहते हुए यदि कोई कष्ट भी हुआ तो घर पहुँचते ही वह दूर हो जाता था। स्थानिक समाज के साप्ताहिक सत्संगों में, आर्य्य भाइयों की इच्छानुसार उपनिषदों की कथा करने का कार्य्य मैं किया करता था, उपनिषदों को जब से मैंनें पढ़ना शुरू किया तभी से ये मुझे अत्यन्त प्रिय लगे और ये सदैव मेरे दैनिक स्वाध्याय के पुस्तकों में रहते रहे और अब भी रहते हैं।

माता का देहान्त और उनके अंतिम दर्शन से वंचित रहना

१८९९ ई० में आर्य्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त का वार्षिक अधिवेशन मुरादाबाद में होना निश्चित हुआ था और साथ ही आर्य समाज का उत्सव भी था। दोनों के प्रबन्ध मेरे अधीन थे। क्योंकि प्रशंसित सभा का मैं मंत्री था और आर्य समाज

का प्रधान। केवल वाह्य प्रबन्ध ही नहीं अपितु उत्सव के व्याख्यान आदि और शंका समाधान करने का कार्य भार भी मेरे जिम्मे था।

उत्सव के दूसरे दिन प्रातः काल, जब मैं, उत्सव के समय एक सनातन धर्मी भाई की शंकाओं का समाधान कर रहा था तो मुझे अपने छोटे भाई का तार मिला कि "माताजी अधिक रुग्ण हैं, उन्हें देख जाओ" मैं इस अवसर पर धर्म संकट में पड़ गया। अभी उत्सव के दो दिन बाकी थे। कर्तव्य चाहता था कि उत्सव समाप्त होने से पहले यहाँ से हिलना नहीं चाहिये दूसरी ओर मातृ प्रेम का आदेश था कि सब कुछ छोड़ कर माता के दर्शनार्थ जाना चाहिये। अंत में कर्तव्य की विजय हुई और मैं ने अलीगढ़ सूचना भेज दी कि मैं चौथे दिन अलीगढ़ पहुँचूंगा परन्तु तीसरे दिन दूसरा तार मिला कि माता जी का शरीरांत हो गया। मैं निश्चित किये समय पर अलीगढ़ पहुंचा परन्तु माता के दर्शनों से वंचित रहा, जिसका कुछ काल तक मुझे बड़ा दुख रहा।

ग्यारहवाँ अध्याय

स्थानिक सामाजिक कार्य्य

उस समय के साथी नव युवक आर्य्य सिद्धान्तों को जानने लगें तथा आवश्यकता पड़ने पर जन समूह में, उन्हें प्रकट भी कर सकें, इस उद्देश्य से एक वाद प्रतिवादात्मक समिति (Dabating Club) खोली गई। यह क्लब बड़ी सफलता के साथ कई वर्षों तक चला और नियम पूर्वक इसके साप्ताहिक अधिवेशन होते रहे जिन में सिद्धान्तों पर वाद प्रतिवाद हुआ करता था। प्रत्येक सदस्य के लिये वाद में भाग लेना आवश्यक था। मुझे थोड़ा बहुत बोलने का अभ्यास इसी क्लब के बदौलत हुआ। प्रारम्भ में इस क्लब का मैं मंत्री था उसके बाद, अन्त तक, प्रधान रहा। आर्य्य समाज के सदस्यों को, इस क्लब से, अच्छी खासी ज्ञान वृद्धि हुई।

बल्देवार्य्य संस्कृत पाठशाला

यह पाठशाला स्वर्गवासी बलदेव दासजी आर्य्य के प्रदानित धन से स्थापित हुई थी। उसकी संपत्ति के तीन ट्रस्टियों में से एक मैं था। पाठशाला यद्यपि पहले से चल रही थी परन्तु आर्य्य समाज की दृष्टि से, उसकी अधिक उपयोगिता नहींथी। इसलिये पाठ विधि का संशोधन और स्टाफ में आवश्यक परिवर्तन करके इस का सुधार किया गया। इस सुधार-कार्य्य को, पूर्णता का रूप देने

वाले, मेरे विद्वान आर्य्य भाई बाबू श्यामसुन्दरलाल (मैनपुरी) उस समय मुरादाबाद के कौलिज में साइन्स के अध्यापक थे। स्वर्गवासी पं० ज्वालादत्त जी, जिन्हें ऋषि दयानन्द के शिष्य होने का गौरव प्राप्त था पाठशाला के मुख्याध्यापक बनाये गये थे। इस पाठशाला से अच्छे अच्छे संस्कृत के विद्वान, जिनमें श्री पं० जीवाराम और जीवन किशोर जी के नाम उल्लेखनीय हैं, तैयार हुये।

छात्रालय

उपर्युक्त पाठशाला तथा अन्य स्कूलों के बाहरी विद्यार्थियों के रहने तथा सदाचारिक जीवन के निर्माण करने के उद्देश्य से एक छात्रालय (Boarding House) भी खोला गया था। यह छात्रालय-छात्रों में, धार्मिक जीवन उत्पन्न करने का मूल्यवान् काम चिरकाल तक करता रहा।

आर्य्य कन्या पाठशाला

ला० बल्देव दास के ट्रस्ट से कन्या पाठशाला का एक मकान बनाकर, उसमें कन्या पाठशाला खोली गई। पाठशाला उन्नति के पथ पर चली और उसे एक दूसरे बड़े स्थान में परिवर्तन करना पड़ा, जहाँ उसकी अधिक उन्नति हुई।

आर्य्य भास्कर प्रेस

स्वर्गवासी पं० भगवानदीन जी, जो आर्य्य प्रतिनिधि सभा के सुधार कार्य्य में बराबर अंत तक, हमारे साथी रहे, उन्होंने अपना (आर्य्य भास्कर) प्रेस, सभा को दान दे दिया। इसी

प्रेस से फिर आर्य्य मित्र निकलने लगा। ये दोनों पत्र और प्रेस कई वर्ष तक मेरे प्रबंध के अन्तर्गत मुरादाबाद रहे और इन से प्रान्तिक सभा का गौरव बढ़ा।

सार्वदेशिक सभा

सार्वदेशिक सभा का विवरण अन्यत्र कुछ विस्तार के साथ दिया जायगा। यहाँ केवल इतना कहना है कि इस सभा के निर्माण के दूसरे वर्ष से लगातार ८ वर्ष तक मंत्री पद का कार्य्य मुझे करना पड़ा और सभा के कार्यालय को उन्नत रूप देने के लिये जितने यत्न की जरूरत थी, उसके करने का भरसक यत्न किया गया। उस यत्न का फल यह हुआ कि सभा ज़िन्दा रह सकी।

अन्य लोकहित के कार्य्य

आर्य्य समाज की संस्थाओं के सिवा, अन्य स्थानिक कार्य्यों के लिये भी थोड़ा बहुत समय देना ही पड़ता था जिन का विवरण इस प्रकार है।

(क) हिन्दू कारोनेशन हाई स्कूल—इस स्कूल को शिक्षा के विस्तार देने के उद्देश्य से, नगर के हिन्दू नेताओं ने, जिन में, स्वर्गवासी बाबू ब्रजनन्दनप्रसाद एडवोकेट का नाम मुख्य रीति से लेने योग्य है, खोला था। प्रशंसित बाबू जी के आग्रह से, जब तक मैं मुरादाबाद रहा स्कूल के प्रबंधादि में सहयोग देता रहा। प्रसन्नता की बात है कि स्कूल फूल फल रहा है और अब उसने कौलिज का रूप धारण कर लिया है।

(ख) व्रजरत्न लाइब्रेरी—यह पुस्तकालय, नगर के एक प्रगतिशील सज्जन बाबू व्रजरत्न जी ने खोला था । मैं जन्मकाल ही से उसका एक ट्रस्टी था । इस कार्य्य में भी जब तक मैं मुरादाबाद रहा, बराबर सहयोग देता रहा ।

बारहवां अध्याय

गुरुकुल का डिपुटेशन और खांसी का रोग

सन् १८६६ ई० में आर्य्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त का, जो वार्षिक वृहदधिवेशन, संगठित हुआ था उसमें मेरे प्रस्ताव करने पर, संयुक्त प्रान्त में गुरुकुल खोलना निश्चय हुआ था। उसके प्रारम्भ करने के लिये यह भी निश्चय हुआ था कि २० हजार रुपये पहले एकत्र कर लेना चाहिये। इसके लिये मुझे ६ मास का अवकाश लेना पड़ा। अप्रैल से सितम्बर १६०० ई० तक का समय डिपुटेशन के कार्य्य में लगाना पड़ा। संयुक्त प्रान्त के अधिकतर पश्चिमी जिलों में डिपुटेशन का काम हो सका। गरमी और वर्षा की पूरी ऋतुयें इस काम में लगीं। उस समय न मोटरों का इतना फैलाव हुआ था और न रेल की शाखायें और उप शाखायें जगह जगह बन चुकी थीं। ग्रामों की समाजों में जाने का एक मात्र साधन कच्ची सड़कें और बैल गाड़ी थी। इस डिपुटेशन के काम में श्री पं० नन्दकिशोर देव, पं० प्रयागदत्त अवस्थी और महाशय प्रवीणसिंह जी भजनीक ने पूरी पूरी सहायता दी थी। डिपुटेशन तेरह हजार से कुछ अधिक धन संग्रह करने में कामयाब हो सका। इस डिपुटेशन के सिलसिले में जो लम्बा भ्रमण करना पड़ा, उसकी कुछेक घटनाएँ जो अनुभव में आईं, यहाँ अंकित की जाती हैं:—

पहली घटना—मुजफ्फरनगर के ज़िले में, किसी एक स्थान से कांधला जाते हुये जो बैल गाड़ी हम को मिली थी, उसके बैल अत्यन्त निर्बल थे, इसलिये मई मास की ठीक दुपहरी में १६ मील पैदल चलना पड़ा। कांधला पहुँचते पहुँचते हमारी बुरी दशा हो गई परंतु कांधला के आर्य्य भाइयों ने बहुत आराम और साथ ही अधिक धन देकर उस कष्ट को दूर करा दिया। यह एक उदाहरण है इस प्रकार के कष्ट अनेक जगह भोगने पड़े।

दूसरी घटना

कालपी में एक विलक्षण पुरुष के दर्शन हुए। वहाँ के एक वकील और प्रतिष्ठित जमीदार को जिनका नाम मथुराप्रसाद था, यह स्वप्न था कि वह अपने को रावण सिद्ध करें। उन्होंने बहुत धन व्यय करके बृटिश गवर्नमेंट से स्वीकारी प्राप्त की थी, कि ग्राम के सरकारी काग़ज़ों में उनके नाम के आगे "लंकेश" शब्द लिखा जाया करे। एक और दूसरा काम उनका लंका निर्माण था। इस लंका के निर्माण के साथ उन्होंने एक छोटा सा बाजार भी बनवाया था, जिसे वे लंका हाट कहा करते थे उसी बाजार में एक बहुत ऊंची मीनार भी बनाई गई थी, जिसका सब से ऊपरी भाग रावण के सिर जैसी बनावट के साथ समाप्त होता था। दीवारों पर चारों ओर जगह जगह कल्पित राक्षसों की भयानक भयानक सूरतें बनी हुई थीं। वहाँ (कालपी) के निवासियों से मालूम हुआ कि विजय दशमी के दिन उपर्युक्त, लंकेश महोदय, मीनार की भीतरी सीढ़ियों से उसके ऊपरी

भाग पर पहुँच कर रावण के बने शिर में, अपना शिर पहुँचा कर बहुत चीखते और चिल्लाया करते हैं, मानो वे साक्षात् रावण ही थे, और राम से युद्ध कर रहे थे। वहाँ के लोगों ने एक दूसरी घटना बतलाई कि एक बार, इन्हीं लंकेश ने ब्रह्म भोज किया और घोषणा करदी कि प्रत्येक ब्राह्मण को भोजन के बाद एक २ रुपया दक्षिणा मिलेगी। बहुत से ब्राह्मण भोज में एकत्र हो गये। भोजन उत्तम और कई प्रकार का बनाया गया था, रायता जो मीठा बनाया गया था उसमें लाल रंगत देदी गई थी। इस प्रकार जब सब भोजन परोसे जा चुके तो लंकेश महोदय वहां आये और विनम्र भाव से, ब्राह्मणों को सम्बोधन करते हुए कहा कि "राक्षसो रक्तपान करो" यह सुन कर कई तो उठ गये परन्तु अधिकाँश दक्षिणा के प्रलोभन, से बैठे रहे और उन्होंने भोजन करके दक्षिणा प्राप्त करली। अस्तु:। जब मैं इनके यहां गुरुकुलार्थ धन माँगने गया तो वे बड़े प्रेम से बग़लगीर होकर मिले यह कहते हुए कि "नारायणसे रावण मिलता है।" मैंने उत्तर दिया कि रावण और नारायण के मेल को ईश्वर मुबारिक करें। मेरा उत्तर सुनने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने गुरुकुल की सहायतार्थ आशा से कुछ अधिक धन दिया।

तीसरी घटना

सहारनपुर के जिले में बैलगाड़ी पर हम लोग एक ग्राम को जा रहे थे। जब दोपहर का समय हुआ और तेज लू चलने लगी तो कुछ आराम करने के लिये एक घने वटवृक्ष के साये में ठहर गये। थोड़ी देर के बाद एक १०-१२ हाबूड़ों (गृह हीन)जंगली

जाति) का जत्था वहाँ आया और वे सब भी उसी वृक्ष की छाया में दूसरी ओर बैठ गये। उस जत्थे में स्त्री और पुरुष दोनों थे।

थोड़ी देर बैठने के बाद ही उनमें से एक माता को बच्चा पैदा हो गया। उस स्त्री ने बिना किसी की सहायता के बच्चे से सम्बन्धित वे सब काम कर लिये जिनके करने की उनमें प्रथा थी, कठिनता से एक घण्टा बीता होगा कि उस माता ने, एक टोकरे में गुदगुदा कपड़ा डाल कर, उस पर बच्चे को लिटा दिया और एक कपड़ा उसके ऊपर डाल कर उस टोकरे को अपने सिर पर रख कर जत्थे के बाकी लोगों के साथ आगे की यात्रा के लिये चल दी। मैं और मेरे साथी इस घटना को देख कर चकित हो गये। हमारे घरों में बच्चा पैदा होने के बाद स्त्रियां कई दिन तक, कुछ भी काम करने के सवथा अयोग्य होती हैं और इन दिनों में उनके सभी काम अन्यों को करने पड़ते हैं। यह अन्तर लाबूड़ा स्त्रियों के तपस्विनी. और हमारी स्त्रियों के आराम तलब होने ही के कारण से हैं। चक्की पीसने वाली स्त्रियों को, कई डाक्टरों का कहना है, कि बच्चा अन्यों की अपेक्षा, बहुत थोड़े कष्ट से हो जाता है। अस्तु: इस छै मास के समय को डिपुटेशन के कार्य्य में लगाकर डिपुटेशन का कार्य जिस दर्जे तक पहुँचाया था, वहीं छोड़ कर मैं मुरादाबाद लौट आया।

खाँसी का प्रारम्भ

खाँसी का प्रारम्भ तो इस यात्रा के आते ही होने लगा था, यात्रा समाप्त होने पर तो उसका प्रकोप बहुत बढ़ गया। रात में चार चार घण्टे खाँसी के कारण जागना पड़ता था। ३½ वर्ष

इलोपैथी की चिकित्सा की गई इस बीच में ३ सिविल सर्जनों ने चिकित्सा में भाग लिया। डाक्टर भोलानाथ असिस्टैंट सरजन तो मेरे स्थिर चिकित्सक हो थे। इन सब ने भरपूर यत्न किया परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ। फिर प्रायः छैमास तक अमरोहे के एक प्रसिद्ध यूनानी हकीम की चिकित्सा की, उसके बाद कई मास तक आयुर्वेद प्रणाली की चिकित्सा का अनुसरण किया गया परन्तु लाभ किसी से कुछ नहीं हुआ। चार वर्ष से अधिक काल तक चिकित्सा करने से जब कुछ लाभ नहीं हुआ तो रोग को लाइलाज समझा, चिकित्सा छोड़ दी गई। शारीरिक दशा खराब हो जाने से, समस्त सामाजिक कार्यों से संबंध तोड़ लेना पड़ा मित्रमंडल और सहयोगी कार्यकर्ता सभी को मेरे जीवन से निराशा होने लगी।

जल चिकित्सा

मैं उस समय मुरादाबाद के प्रसिद्ध वकील बाबू ब्रजनन्दन प्रसाद के पुस्तकालय की पुस्तकों का स्वाध्याय किया करता था। उन पुस्तकों में एक पुस्तक लुई कुहना कृत New Science of heeling देखने को मिल गई। मैंने उस पुस्तक को ध्यान-पूर्वक पढ़ा। मुझे पुस्तक में अंकित युक्तियां बहुत पसंद आई। उस समय तक यह चिकित्सा न प्रारंभ हुई थी और न इस पुस्तक का प्रचार ही हुआ था। मैंने अपनी समझ के अनुसार एक टप बनवाकर, इस इलाज का करना शुरू कर दिया। आठ दिन ठंडे बाथ लेने के बाद जब गर्म (Steam) बाथ लिया गया तो

इससे मुझे बड़ा लाभ हुआ और मैं पूरी रात सोने लगा और दिन में भी खांसी बहुत कम होगई। एक मास की चिकित्सा के बाद में स्वस्थ होगया और अब किसी समय भी खांसी नहीं आती थी। परन्तु ६ मास तक इस चिकित्सा को जारी रक्खा।

भोजन में परिवर्तन—फलाहार

इस चिकित्सा पद्धति का लाभ, अनुभव से, प्रकट हुआ कि भोजन की नियमबद्धता पर निर्भर है। इस लिये अन्न छोड़कर फलाहार शुरू किया गया। प्रत्येक ऋतु में होने वाले ताजा फलों का सेवन प्रारंभ किया गया। चिकित्सा यद्यपि ६ मास तक की गई, परन्तु फलाहार एक वर्ष तक जारी रक्खा गया। मैं इस फलाहार काल में कच्ची लोकी, काशीफल, तोरई, और आलू, आदि को उसी प्रकार खा लिया करता था जैसे कोई कच्ची मूली, और गाजर को खाया करते हैं। इस भोजन परिवर्तन से, मुझे बड़ा लाभ हुआ। एक वर्ष के बाद मामूली भोजन प्रारम्भ कर दिया गया।

खांसी का बचा कुचा प्रभाव

इस खांसी का संबंध फेफड़ों से नहीं अपितु गले से था। डेपुटेशन काल में प्रतिदिन और कहीं कहीं एक एक दिन में दो दो वार तीन तीन वार व्याख्यान देने और गरमी सरदी का बचाव न रहने से, खांसी हो गई थी। अब कभी कभी अधिक आवाज़ से व्याख्यान देने आदि से जब कभी खांसी की शुरूआत होती है तो अत्यन्त गर्म दूध या चाय के सेवन से बह जाती रहती है।

तेरहवां अध्याय

संस्कृत और अँगरेज़ी का अभ्यास

यह कहा जा चुका है कि अष्टाध्यायी के अध्ययन में, पं० कल्याणदत्त जी के कभी मुरादाबाद रहने और कभी बाहर चले जाने से बाधा पहुँचती रही। अंत को पं० जी मुरादाबाद छोड़कर अलीगढ़ रहने लगे। मुरादाबाद में उस समय अष्टाध्यायी का जानने वाला कोई न था इसलिये अष्टाध्यायी, सदैव के लिये छूट गई। पं० लालमणि, एक व्याकरण के विद्वान् और बड़ी सरलप्रकृति के सज्जन थे। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके वादा कर लिया कि वे मुझे आकर लघुकौमुदी पढ़ा दिया करेंगे। साहित्य के ग्रन्थ मैं स्वयं देख लिया करता था यदि कहीं सन्देह होता था तो पं० जी से पूछ लिया करता था। इस प्रकार अध्ययन का क्रम बदल लेने से एक वर्ष में लघु-कौमुदी समाप्त होगई और साहित्य में हितोपदेश, पंच तंत्र, रघुवंश, उत्तर राम चरित, शिवराज विजय और मृच्छकटिक देख लिये गये। क्रियात्मक रूप से संस्कृत का अध्ययन यहां समाप्त होगया। अँगरेज़ी का अध्ययन, स्वाध्याय के रूप में जारी रखने का निश्चय करके, उसका भी नियमित अध्ययन समाप्त कर दिया गया।

स्वाध्याय

खांसी का रोग होजाने और सामाजिक कार्यों के छूट जाने से, स्वाध्याय के लिये पर्याप्त समय मिलने लगा। एक बार फिर ध्यान देकर ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा। यह सातवां अवसर था जब मैंने इस ग्रन्थ को पढ़ा था। इसके बाद निश्चय करके ऋषि दयानन्द के छोटे मोटे, ट्रेक्टों से लेकर उनके वेदभाष्य तक का स्वाध्याय किया गया और आवश्यक नोट लिये गये। सत्यार्थ प्रकाश में जो छापे की अशुद्धियां थीं और जहां जहां प्रमाण में दिये ग्रन्थों के पते सही नहीं थे उनकी सूची बनाकर संशोधनार्थ वैदिक प्रेस अजमेर को भेज दी गई। इन ग्रन्थों के सिवा अन्य ग्रन्थ भी देखे गये। यौरुप और अमरीका के विद्वानों के ग्रन्थों के अध्ययन से भी मुझे बड़ा लाभ हुआ इमरसन, थौरियो और माडॅन के प्रायः सभी ग्रन्थों को मैंने देखा इन विद्वानों के ग्रन्थों का अध्ययन, मेरे लिये बड़ा रुचिकर विषय था।

सामाजिक कार्य

स्वास्थ्य कुछ अच्छा हुआ था कि आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यालय फिर मेरे आधीन किया गया। आर्य भास्कर प्रेस तथा आर्य मित्र पत्र पहले ही से मेरे आधीन थे। १६०३ ई० में, सभा के निश्चयानुसार, उसका कार्यालय मुरादाबाद से फर्रुखाबाद चला गया और एक दो वर्ष के बाद ही आर्य भास्कर प्रेस तथा आर्य मित्र दोनों आगरा चले गये। इस प्रकार इन कार्यों से

मुक्ति मिल जाने पर स्वाध्याय के लिये काफ़ी समय मिलने लगा। अवकाश देखकर अनेक सज्जन और कुछेक विद्यार्थी भी कुछ पूछ गछ करने कुछ धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययनार्थ आने लगे। उन्हें कुछ पढ़ा देने अथवा उनके संदेहों के दूर कर देने का काम मेरे लिये बड़ा रुचिकर सिद्ध हुआ।

इस बीच की, कुछेक घटित घटनाओं का उल्लेख कर देना, कदाचित् अरुचिकर विषय न होगा इसलिये वे लिखी जाती हैं:—

पहली घटना

मुरादाबाद ज़िले के, एक ग्राम निवासी मुसलमान कृपक ने, एक दिन आकर शिकायत करते हुए कहा कि उसके पास एक बैलों का तांगा कृपि संबंधी कार्यों के करने के लिये है, उसे एक बार थानेदार ने मंगवालिया था। तांगे के वापिस आने पर मालूम हुआ कि किराये की तो बात ही क्या उन्होंने न तो बैलों को चारा दिया और न गाड़ीवान को खाना। मैं थानेदार समझकर चुप होगया। अब हालत यह है कि थाने के छोटे बड़े कर्मचारी, जिसे भी ज़रूरत होती है बेगार में ताँगा मँगवा लेता है। मैं दुर्व्यवहार से तंग आगया हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरा तांगा कोई ख़रीद ले जिससे मेरी जान बचजावे। मुझे उसकी दयनीय दशा पर तरस आया और उसे मैंने समझाया कि जिस जिस ने तेरा तांगा मंगाया है और किराया नहीं दिया, उनसे किराया मांग यदि वे न दें तो कचहरी में अरज़ी देदे, तुझे जरूर किराया मिल जावेगा।" परन्तु उस

सीधे और बोदे हृदय वाले कृषक की समझ में यह बात नहीं आई और न उसने यह काम किया। उस समय मेरे हृदय में ये भाव जागृत हो उठे "कि अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार का सहने वाला ज्यादा पापी होता है। यदि अत्याचार के सहने वाले न हों तो अत्याचार करने वाले पैदा ही नहीं हो सकते।"

दूसरी घटना

एक नवयुवक १६, १७ वर्ष की आयुवाला स्कूल में पढ़ा करता था, वह आर्यसमाज के सत्संगों में आया जाया करता था- इस लिये आर्यसमाज उसे अच्छा मालूम होने लगा। एक दिन की घटना है कि उसका पिता, जो पुराने ढांचे का सीधासादा हिन्दू था, स्नान करने के बाद, गंगा-जमुना गोदावरी आदि नदियों के नाम लेने लगा, जैसा कि अनेक, इस प्रकार के विचार वाले किया करते हैं। पुत्र ने शेखी के साथ, पिता को कहा कि "मैं इन नदियों के नाम स्कूल में, इसलिये याद किया करता हूँ क्यों कि मुझे मिडिल का इम्तिहान देना है, तुम किस लिये याद करते हो? क्या तुम्हें भी कोई इम्तिहान देना है?" पिता ने अप्रसन्न होकर उसे घर से निकाल दिया, उसे स्वभावतः मेरे पास चला आना पड़ा। उसकी दास्तान सुनकर हँसी भी आई और क्रोध भी। बालक को समझाया गया कि आयन्दे से ऐसी शेखी कभी नहीं करनी चाहिये और उसके पिता को बुलाकर पिता और पुत्र में राजीनामा करादिया गया। पिता कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित करता हुआ पुत्र को घर लेगया।

तीसरी

क़ाज़ी जुहुरुद्दीन एक प्रतिष्ठित सज्जन मुरादाबाद में गवर्नमेंट सर्विस में थे। उनकी पुत्री का निकाह था। निकाह से पहले वे एक दिन मेरे घर आये और विनयपूर्वक कहा कि "आप मेरी पुत्री के निकाह में शरीक़ हों और निकाह हो जाने पर मेरी पुत्री और दामाद दोनों को दुआ देवें।"
मैं उस समय की अपनी आयु की दृष्टि से, अपने को इस योग्य नहीं समझता था कि जहां अनेक अधिक आयु वाले भी शरीक हों, वहां मैं वर वधू को आशीर्वाद दूं; परन्तु जब क़ाज़ी साहिब ने बहुत आग्रह किया तो मजबूरन मुझे मानना पड़ा। निकाह में "ईजावोक़बूल" के बाद मैंने थोड़े से चुने हुये शब्दों में वरवधू को आशीर्वाद दिया। इसके बाद वहां छुहारों की लूट हुई। किसी के हाथ दो, किसी के हाथ चार आये। मैं इस लूट में शरीक नहीं हुआ इसलिये मुझे वैसे ही बहुत से छुहारे भेंट किये गये। शायद यह छुहारों के बांटने की प्रथा, अरब के किसी रस्म की यादगार है। जो कुछ हो मुझे इस तक़रीब में शरीक होने से बड़ी प्रसन्नता हुई।

चौथी घटना

स्टीफिन्स महाशय, कोलेक्टर के दफ़्तर मुरादाबाद में, म्यूनिसिपल क्लर्क थे। उनकी स्त्री लेडी डाक्टर थी। दोनों अच्छे शिक्षित और मिलनसार प्रकृति के व्यक्ति थे। एक दिन स्टीफ़िन्स मेरे पास आये और कहा कि हमारे एक बड़े पादरी

विलायत जाने वाले हैं, उन्हें हम एक अभिनन्दन पत्र देशीभाषा में देना चाहते हैं और यह कि मैं उस अभिनन्दन पत्र को लिख दूं। मैंने उत्तर दिया कि "किसी ईसाई विद्वान् से लिखवाओ तो वह अच्छा लिख देगा" परन्तु उन्होंने इसी बात पर इसरार किया कि मैं ही उसे लिखदूं तब मैंने उसे लिख दिया। स्टीफ़िन्स महोदय ने उसे रोमन अक्षरों में लिख लिया और उचित समय पर विदाई के समारोह में उसे सुना दिया। दूसरे दिन मुरादाबाद मिशन हाई स्कूल के हेड मास्टर जार्डन महोदय मेरे पास आये और धन्यवाद देने के बाद प्रकट किया कि कभी किसी और ईसाई से यह आशा नहीं हो सकती थी कि वह इतनी शुद्ध भावनाओं के साथ, ऐसा अभिनन्दन पत्र लिख देता, इसलिये मैं विशेष रीति से धन्यवाद देने आया हूँ। मैंने उनके इस शिष्टाचार का आदर किया।

रचना कार्य का प्रारंभ

सन् १९०७ ई० में आवश्यक्तावश मुझे दो ट्रेक्ट लिखने पड़े एक हिन्दी में और दूसरा उर्दू में।

(१) मुंशीइन्द्रमणि के साथ, म० जगन्नाथदास जी भी ऋषि दयानन्द की आज्ञा से, आर्य समाज मुरादाबाद की सभासदी से, ख़ारिज किये गये थे। तब से यह महाशय कुछ न कुछ ऋषि दयानन्द के विरुद्ध कहते और लिखते रहते थे। उन्हीं की बातों का उत्तर हिन्दी ट्रेक्ट में दिया गया था।

(२) एक महाशय जिनका नाम जगदम्बा प्रसाद था, करांची

में जाकर मुसलमान होगये। मुसलमान होने के बाद उन्होंने एक ट्रैक्ट लिखा और प्रकाशित किया कि उन्होंने इसलाम क्यों ग्रहण किया। इस ट्रैक्ट में आर्य समाज पर कुछ आक्षेप किये गये थे। उर्दू ट्रैक्ट इन्हीं आक्षेपों का उत्तर था। प्रसन्नता की बात है कि यह महाशय, पीछे से आर्य होगये और संन्यासी होकर इन्होंने अपना नाम मंगलानन्द पुरी रक्खा था।

परिवार सम्बन्धी एक घटना

पारिवारिक जीवन अच्छा सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा था एक बार मुज़फ्फरनगर ज़िलान्तर्गत खरड़ निवासी पं० कल्याणदत्त जी वैद्य मुरादाबाद आकर घर ही पर ठहरे। उन्होंने परिवार में कोई सन्तान न देखकर एक जानकार दाई को बुलवाया और उससे देवी जी के शरीर की जांच कराई और जांच के बाद कुछ औषधि सेवन करने के लिये दी। औषधि अनुकूल पड़ी। फल यह हुआ कि देवीजी गर्भवती होगई। आवश्यक संस्कार होते रहे। १६०६ ई० में जब सन्तानोत्पत्ति का समय निकट आया तो मेरे छोटे भाई ज्वालाप्रसाद जी, देवी जी को फ़ैज़ाबाद लेगये जहां वे रहते थे, इस विचार से कि मुरादाबाद में किसी दूसरी स्त्री के न होने से, उन्हें तकलीफ़ होती। फ़ैज़ाबाद में पुत्र का जन्म हुआ। परन्तु दुर्भाग्य से उसकी माता की छातियों में, उसके लिये दूध काफ़ी नहीं होता था और बाहर का दूध, बहुत यत्न करने पर भी, बालक के अनुकूल नहीं पड़ा, इसलिये उसकी मृत्यु होगई। स्वाभाविक था

कि इस मृत्यु से बालक की माता को बहुत दुख हुआ। इसके बाद देवी जी फिर मुरादाबाद आगईं। यहां आकर सामाजिक कार्यों में लगजाने से उन्हें कुछ शान्ति प्राप्त हुई।

स्वाध्याय

स्वाध्याय बराबर जारी रहा। इस बीच में आश्वलायर्य आदि कृत तीन गृह्य सूत्र और कात्यायन कृत श्रौत्र सूत्र देखने का अवसर मिला। इनके देखने से चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। यह कठिनता से विश्वास करने योग्य बात है कि जिनके नाम से ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, असल में हैं भो उन्हीं के लिखे हुये। सामवेद श्री पं० तुल्सीराम स्वामी की टोका के सहायता से देखा गया। अथव वेद को कोई आर्यटोका नहीं थी इम लिये सायणाचार्य कृत टीका देखीगई। इस टोका में एक चौथाई से अधिक मंत्र बिना टीका ही के छोड़ दिये गये हैं। जिनकी टीकायें हैं उनमें अशलीलता की झलक जगह जगह मिलता है। ऋग्वेद और यजुर्वेद के प्राति शाख्य भो देखे गये। इन ग्रन्थों में पुनुरुक्ति के अर्थ बिलक्षण किये गये हैं। जो कुछ हो ये प्राति शाख्य मुझे रुचिकर प्रतीत हुये।

सार्वदेशिक सभा का पहला वार्षिक अधिवेशन

प्रयाग में १६१० ई० के अंत में बड़ी भारी प्रदर्शिनी हुई थी। उस अवसर पर आर्य समाज का प्रचार बड़े स्केल पर हुआ था। इसी अवसर पर सार्वदेशिक सभा का, जो १६०६ ई० में बन चुकी थी, पहला अधिवेशन संगठित हुआ था। सभा का

यह अधिवेशन अभूतपूर्व था। स्थापन तिथि से उस समय तक न तो सभा का कोई रिकार्ड बन पाया था न सभा की ओर से कोई काम ही शुरू किया गया था। वार्षिक रिपोर्ट फिर किस चीज़ की बनती ? इसलिये अधिवेशन में केवल यह प्रकट किया गया कि विचार किया जावे कि किस प्रकार सभा का काम शुरू किया जावे और इस विचार के बाद वार्षिक निर्वाचन कर लिया जावे। विचार क्या होना था अगले वर्ष के लिए निर्वाचन कर लिया गया ? पं० वंशीधर शर्मा के स्थान में म० मुंशीराम जी प्रधान और पं० भगवान्दीन जी की जगह मैं मन्त्री निर्वाचित हुआ। इसके बाद भी यह सभा, जैसा कि कहा जा चुका है, कई वर्ष तक नाम मात्र ही की सभा रही। यह जरूर हुआ कि उसका नियमपूर्वक कार्यालय स्थापित हुआ और आवश्यक फ़ाइल तथा रजिस्टर खोले गये।

चौदहवां अध्याय

पारवारिक जीवन की समाप्ति

१६११ ई० के प्रारंभ में दूसरे पुत्र का जन्म हुआ। इस बार प्रसव में कुछ इस प्रकार की असावधानी होगई जिससे देवी जी को ज्वर आने लगा और पेट फूल गया। अनेक चिकित्सायें हुईं परन्तु फल कुछ न निकला। अन्त में बालक के जन्म से दसवें दिन उनका शरीरांत होगया। अन्त में उन्होंने मुझे अनुमति दी कि मैं जो चाहूँ करलूं जिसका अभिप्राय यह था कि यदि मैं चाहूँ तो दूसरा विवाह करलूं। बालक पहले दिन ही माता से पृथक रहा। एक धाई उसे दूध पिलाया करती और वही उसकी देखभाल रखती थी। ६ मास तक पूरा यत्न करने पर बालक जीवित रहा परन्तु उसके बाद कोई यत्न सफल नहीं हुआ और बालक ने चाहा कि नकली नहीं अपितु असली माता ही की गोद में रहे और इसलिये ६ मास के बाद वह अपनी असली माता ही गोद में चला गया। इस प्रकार ३१ अगस्त १६११ को गृहपत्नी और पुत्र दोनों को खो कर मैं गृहस्थ संबंधी कार्यों से मुक्त होगया। कैसी समय की विलक्षण गति है कि यही मेरा ४३ वां वर्ष था जिसमें मैंने गृहस्थ छोड़ने का संकल्प कर रक्खा था (देखो आश्रम विभाग की मर्यादा)।

अन्तर इतना होगया कि मैंने गृहस्थ को नहीं छोड़ा किंतु गृहस्थ ने मुझे छोड़ दिया। अस्तु; कुछ दिन चित्त इसी प्रकार

अस्त व्यस्त रहा, उसके बाद नई हालत पर भी संतोष आने लगा और मैंने समझ लिया कि १४ फरवरी सन् १८९६ ई० का, आश्रम विभाग की मर्यादा वाला संकल्प इसी प्रकार पूरा होना था। अब पर्याप्त समय स्वाध्याय के लिये मिलने लगा।

हृदय में विशेष प्रकार का परिवर्तन

इन उपर्युक्त घटनाओं के घटित होने और इन अवस्थाओं से गुजरने के बाद, हृदय में एक विशेष प्रकार का लचकीला पन आ गया। रामायण और महा भारत के मर्म स्थलों के पढ़ने, अथवा सुनने या किसी दुखी को दुखित, अथवा किसी रोगी को रोग से पीडित देखकर, जी भर आने लगा और कई बार आंसू आंखों में आजाया करते थे। जी यही चाहने लगा कि यथा संभव दुखियों को सेवा और मुफ्त चिकित्सा की जावे। इस इच्छा की पूर्त्ति के लिये कुछेक पेटेन्ट औषधियां मंगाई गईं और फिर कुछ दिनों के बाद Biochemic System का अभ्यास करके १२ प्रकार की औषधियां मदरास प्रान्त से मंगवा कर उस चिकित्सा का प्रारंभ केवल गरीबों के लिये किया गया। इस काम में जी लगने लगा और जब कोई रोगी अच्छा होता तो इस को सुनते ही आल्हादित हो उठता। इस प्रकार चित्त की वृत्तियों के परिवर्तित होजाने से निश्चय कर लिया गया अब दूसरा विवाह नहीं करना है।

नौकरी छोड़कर सामाजिक कार्य करने का प्रश्न

स्वर्गवासी प० तुलसीराम स्वामी को मुझसे बड़ी प्रीति थी। उन्होंने एक निजीपत्र में मुझे लिखा कि पेन्शन जो कुछ

मिले लेकर, मुझे आर्यप्रति निधि सभा का काम करना चाहिए। इस प्रस्ताव की पूर्ति में एक बड़ी कठिनता थी। पेन्शन केवल उसी हालत में मिल सकती थी कि जब सिविल सरजन सरटीफ़िकेट दे देवे कि मैं काम करने के अयोग्य (Invalid) हूँ। ऐसा सरटीफ़िकेट लेना कुछ कारणों से उचित न ही था, उनका विवरण इस प्रकार है :—

(१) १९१० ई० में काम के अयोग्य होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता था जबकि १९४१ ई० में भी मैं काम के अयोग्य नहीं हूँ।

(२) मैं सदैव ऐसे पदों पर रहा जहां हजारों रुपये रिशवत मिल सकती थी परन्तु एक आर्य होने की हैसियत से मैंने रिशवत लेने को सदैव पाप समझा। पी. हैरिसन (P. Harrison), जिन्होंने इलाहाबाद के मजिस्ट्रेट की हैसियत से स्वामी आलाराम सागर सन्यासी से इस बात के लिये जमानत ली थी कि यह भविष्य में आर्य समाज पर बग़ावत का इलज़ाम न लगाने पावे, मुरादाबाद में कलेक्टर थे। मैं उनकी पेशी में काम किया करता था। उन्होंने ज़िला छोड़ते समय, मेरे काम की प्रशंसा करते हुये अंत में यह लिखा था कि He has remarkable reputation for honesty मैंने सोचा कि जब मैंने कभी प्रजा से बेईमानी करके धन नहीं लिया तो गवर्नमेंट से बेईमानी करके क्यों धन (पेन्शिन) लूँ।

इसलिये इन बातों का विचार करते हुए, मैंने पं० तुलसीराम जी के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

पन्द्रहवाँ अध्याय

गुरुकुल को फ़र्रुखाबाद से वृन्दावन लाने का आन्दोलन

इसी बीच (१९११ ई०) में गुरुकुल के जो फ़र्रुखाबाद में स्थापित हो चुका था, फर्रुखाबाद से उठाकर वृन्दावन लाने का आन्दोलन संयुक्त प्रान्त के समाजों में हो रहा था और आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से निश्चय हो चुका था कि और १० हज़ार रुपये एकत्र होजाने पर गुरुकुल, वृन्दावन ले जाया जा सकता है। पं० तुलसीराम स्वामी और बाबू मदनमोहन सेठ ने आग्रह किया कि इस दस हज़ार में से १०००) मैं एकत्र करके १ अक्टूबर सन् १९११ को फ़र्रुखाबाद पहुँचा दूं क्योंकि उसी दिन प्रशंसित सभा का एक नैमित्तिक अधिवेशन वहां इसी गुरुकुल के प्रश्न के अन्तिम निर्णयार्थ होने वाला था। उनकी इच्छानुसार १०००) एकत्र करके नियत समय पर फ़र्रुखाबाद पहुँचा दिये गये। बाकी ९०००) भी एकत्र हो चुके थे। वृन्दावन में गुरुकुल के लिये भूमि देना राजा महेन्द्रप्रताप जी ने स्वीकार कर लिया था। अधिवेशन में यह प्रश्न कि गुरुकुल वृन्दावन भेजा जावे या नहीं विचारार्थ पेश हुआ और उस पर अच्छा खासा वादानुवाद हुआ। अंत को स्वर्गवासी बाबू बल्देव प्रसाद जी वकील प्रधान आर्य समाज बरेली के ओजस्वी भाषण से प्रभावित होकर अधिवेशन में निश्चय होगया कि गुरुकुल फ़र्रु-

खाबाद से वृन्दावन लेजाया जावे और यह भी निश्चय हुआ कि इमारतें बनाने और गुरुकुल वृन्दावन में पहुँचा देने के बाद उसका आगामी वार्षिकोत्सव दिसम्बर १९११ ई० में वृन्दावन ही में मनाया जावे।

गुरुकुल का वृन्दावन में पहुंच जाना और उसका उत्सव

वृन्दावन में इमारतों के बनवाने और उत्सव आदि सभी कार्यों के करने के लिये एक उपसभा बनी और इच्छा न रखने पर भी उसका मन्त्री मुझे बना दिया गया। उस समय सहयोगी कार्यकर्ताओं और मित्रों ने विश्वास दिलाया कि मुझे इस मामले में कुछ काम न करना पड़ेगा। सब काम मथुरा निवासी उपसभा के सदस्य करलेंगे। अक्टूबर १९११ ई० के पहले सप्ताह में उपसभा की पहली बैठक मथुरा में हुई। जिसमें निम्न कार्य किये गये (१) गुरुकुल की इमारतों के डिजायन (चित्र) स्वीकार किये गये (२) बाबू धरनीधरदास पेन्शिनर इंजीनियर तथा बाबू उदयराम ओवरसियर पी० डब्लू० डी० के आधीन इमारतों के बनवाने का काम किया गया। अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में मथुरा से अनेक सज्जनों के पत्र और तार मेरे पास मुरादाबाद पहुँचे कि इमारतों का काम अभी तक शुरू नहीं हुआ है और यह कि यदि मैं न पहुंचा तो कुछ भी वहाँ होने की संभावना नहीं है। आ० स० मुरादाबाद का उत्सव भी समीप आ गया था। उत्सव से निवृत्त होकर छुट्टी लेने के बाद मैं, दिसम्बर के अंत तक मथुरा रहने के लिये, २७ अक्टूबर को

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी
(१६११ ई० में जब आपने गुरुकुल
वृन्दावन का कार्य्य प्रारम्भ किया था)

मथुरा पहुँचा। यहाँ अब तक कुछ भी नहीं हुआ था सब लोग हाथ पर हाथ रक्खे बैठे थे। मथुरा पहुंचते ही ठेकेदारों का प्रबन्ध कराके इमारत और उसके लिये लकड़ी आदि बनाने का काम चालू किया गया। २८ अक्टूबर को गुरुकुल के लिए जो वाटिका मिली थी, मैं उसे देखने गया। वाटिका का एक छोटा सा द्वार जमना की ओर था। वाटिका क्या थी ? कांटे दार झाड़ियों का एक विशाल जंगल था। उलझते उलझाते वाटिका की दूसरी ओर पहुँचने में मुझे एक घंटा लग गया। मैं दूसरे किनारे पर पहुँच कर निराशा के समुद्र में गोते लगाने लगा। केवल १¾ मास बाकी हैं. इमारत अभी शुरू भी नहीं हुई है, किस प्रकार यह काम समय पर पूरा हो सकेगा ? अंत में निश्चय यही हुआ कि ईश्वर का आश्रय लेकर काम शुरू कराना चाहिए। काम शुरू कराया गया। दिन के मजदूर अलग, रात के अलग थे। रात भर गैस के हंडे जलते थे। इस प्रकार दिन रात बराबर काम जारी किया गया। प्रत्येक काम के लिये पृथक ठेकेदार और मजदूर थे। इस प्रकार १५ वीं नवम्बर ११ तक काम का बड़ा हिस्सा होगया और अब आशा बँधने लगी कि सब काम समय पर हो जावेगा। काम की निगरानी के लिये कुछेक विश्वास के योग्य आदमी मुरादाबाद से बुलाये गये। इस सब संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि १५ दिसंबर तक दो विंग टीन के बैरकों की, जो ब्रह्मचारियों के रहने के लिये पर्याप्त थी, एक बंगला, पाठशाला, भोजन शाला और भंडार आदि के सब

मकान तय्यार होगये। अब रात्रि का काम बंद करके, केवल दिन का काम जारी रक्खा गया। १७१२ ब्रह्मचारियों और अध्यापकगण आदि के वृन्दावन पहुँचने की नियत थी २४ से २७ दिसम्बर तक उत्सव होने वाला था। फ़र्रुखाबाद के भाई गुरुकुल के इस परिवर्तन से सन्तुष्ट नहीं थे। इसलिये उन्होंने वृन्दावन में प्रचलित कार्यों में जरा भी सहयोग नहीं दिया अपितु कुछ न कुछ विघ्न पैदा करते रहे। इधर वृन्दावन के पंडों और मथुरा के चौबों ने विरोध करना शुरू किया। उनकी रोजाना सभायें होने लगी जिनमें बराबर कहा जाता रहा कि गुरुकुल की जड़ यहाँ नहीं जमने देनी चाहिए। उन्होंने तुच्छता पूर्ण विरोध भी किये कि आर्यों को कोई दूकानदार सौदा न दे, अपनी भूमि में रास्ता न चलने दो, न टट्टी जाने दो, इत्यादि प्रकार से मूर्खता का एक तूफ़ान खड़ा कर दिया गया। घर और बाहर सब ओर के विरोध सहने पर भी काम बराबर जारी रहा उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई। पं० तुलसीराम जी स्वामी बराबर सहयोग दे रहे थे। पं० क्षेत्रपाल शर्मा की बहुमूल्य सहायता इन सब कामों में प्राप्त थी। गुरुकुल के ब्रह्मचारी आदि नियत समय पर आगये। मथुरा और वृन्दावन में उनका अच्छा स्वागत हुआ और गुरुकुल का काम वृन्दावन में जारी होगया। इन्हीं हालात में गुरुकुल का उत्सव भी होगया। बहु संख्या में बाहर से नर नारी उत्सव में पहुँच गये थे। नये स्थान, नई इमारतें तथा अन्य सभी किये गये, कार्यों को देखकर सभी सन्तुष्ट हुये और

धन भी अपील में, किसी प्रकार का पहले से प्रबंध न होने पर, अच्छा आगया। परन्तु गुरुकुल के अध्यापक गण तथा अन्य कर्मचारियों का विरोध भीतर से और वृन्दावन वालों का बाहर से बराबर जारी रहा। इसी संघर्षण में फिर भी गुरुकुलोत्सव आशातीत सफलता से समाप्त होगया। उत्सव कार्यों में प्रेम महाविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों ने अच्छी सहायता दी।

एक दुर्घटना

उत्सव में आये हुए सज्जनों में, बदायूं के एक पं० पोशाकी लाल थे। उन्हें साधुओं और मन्दिर वालों ने, केवल इसलिये बहुत मारा पीटा कि वे जमना के किनारे उनके मन्दिरों की ओर होकर जाने वाले रास्ते से वृन्दावन क्यों जाने लगे थे। उनके ज़ख्म भी होगये थे, कई चोटें गहरी लगी थीं। इस पर उत्सव केम्प में एक विचार पैदा होगया कि मारने वालों पर अभियोग चलाना चाहिये। पुलिस चालान करने के लिए तैयार बैठी थी। उनका कहना था कि हमारे यहां रिपोर्ट लिखा दो देखो फिर हम इन साधु और पंडों को कैसा ठीक करते हैं। जिलाधीश भी ऐसा ही चाहते थे। अनेक यात्रियों की भी ऐसा ही सम्मति थी परंतु मैं मुक़द्दमा चलाना अच्छा नहीं समझता था इसलिये नहीं चलाया गया।

जिलाधीश से भेंट होने पर, उनके पूछने पर मैंने उत्तर दिया कि "आर्य समाज के प्रवर्तक ने अपने विष देने वाले को यह कह कर छुड़ा दिया था कि "मैं दुनिया को क़ैद कराने नहीं अपितु क़ैद से छुड़ाने आया हूँ।" इसलिये हम भी इसी शिक्षा

का अनुगमन करना अपने लिये पुण्य कार्य समझते हैं।" इससे वे (जिलाधीश) बहुत संतुष्ट हुये। इस एक दुर्घटना को छोड़कर उत्सव और सब प्रकार से सफलता के साथ समाप्त होगया। इस प्रकार उपसभा का कार्य प्रायः पूरा सा होगया।

एक मास की और छुट्टी

मेरी छुट्टी दिसम्बर के अन्त में समाप्त होगई परन्तु कुछ इमारत भी बाक़ी रह गई थी और हिसाब-किताब तो करना बहुत बाकी था इसलिये इनके पूरा करने के लिये एकमास की छुट्टी और ली गई और इन्हीं के पूरा करने में मैं लग गया। श्री पं० भगवानदीन जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता थे, वे राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित थे। उन्होंने ८ जनवरी १९२२ ई० को मुझ से कहा कि वे अपने रोग की औषधि लेने जाते हैं इसलिए दोचार दिन के लिये गुरुकुल का चार्ज मुझे लेलेना चाहिये। मुझे वहां अभी लगभग एक मास रहना ही था, इसलिये उनकी बात स्वीकार करके चार्ज लेलिया। इस प्रकार उपस्थित चिताओं में कुछ की और वृद्धि होगई। मुझे जो काम करना था वह तो सब पूरा होगया, परन्तु पं० भगवानदीन जी रोग बढ़ जाने के कारण नहीं लौट सके और मेरी छुट्टी समाप्त होगई। मैंने सभा के अधिकारियों को सूचना दी कि वे मुझे गुरुकुल के कार्य भार से मुक्त करें परन्तु आर्य प्रतिनिधि सभाके अधिकारियों तथा गुरुकुल के अन्य हितचिन्तकों ने मुझे मजबूर किया कि मैं छुट्टी और बढ़ाऊँ इसलिये छुट्टी बढ़ानी पड़ी और इस प्रकार बिना किसी पूर्व के निश्चय और इरादे के, इच्छा न रखने पर भी गुरुकुल का कार्य भार मुझे अपने ऊपर लेना पड़ा।

सोलहवां अध्याय

गुरुकुल का चार्ज, उसकी अवस्था और आन्तरिक तथा बाह्य कलह

गुरुकुल का कार्य भार लेने से, एक प्रकार का कलह मोल लेना पड़ा। गुरुकुल की आन्तरिक अवस्था शोचनीय, पाठविधि का अभाव, नियम और मर्यादा की कमी, ब्रह्मचारी अध्यापक और संरक्षकों का पृथक् पृथक्, एक दूसरे के विरुद्ध टोलियों में विभाजन, कुछेक अध्यापक और कर्मचारियों का, गुरुकुल के वृन्दावन आने से असंतोष, इस प्रकार की अनेक और भी बातें थीं जिन का प्रति दिन मुकाबिला करना पड़ता था। पाठविधि बनाई गई, अन्तरंग सभा ने उसे स्वीकार कर लिया। श्री० पं० तुलसीराम जी स्वामी ने इस काम में बड़ी सहायता दी अन्तरंग सभा ने गुरुकुल की आन्तरिक अवस्था जान लेने पर यह आवश्यक समझा कि मुख्याधिष्ठाता को प्रत्येक विघ्न की निवृत्ति के लिये पूरे अधिकार दिये जावें। इसलिये अन्तरंग सभा ने कर्मचारियों और अध्यापकों की नियुक्ति और पृथकता तथा ब्रह्मचारियों के पृथक् करने आदि के सभी अधिकार मुझे दे दिये। इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि गुरुकुल का काम उत्तम रीति से चलाने के लिये कुछ अच्छे कर्मचारी और अध्यापक मुझे मिल गये। दारोगा लक्ष्मीनारायण सहायक

मुख्याधिष्ठाता, डाक्टर वसंतलाल और पं० श्यामलाल संस्कृताध्यापक के नाम उनमें मुख्य हैं।

ब्रह्मचारियों के भगाने का षड्यंत्र

जब मैं कार्यवशात् फ़ैज़ाबाद गया था तो पीछे मैदान ख़ाली देखकर वृन्दावन में गुरुकुल के आने से कुछेक असंतुष्ट लोगों ने एक षड्यंत्र रचा और वह यह था कि श्री पं० भगवानदीन जी की ओर से एक कल्पित पत्र, जिसकी उनको ख़बर तक नहीं थी, उच्च श्रेणी के ब्रह्मचारियों को एकत्र करके सुनाया गया कि वे सब फ़र्रुख़ाबाद चले आवें उनकी पढ़ाई आदि का वहां समुचित प्रबन्ध कर दिया गया है। ब्रह्मचारी आख़िर लड़के ही थे, इस चक्कमें में आगये और भागने के लिये तय्यार होगये। दारोग़ा लक्ष्मी नारायण ने बड़े यत्न से, इन बालकों को, अपना जीवन नष्ट कर देने से बचाया और उन्हें भागने नहीं दिया और मुझे तार दिया। मैं बिना ढील किये लौट आया। मेरे गुरुकुल में आते ही सब मामला शान्त हो गया और ब्रह्मचारी अपनी की हुई भूल से लज्जित हुए। जो कर्मचारी इस षड्यन्त्र के बानी थे उन्हें कुछ घंटों का नोटिस देकर गुरुकुल से पृथक् कर दिया गया। मुख्याध्यापक भी जो B. A. पास न होने पर अपने को बी. ए. प्रकट कर रहे थे और जिन्होंने पं० भगवानदीन जी को भी धोखा दे रक्खा था, पृथक् किये गये। उनकी जगह एक उपयोगी सज्जन मुख्याध्यापक रक्खे गये इस प्रकार आवश्यक फेरफार होने और सख़्ती के साथ उद्दंडताओं

का मुक़ाबिला करने से, गुरुकुल का वातावरण शान्त होगया और नियम और मर्यादा के साथ सब काम होने लगे।

वृन्दावन के पंडों की उद्दंडता

वृन्दावन के पंडों महन्तों और साधुओं की उद्दन्डतायें भी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थीं। रोज रोज वृन्दावन में सभायें करके भोली जनता को उभारा करते थे कि गुरुकुल को लूट लो, इन्हें मारो, अपनी भूमियों में रास्ता न चलने दो, अपने खेतों और जंगलों में टट्टी न जाने दो अर्थात् जैसा कहा जा चुका है गुरुकुल वासियों ने इन कठोरताओं का बड़ी सहनशीलता के साथ मुक़ाबिला किया। गुरुकुल के लिये सब से बड़ी उपयोगी बात यह थी कि मथुरा के कलक्टर मिस्टर डैम्पियर एक बड़े ही सहृदय सज्जन थे और हमारे आदमियों को सब प्रकार का कष्ट सहन करते देखकर गुरुकुल के बड़े भक्त होगये थे और मुझ से विशेष रीति से प्रेम करने लगे थे। वे प्रायः हर दूसरे महीने गुरुकुल में आजाया करते थे। यहाँ एक घटना का उल्लेख किया जाता है:—

एक घटना

एक दिन सैकड़ों आदमियों के हस्ताक्षर से, उनके कोर्ट में एक अरजी दीगई जिसमें मेरे विरुद्ध शिकायत यह अंकित थी कि मैंने वृन्दावन में, एक मन्दिर धोखा देकर खरीद लिया है और दस्तावेज की रजिस्ट्री भी होगई है और यह कि अब मैं उसकी मूर्तियों को तोड़ने वाला हूँ इससे बलवा होजाने

का भय है आवश्यक प्रबन्ध किया जावे। इस अरजी पर, जिलाधीश हैम्पियर महोदय ने, एक नोट लिखकर उसे मेरे पास भेज दिया। नोट के द्वारा मुझ से पूछा यह था कि क्या इसकी कुछ असलियत है? मैंने उत्तर दिया कि कुछ भी असलियत नहीं है, इस पर उन्होंने अरजी दाखिलदफ़तर करदी।

इसके बाद जब जिलाधीश से भेंट हुई तो उन्होंने हँसकर पूछा कि क्या इस मामले में कुछ भी असलियत नहीं थी? मैंने उत्तर दिया कि रजिस्ट्री का दफ़्तर यहाँ (कलेक्टर के बंगले) से बहुत क़रीब है आप देख लेवें कि कोई रजिस्ट्री किसी मन्दिर की मेरे नाम हुई है या नहीं। इस पर उन्होंने कहा कि मैंने अरजी सुनते ही समझ लिया था कि यह सब झूंठ है। इस प्रकार की अनेक घटनायें घटित हुईं परन्तु उनका जब कुछ भी फल विरोधियों के अनुकूल न निकला तो उन्होंने विरोध की निस्सारता को समझ लिया और इसी कारण उसकी मात्रा कम होने लगी।

गुरुकुल के विरोध में ऋषिकुल और आचार्यकुल

गुरुकुल के प्रभाव को कम करने और उसका विरोध जारी रखने के लिए वृन्दावन में ऋषिकुल और आचार्यकुल की स्थापना हुई। ऋषिकुल तो गुरुकुल से दूर रंग जी के मन्दिर से सबंधित एक वाटिका में खोला गया था, आचार्यकुल के संस्थापकों ने उसे यद्यपि खोला तो था वृन्दावन ही के एक मन्दिर में परन्तु गुरुकुल के साथ झगड़ा बढ़ाने के लिए, वे उसे ठीक

गुरुकुल के सामने की एक बावली वाली वाटिका में ले आये और गुरुकुल के काम में बाधा डालने के लिए, दिन रात वाटिका में शोरोगुल रखने लगे। नीचे के चित्र से सब बातें सुगमता से समझ में आजावेंगी।

<table>
<tr><td>गुरुकुल की आमों वाली वाटिका</td><td rowspan="3">गुरुकुल मार्ग</td><td>विद्यालय + महाविद्यालय</td><td>गुरुकुल क्रीड़ाक्षेत्र</td><td rowspan="3">मार्ग</td></tr>
<tr><td>आश्रम वाटिका</td><td colspan="2">बावली वाली वाटिका जहां आचार्य कुल लाया गया था।</td></tr>
<tr><td>गुरुकुल भूमि</td><td colspan="2">गुरुकुल भूमि</td></tr>
</table>

प्रत्येक समय की अशान्ति को दूर करने के लिए, हमारे लिए आवश्यक होगया कि इसकी शिकायत जिलाधीश से की जावे तदनुसार मैंने उनसे मिलकर सब बातें कह दीं। उन्होंने मौक़ा देखने का समय नियत कर दिया। नियत समय पर उपर्युक्त चित्रानुसार, समस्त भूमि तथा जहां आचार्यकुल रक्खा गया था, वह स्थान भी उन्हें भली भाँति दिखला दिया गया। देखने के बाद उन्होंने बावली वाले स्थान के लिये प्रकट किया

कि यह स्थान तो गुरुकुल ही के अधिकार में रहना चाहिये। जब वे चलने लगे तो उन्होंने मुझसे पूछा कि इस मामले में मैं क्या कर सकता हूं। मैंने कहा कि शीघ्र ही इस झगड़े के खत्म होने का उपाय यह है कि आप "श्री राधाचरण गोस्वामी आनरेरी मजिस्ट्रेट को जो आचार्यकुल के संस्थापकों में से एक हैं, बुला कर समझा देवें और कह देवें कि झगड़े की शुरूआत उन्हीं की ओर से हो रही है" तो आशा है कि यह झगड़ा शांत हो जावेगा। प्रसन्नता की बात है कि जिलाधीश ने ऐसा ही किया और फल यह हुआ कि दूसरे दिन ही आचार्यकुल वहां से उठ गया, और यत्न करने से यह बावली वाली वाटिका भी कुछ मास के भीतर ही गुरुकुल के अधिकार में आ गई और हमेशा के लिये इस प्रकार का झगड़ा शान्त होगया।

गुरुकुल के लिये मार्ग किस प्रकार बना

मथुरा अथवा वृन्दावन रेलवे स्टेशन से किस रास्ते होकर गुरुकुल पहुंचें यह प्रश्न हल होना बाकी था। एक फेर फार के रास्ते से राजपुर ग्राम होकर गुरुकुल जाया करते थे। परन्तु राजपुर के एक जमींदार ने ठीक रास्ते में एक मकान बनवा लिया जिससे वह रास्ता भी बंद होगया। वृन्दावन के सब डिवीज़नल मजिस्ट्रेट से भी बात चीत की गई उन्होंने सहायता करने का वचन तो दिया परन्तु संकेत किया कि कोई विशेष अवसर आने ही पर रास्ता बनवाया जासकता है। विशेष अवसर कैसे आवे? यह बात बार बार मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगाने लगी। हमको विद्यालय के १० कमरे बनवाने थे इसलिए सोचा

यह गया कि किसी उच्च राज कर्मचारी से इसकी बुनियाद रख वाई जाये। यह समय वह था जब सरकार की आर्य समाज पर बड़ी क्रूर दृष्टि रहा करती थी। ला० लाजपत राय डिपोर्ट होचुके थे, पटियाला में आर्यों के विरुद्ध एक बड़ा मुक़द्दमा राजविद्रोह का खड़ा कराया गया था वह भी फ़ेल होचुका था। इन सब बातों से जब कुछ न हुआ तो फिर आर्य समाज से मेल कर लिया जावे, सरकार की यह नीति काम करने लगी। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर उस समय सर जेम्स (अब लार्ड) मेस्टन थे। उन्होंने इस नीति को क्रियात्मक रूप देना आरम्भ किया था और इसीलिए वे गुरुकुल कांगड़ी हो आये थे। हमने इस अवसर से लाभ उठाने का निश्चय किया और गवर्नर महोदय से प्रार्थना की कि वे विद्यालय को आधार शिला अपने हाथों से रखने की कृपा करें। श्री पं० तुलसीराम स्वामी और बाबू मदन मोहन सेठ इसी उद्देश्य से उनसे मिले भी। उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार की और गुरुकुल आने का समय नियत करके उसकी सूचना ज़िलाधीश को भी दे दी। उस समय डेम्पियर साहब छुट्टी पर चले गये थे और एक दूसरे सज्जन ज़िलाधीश थे। उपर्युक्त सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट को, जो एक नये इंगलैंड से आये हुये सज्जन थे, याद दिलाई गई कि अब वह विशेष अवसर रास्ता बनवा देने का है। उन्होंने ज़िलाधीश से सलाह करके तहसीलदार और ओवरसियर के द्वारा रास्ता बनवाने का निश्चय कर दिया। इस प्रकार बिना किसी झगड़े क़िस्से के रास्ता बन गया, खर्चा अवश्य सब गुरुकुल को देना पड़ा।

सत्तरहवां अध्याय

गुरुकुल में शान्ति और रचनात्मक कार्य

इस प्रकार सभी प्रकार के बाहर और भीतर के झगड़ों के समाप्त होजाने पर गुरुकुल में शान्ति की स्थापना हुई और समय आया कि सभी रचनात्मक कार्य में लगजावें। पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था थी। ब्रह्मचारियों के साधारण ज्ञान वृद्धि के लिये विद्या परिषद् की सुव्यवस्था की गई। परीक्षा लेने में बाहर के विद्वानों का सहयोग लेना आवश्यक समझकर उन्हें परीक्षक नियत किया जाने लगा। आयुर्वेद की श्रेणियां खोली गईं और एक योग्य डाक्टर को नियत करके शल्य चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया। बाहर के रोगियों को औषधि मुफ्त मिलने लगी। इन सब सुधारों का फल यह हुआ कि ब्रह्मचारियों में विद्या और आचार के लिये प्रेम और आदर का भाव उत्पन्न होगया। निदान शान्ति के साथ गुरुकुल उन्नति के पथ का पथिक बन गया।

महात्मा गांधी का गुरुकुल में आगमन

यह वह समय था जब महात्मागांधी ने देश भर का भ्रमण प्रारंभ किया था। उनके साथ प्रोफेसर कोतवाल थे जो प्रेम महाविद्यालय में कुछ समय पूर्व प्रोफेसर रह चुके थे। वे वृन्दावन आये प्रेममहाविद्यालय को देखा, उसके बाद गुरुकुल

आकर भोजन करने के बाद अध्यापक और ब्रह्मचारियों से बातचीत करते रहे। उस समय उनका भोज्य केवल फल थे। उनके सम्मानार्थ गुरुकुलीय यज्ञशाला में एक सभा की गई। मुख्याधिष्ठाता तथा कतिपय अन्य सज्जनों ने जिन में एक दो ब्रह्मचारी भी थे भाषण देते हुये उनका अभिनन्दन किया। उन्होंने अंत में भाषण देते हुए आशा प्रकट की कि उनके काम में सहयोग देने के लिये गुरुकुल से अच्छे व्यक्ति मिलेंगे।

विद्यालय का बन जाना और मेस्टन महोदय की मंगल कामना

विद्यालय के १० कमरे, जिनकी बुनियाद गवनर मैस्टन साहब ने रक्खी थी तैयार हो गये। मैस्टन साहब को इसकी सूचना दीगई। और कुछेक फोटो भी बुनियाद रखने के समय के उनके पास भेजे गये उनके उत्तर में उन्होंने एक पत्र भेजा जो इस प्रकार है:—

Lieutenant Governors
Camp. U. P.
8th March, 1915.

DEAR SIR,

I am very much obliged for your letter of the 4th Instant, and for the very interesting photographs which you were so kind as to send me. It will always be a valuable souvenir of my interesting visit to Gurukul in August 1913, and I am very much obliged to you for it.

(2) I am very pleased indeed to hear about the progress that has taken place, and the rapidity with which your school has been built. I ever find an apportunity of revisiting Muttra, I should very much like to come and see the Gurukul again. Meanwhile all best wishes for its continued prosperity.

I remain,
yours very truly
JAMES MESTON.

इस सबका फल यह हुआ कि गुरुकुल की लोकप्रियता बढ़ती गई। दर्शक भी बहुसंख्या में आने लगे और सहायता भी अच्छी प्राप्त होने लगी। गुरुकुल का मुख्य द्वार और अन्य इमारत बनीं तथा धर्मशाला के कमरे भी बनने लगे। मुझे भी कुछ समय स्वाध्याय के लिये मिलने लगा और भी सब काम नियमपूर्वक होने लगे।

फिर एक विघ्न, ब्राह्मण और बाबूपार्टी

इस प्रकार कुछ शान्ति मिलने पाई थी कि फिर एक विघ्न ब्राह्मण और बाबूपार्टी के रूप में खड़ा होगया। इस का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ कि गुरुकुलोत्सव के साथ एक कान्फ्रेन्स रक्खी गई थी। कान्फ्रेन्स के प्रारंभ में बाहर से आये हुये आर्यों ने भजनीकों और स्वतंत्र उपदेशकों की शिकायतें अपनी अपनी वक्तृताओं में कीं जो प्रायः ठीक ही थीं। इसी बीच में प्रो० रामदेव जी ने भी कुछ कहा और उसमें कुछ इस प्रकार की

बात भी कहदी कि प्रबन्ध के विषय में ब्राह्मणों को क्षत्रियों के आधीन रहना पड़ेगा। इस पर पं० अखिलानन्द तथा कुछेक अन्यों ने शोर मचाया और अनुकूल तथा प्रतिकूल व्यक्तियों के बाद विवाद से समस्त कानफ्रेन्स में एक प्रकार का हुल्लड़ सा मचगया और कान्फ्रेन्स अंत में बंद कर देनी पड़ी। झगड़े का प्रारंभ तो यहीं से हुआ परंतु उसको उत्तेजना आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के वार्षिक चुनाव से मिली। प्रधान के चुनाव होने पर पं० तुलसीराम स्वामी प्रधान नहीं चुने जा सके उनके स्थान पर पं० घासीराम जी प्रधान निर्वाचित हुए। इससे, पं० तुलसीराम जी, इतने समझदार और योग्य व्यक्ति होते हुये भी, रूठ गये और उन्होंने नियत समय पर गुरुकुलोत्सव में व्याख्यान भी नहीं दिया। इस घटना से पार्टीबंदी बढ़ गई, समाचार पत्रों के लेख तथा विद्वानों के व्याख्यान सभी इस रंग से रंगे हुये होने लगे। पं० तुलसीराम जी क्रियात्मक रूप से गुरुकुल के काम से पृथक् होगये और ज्वालापुर महाविद्यालय में जाकर उसके एक अधिकारी बनगये।

गुरुकुल के लिये धन संग्रह का काम

पं० तुलसीराम जी गुरुकुल के लिये प्रायः धन संग्रह का काम किया करते थे। उनके पृथक होने से यह काम भी मेरे जिम्मे आगया और इसके लिये वर्ष में कम से कम ३ मास भिन्न भिन्न समयों पर भ्रमण करना पड़ता था। कुछ काम अवश्य बढ़ गया परंतु इससे गुरुकुल की कुछ हानि नहीं हुई।

गुरुकुल का ब्रह्मचारी आश्रम, अनुकरणीय ठहराया गया

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर मेस्टन महोदय ने गुरुकुल के आश्रम को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की कि बहुत किफ़ायत से ब्रह्मचारियों के रहने के लिये बनाये गये हैं उन्होंने गुरुकुल से जाने के बाद सरकारी गज़ट में एक रिज़ोल्यूशन प्रकाशित कराया और उसमें शिक्षा विभाग को आदेश दिया कि स्कूल और कौलिजों में विद्यार्थियों के रहने के बोर्डिङ्ग हाउस इसी तरीक़े के यथा संभव बनाये जावें जैसे गुरुकुल वृन्दावन में बने हुए हैं। इस रिज़ोल्यूशन के प्रकाशित होने के बाद अनेक सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधि गुरुकुल देखने आते रहे।

अठारहवां अध्याय

गुरुकुल सम्बन्धी फुटकर कार्य और नौकरी से त्याग पत्र

१९१२ ई० के अंत तक मुझे छुट्टी मिलती रही परन्तु अब आगे छुट्टी नहीं मिलेगी ऐसा मुरादाबाद के जिलाधीश ने निश्चय कर दिया। सभा के अधिकारियों ने कहा कि इस समय गुरुकुल का काम छोड़ने से अब तक का किया कराया हुआ सब नष्ट हो जावेगा। जब मैं मुरादाबाद से प्रारंभ में वृन्दावन आया था तो मेरे पास २०००) नक़द थे उन्हें मैंने मथुरा के एक कोऔपरेटिव बैंक में जमा कर दिया था जहां से लगभग १३) मासिक के सूद मिल जाता था। मैंने निश्चय किया हुआ था कि इसी १३) मासिक में, मैं अपनी गुज़र करूंगा। इसमें से १०) मासिक भोजन मध्ये गुरुकुल भंडार में दे दिये जाया करते थे वाकी ३) में वस्त्र, दूध और पुस्तक आदि का सभी व्यय पूरा करने का यत्न किया जाता था और पूरा हो ही जाता था। मैंने ख्याल किया कि शरीर की अयोग्यता प्रकट करके (Invalid) पेन्शन लेना रिश्वत लेने ही के सदृश है जैसा ऊपर कहा जा चुका है। इसलिए यदि मैं नौकरी छोड़ दूं तो फिर इसी १३) मासिक में बाक़ी आयु भर निर्वाह करना पड़ेगा। इस विचार में ३ दिन बीत गये अंत में निश्चय किया गया कि नौकरी छोड़ देनी चाहिये। यद्यपि पेन्शन पाने में केवल

१½ वर्ष की कमी थी; परन्तु गुरुकुल कार्य को इस १½ वर्ष की पूर्त्ति के लिये छोड़ देना यह अपने सहकारियों में से किसी को इष्ट नहीं था। इसलिए १९१२ के अंत ही में त्याग पत्र देकर सामाजिक कार्य करने के लिये पूरा अवकाश निकाल लिया गया।

कच्ची सड़क बनने की बात कही जा चुकी है। उसे मैनपुरी के प्रसिद्ध रईस कुंवर लालसिंह मानसिंह ने पूरा खर्चा देकर पक्का गुरुकुल मार्ग बनवा दिया।

(३) व्यायाम सीखने के लिये एक ब्रह्मचारी श्री मानक रावजी की व्यायामशाला बड़ौदा में भेज दिया गया।

(४) प्रो० राममूर्ति ने मोटर रोकने आदि के कर्तब ब्रह्मचारियों को सिखलाये।

(५) एक दूसरे सज्जन ने धनुर्विद्या के अनेक कर्तब विद्यार्थियों को बतलाये।

(६) अनेक धनी-मानी पुरुषों ने छात्र वृत्तियों के लिये धन दिया।

(७) गुरुकुल की स्थिर निधि खोली गई और उसमें लगभग ५० हजार रुपये जमा होगये।

(८) बहु संख्या में धर्मशाला के कमरे बने।

(९) एक दबा हुआ कुआ भूमि खोद कर निकाला गया उससे गुरुकुल के खेतों और वाटिका में आबपाशी के काम में बड़ी सहायता मिली।

(१०) गुरुकुल मार्ग के दोनों ओर तथा अन्य उपयोगी स्थानों पर फल तथा सायेदार पेड़ लगवाये गये।

(११) रोगी ब्रह्मचारियों के लिये ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि मेरे निवास के बंगले की एक विंग (पक्ष) में ये रक्खे जाते थे और कोई ब्रह्मचारी दो-तीन दिन से अधिक रोगी नहीं रहने पाता था।

इस प्रकार के अनेक कार्यों के होने से गुरुकुल का प्रबन्ध भी सफल दिखाई देने लगा और उसकी ख्याति भी देश भर में होगई।

गुरुकुल से स्नातकों का निकलना

गुरुकुल के इतिहास में अब चमकते हुए समय आने के आसार दिखाई देने लगे। अर्थात् वह समय आगया कि जब गुरुकुल फूलता और फलता दिखाई देने लगा। सबसे पहला बैच दो स्नातकों का था जो १९१८ के गुरुकुलोत्सव में निकला। ये स्नातक ब्रह्मचारी धर्मेन्द्रनाथ और द्विजेन्द्रनाथ थे। गुरुकुल से निकलने के बाद जिनकी योग्यता का सिक्का, शिक्षित समाज में बैठ गया और दोनों स्नातक गुरुकुल के यश और कीर्ति बढ़ाने का कारण हुए। दोनों संस्कृत के धुरंधर विद्वान् और व्याख्याता हैं।

गुरुकुल से विदाई लेने का समय आगया।

लगभग दश वर्ष गुरुकुल की सेवा की गई और गुरुकुल अच्छी हालत में आकर फूलने और फलने लगा। उसकी

स्थिर निधि में ५० हजार रुपये थे जैसा कि कहा जा चुका है। १२ हजार रुपये चलते हिसाब में थे। कुछेक गाँव और मकान तथा दूकान भी गुरुकुल को दान में मिलकर उसकी स्थिर आय वृद्धि का कारण हुईं। इस प्रकार गुरुकुल की अच्छी अवस्था होजाने पर, मुझे गुरुकुल छोड़ने में किसी प्रकार की कठिनता अनुभव करने का अवसर नहीं था।

निश्चित कार्य क्रम के अनुसार मुझे ४३वें वर्ष से आगे दस वर्ष वानप्रस्थाश्रम में व्यतीत करने चाहिये थे और वह लगभग पूरे होगये थे; परन्तु इन वर्षों में मुझे एकान्त वास का अवसर नहीं मिला था इसलिये निश्चय किया गया कि गुरुकुल छोड़कर दो वर्ष एकान्त वास करके तब चतुर्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये।

इस कार्यक्रम की पूर्ति हो इसलिये श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त से प्रार्थना की गई कि वह १९२० ई० के बसंत को मुझे गुरुकुल के काम से निवृत्त होकर गुरुकुल से चले जाने की अनुमति दे। गुरुकुल का सभी प्रबन्ध अच्छी हालत में था। किसी भी नये प्रबन्धकर्ता को, काम करने में कोई कठिनता आने का अवसर नहीं था। प्रशंसित सभा ने अपनी कई बैठकों में इस पर विचार किया और अंत में मेरे बड़े आग्रह से उन्होंने मुझे अनुमति देदी कि मैं नियत समय पर गुरुकुल से चला जाऊँ। प्रोफेसर ज्वालाप्रसाद एम. ए. मेरे स्थान पर नियत हुए। १९१९ के गुरुकुलोत्सव में दो स्नातक और निकले और अपील में भी अच्छा खासा धन आगया।

मैंने नवम्बर १६१६ ई० ही में प्रो० ज्वालाप्रसाद को गुरुकुल का चार्ज देदिया जिससे वे दो ढाई मास मेरे सामने काम करलें और अनुभव भी प्राप्त करलें। इस प्रकार चार्ज देकर मैं शान्ति के साथ गुरुकुलीय जीवन के अन्तिम दिन बिताने लगा। प्रशंसित सभा ने १६१६ को गुरुकुलोत्सव में मुझे विदाई देने के लिये एक विशेष बैठक की। चूंकि यह समय केवल गुरुकुल के कार्य ही से नहीं अपितु सभा के काम छोड़ने का भी था इसलिये इस विशेष अधिवेशन में प्रशंसित सभा ने निम्न अभिनन्दन पत्र मेरी भेंट किया:—

सेवा में:—

श्रीमान् महात्मा नारायणप्रसाद जी,
मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य,
गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा)

अभिनन्दनपत्र।

माननीय अधिष्ठाता जी,

आज उस अवसर पर जब कि आप अपने प्यारे गुरुकुल को छोड़ रहे हैं, हम आप की निरन्तर अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त वैदिक धर्म की सेवा को स्मरण कर, अपनी हार्दिक कृतज्ञता के प्रकाश के लिये युक्तप्रान्त की आर्यजनता की ओर से यह अभिनन्दनपत्र श्रीमान् के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

वैदिक धर्म की जो सेवा इस प्रान्त में आपने की है, उसका पूरा वर्णन करना यहाँ कठिन है, वस्तुतः श्रीमान् इन

व्यक्तियों में से हैं जिनके हाथों में हमारी आर्य प्रतिनिधि सभा का उसकी बाल्यावस्था से ही पालन-पोषण हुआ है। अब से अठ्ठाइस वर्ष पूर्व १८९१ ई० में आपका सभा से सम्बन्ध हुआ था। १८९७ ई० में सभा की रजिस्ट्री कराने में आपका बड़ा हाथ था। सात वर्ष पर्यन्त सभा के मन्त्री तथा कई वर्ष तक उपप्रधान पद पर रह कर आप ने सभा के जीवन में बड़ा भाग लिया है। अन्तरंङ्ग सभा के सभासद् तो आप उसके बनने के दिन से आज पर्यन्त रहे हैं। १८९६ में सब से पहिले वेद-प्रचार-समिति भी आप ही के मन्त्रित्व में बनी थी और इस के पश्चात् कई वर्ष उपदेश-विभाग के अधिष्ठाता रह कर आप ने इस प्रान्त में वेद-प्रचार के कार्य का संचालन किया। निदान सभा का कोई ही ऐसा कार्य-विभाग होगा जो आप के परिश्रम-विन्दुओं से न सींचा गया हो।

परन्तु सब से बड़ा आपका काम गुरुकुल संस्था के सम्बन्ध में है। सन् १८९९ वाले सभा के बृहदधिवेशन में सबसे पहिले इस प्रान्त में गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव आप ही के द्वारा हुआ था। और १९०० में गुरुकुल के पहिले डेपूटेशन में आपका ही सब से अधिक भाग था। १९११ में गुरुकुल को फर्रुखाबाद से वृन्दावन उठा लाने का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब इस कार्य को स्वर्गीय पं० तुलसीराम जी के साथ २ आपने पूरा किया था। अगले ही वर्ष (१९१२) हमारे दुर्भाग्य से श्री पं० भगवानदीन जी का स्वर्गवास होने से गुरुकुलके अधिष्ठातृत्व का कार्य भार

भी आप पर पड़ा, उस समय आप ने सरकारी नौकरी छोड़कर जो आत्मत्याग का आदर्श हमारे सामने रक्खा वह विस्मृत नहीं हो सकता। तब से लेकर आप ही ने इस संस्था का पोषण किया है, और उसे एक अंकुर की अवस्था से पुष्पित-पल्लवित वृक्ष में परिणत कर देना आप ही का काम है।

वैदिक धर्म और उसके आचार्य ऋषि दयानन्द में अनन्य-निष्ठा और सच्ची लगन, सदाचार और संयमयुक्त आर्य जीवन, नैत्यिककर्मपरायणता, ईश्वरभक्ति और आस्तिकता, तथा दृढ़ और अटूट अध्यवसाय, ये आपके ऐसे गुण हैं जिन्होंने न केवल गुरुकुल के ब्रह्मचारियों पर ही गहरा प्रभाव डाला, किन्तु कोई भी मनुष्य जो आप के सामीप्य में आयेगा उनसे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता।

आज भी जब कि आप गुरुकुल छोड़ कर एक दूसरे जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं हमारा आशासमुद्र उमड़ रहा है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि प्रचार के कार्य में नवजीवन-संचार करने के लिये यह आप के अन्दर दैवी प्रेरणा हुई है। परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना है कि वह आपको स्वास्थ्य और दीर्घ आयुष्य दे, जो वैदिक धर्म और आर्य जाति के उपकार और गौरव का कारण है।

हम हैं—

३ पौष शुक्ला ७६ वै०
२५ दिस० १९१९।
गुरुकुल वृन्दावन।

आपके प्रति कृतज्ञतापूर्ण
सदस्यगण
श्री० आ० प्र० सभा संयुक्तप्रान्त

और भी अनेक सज्जनों के भाषण हुए। समुचित उत्तर देने के बाद वह सभा समाप्त हुई।

गुरुकुल में विदाई की सभा

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और कर्मचारियों ने पृथक् पृथक् अभिनन्दनपत्र भेंट किये। ब्रह्मचारियों के संरक्षकों ने भी अभिनन्दनपत्र दिये और अनेक कवितायें तथा लेख पढ़े गये जिनमें सभी ने अपने अपने प्रेम का प्रदर्शन किया था। यह सभा भी मेरे उत्तर देने के बाद समाप्त हुई।

गुरुकुल से प्रस्थान

२६ जनवरी १६२० ई० की सायंकाल मैंने गुरुकुल से प्रस्थान किया। १० वर्ष जिस कुल में वास किया हो और कुल वासियों के दुःख सुख में भाग लिया हो, उस कुलसे सदा के लिये प्रस्थान करते समय, जो हालत किसी की हो सकती है यही मेरी थी। यदि कर्तव्य अपने कड़े हाथों से आगे न खींचता तो कदाचित् मेरे लिये गुरुकुल से प्रस्थान करना कठिन होता, तो भी व्यथित हृदय कुछेक आर्यभाइयों के साथ, कुल वासियों को छोड़ कर, कुल से रुख़सत हुआ। रात्रि में कभी छोटे ब्रह्मचारियों का ध्यान आया कभी बड़े ब्रह्मचारियों का, कभी अन्य कुल वासियों का। इसी माया-मोह में रात्रि व्यतीत हुई और मैं प्रातःकाल बरेली पहुँचकर उसी दिन फ़ैज़ाबाद के लिये रवाना होगया।

उन्नीसवां अध्याय

एकान्त वास के लिये स्थान की तलाश

फ़ैजाबाद के निवास काल में एक भूमि देखी जो अयोध्या के सामने सरजू नदी के उसपार, कटरा स्टेशन के पास थी। भूमि अच्छी रमणीक थी, उसके साथ एक बाग़ और कुछ टूटे-फूटे मकान भी थे।

हरिद्वार और ऋषिकेश भी इसी उद्देश्य से गया। हरद्वार तो लगभग एक बड़ा शहर ही होगया है। ऋषिकेश के निकट गंगा के उसपार स्वर्गाश्रम आदि स्थान देखे। स्वर्गाश्रम निकम्मा और निवास के लिये सर्वथा अनुपयोगी प्रतीत हुआ। गर्मी में अत्यन्त गर्मी, शीत में अत्यन्त शीत, और वर्षा में साँप और बिच्छू की बहुतायत के सिवा म्लेरिया का घर बन जाता है। स्वर्गाश्रम में बनी हुई कुटियाँ अधिकतर ख़ाली ही रहा करती हैं परन्तु फिर भी न जाने क्यों वहां और कुटियों के बनवाने के लिये अपील की जाया करती है। लक्ष्मण झूला औरउत्तर काशी भी म्लेरियल ही बतलाये गये हैं इसलिये इधर से निराश होकर अलमोड़ा की ओर खोज करना निश्चय किया।

अलमोड़ा और नैनीताल के पहाड़

फ़रवरी १९२० में, नैनीताल आदि के पहाड़ों की ओर यात्रा करने के लिये उधर गया और हल्द्वानी पहुंचकर आर्य समाज

मन्दिर में निवास किया। २३ फरवरी को पहाड़ की यात्रा शुरू की। म० रामप्रसाद जी मुख्तार और ठाकुर उदयसिंह जी नायक साथ हुये। भीमताल, विनायक, श्याम खेत और रामगढ़ और अलमोड़ा आदि में अनेक स्थान देखे। अंत में सबसे अधिक उपयोगी स्थान, रामगढ़ की पहाड़ियों में वह प्रतीत हुआ जो नदी के पुल से पूर्व की ओर एक नदी के पुल से एक बड़े नाले के संगम के निकट है। वहीं कुटी बनाने का निश्चय किया गया। मासांत मेंलौटकर फिर हल्द्वानी के आर्य मन्दिर में निवास किया और भूमि प्राप्त करने का यत्न प्रारम्भ किया गया।

एटा, कासगंज आदि की यात्रायें

राम विद्यालय सकीट (एटा) के उत्सव में शरीक होकर कासगज होते हुये बम्बई ब्रह्मचारी द्विजेन्द्रनाथ के विवाह में शरीक हुआ। वहां से १३३/० को हल्द्वानी लौट आया। कासगंज में बाबू जगतनारायण ने शहर से बाहर एक बंगले में निवास का प्रबन्ध कर दिया था। नदरई नदी का पुल देखा जो हिन्दुस्तान के दर्शनीय वस्तुओं में से एक हैं। सोरों की भी सैर की; वहां कपिल मुनि की गुफा देखी जो एक विलक्षण गुफा कही जाती है। कहा तो यह जाता है कि यह गुफा काशी तक भूमि के भीतर ही भीतर चली गई है। यह ठीक हो या न हो परन्तु यह निश्चित है कि उसके दूसरे किनारे का ज्ञान अब तक किसी को नहीं हो सका है। वायु का मार्ग उसमें प्रारंभिक

द्वार के सिवा और कहीं नहीं है, इसीलिये उस गुफा में दूर तक आदमी नहीं जा सकता न प्रकाश ही पहुँच सकता है। बम्बई में समुद्र का किनारा बड़ा रमणीक है। अपोलो बन्दर तो दर्शनीय है ही। एक फ़ौजी आर्य डाक्टर की कृपा से "बरेला" जहाज़ के समस्त भागों को देखा गया। हम प्रायः ३ घंटे तक उस जहाज़ में रहे। बड़े जहाज़ जैसा यह है एक छोटी मोटी आबादी के सदृश होते हैं जिनमें प्रत्येक प्रकार के आराम का प्रबन्ध होता है। परन्तु तीसरे दर्जे (डैक) के यात्रियों की यहां भी दुर्गति ही है। बम्बई से १८ मील के फासिले पर "एलिफैन्ट केव" है। यह एक छोटा सा टापू है। लगभग एक घटे में स्टीमर वहां पहुंचता है। हम एक स्टीमर के द्वारा वहां पहुंचे। वहां कुछ सरकारी फ़ौज भी रहती है और एक तोपखाना भी है। वहां पहाड़ काट कर एक गुफा बनाई गई है। उस गुफ़ा में एक शिव मन्दिर है, जिसे सरकार ने एक ईसाई पादरी के आधीन कर रक्खा है। वह पादरी ।) टैक्स लेकर किसी आदमी को उस गुफ़ा और मन्दिर को देखने देता है। सरकार का यह प्रबन्ध निन्दनीय है। यह मन्दिर किसी हिन्दू ही के प्रबन्ध में रहना चाहिये था, न जाने बम्बई की हिन्दूजनता क्यों इस मामले में चुप है और आन्दोलन नहीं करती। इसी प्रकार अजमेर में एक भैरों के मन्दिर का पुजारी एक मुसलमान है। ईसाई और मुसलमान मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए भी जब पैसा कमाने का अवसर आता है तब मन्दिरों से अपना सम्बन्ध जोड़ने में जरा भी शर्म नहीं

करते। बम्बई की आकाश स्थित वाटिका (Hanging Garden) एक छोटी पहाड़ी पर अच्छा रम्य स्थान है और सर फ़ीरोज़ शाह मेहता की अमर यादगार है (इस वाटिका के नीचे एक सरोवर है, उसी पर वाटिका बनी हुई है। बिना बतलाये किसी को मालूम भी नहीं हो सकता कि यह वाटिका पानी के ऊपर बनी हुई है।

हल्द्वानी निवास

भूमि की रजिस्ट्री न होने के कारण हल्द्वानी ठहरना पड़ा। पहली अप्रैल २० को भूमि की रजिस्ट्री मेरी प्रेरणा से आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के नाम होगई, दाख़िल-ख़ारिज भी हो गया। अब कुटी बनाने की चिन्ता शुरू हुई।

ऐनक का प्रयोग

३ फरवरी १९२० ई० को एक ऐनक ख़रीदी गई, अँग्रेज़ी के बारीक अक्षर रात्रि में अच्छी तरह से नहीं पढ़े जाते थे। प्रारंभ में केवल इसी उद्देश्य से ऐनक का प्रयोग किया गया था परन्तु लगाते रहने से अभ्यास होगया अब वह एक आवश्यक वस्तु बन गई।

सन्ध्या का मनन

हलद्वानी निवास काल में, स्वाध्याय और कुछ अभ्यास करने का अच्छा अवसर मिला। एक दिन संध्या पर मनन करते हुए जब उसके रहस्य उद्घाटित हुये तो उससे चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रतीत होने लगा कि सन्ध्या की बड़ी भारी उपयोगिता है। सन्ध्या एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए तीन कर्तव्यों का विधान करती है।

सन्ध्या का उद्देश्य

आचमन मंत्र जिसे कहते हैं उसमें संध्या का उद्देश्य वर्णित है और वह संसार में हर्ष की मात्रा वृद्धि करना है। अर्थात् मनुष्य का कर्तव्य यह है कि जब वह दुनिया से रुखसत हो तो उसे दुनिया के हर्ष समुदाय (Happiness के टोटल) में कुछ वृद्धि करके जाना चाहिये।

पहला कर्तव्य

अपने सम्बन्ध में मनुष्य को क्या करना चाहिये, यह पहला कर्तव्य है। इसका विधान संध्या के दूसरे मंत्र से लेकर अघमर्षण मंत्रों तक में है। उसे अपने भीतर (१) बल (२) यश (३) पवित्रता, (४) प्राणायाम की योग्यता और (५) श्रद्धा के उच्चभाव पैदा करना चाहिए।

दूसरा कर्तव्य

अन्यों के साथ क्या करना चाहिये। इसका विधान मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्रों में है। इन मन्त्रों में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि जो कोई हमको द्वेष करता है अथवा जिस किसी को हम द्वेष करते हैं, उस द्वेष वृद्धि को नष्ट कर देवें जिससे हम किसी से द्वेष न करें।

तीसरा कर्तव्य

उपस्थान के मंत्रों में तीसरे कर्तव्य का विधान है। तीसरा कर्तव्य यह है कि हमें ईश्वर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये। उपस्थान के मंत्रों में ईश्वर के २२ गुण वाचक नाम लिये गये हैं। अभिप्राय यह है कि मनुष्य को इन गुणों को अपने भीतर धारण करना चाहिए।

बीसवां अध्याय

रामगढ़ में कुटि-निर्माण का कार्य

२० मई १९२० ई० को गुरुवार के दिन रामगढ़ में कुटि बनने का काम शुरू हुआ। ईश्वर से प्रार्थना की गई कि काम निर्विघ्न समाप्त हो। कुटि बनाने का ठेका एक ठेकेदार को दे दिया गया था। पीछे से मालूम हुआ कि वह बड़ा शराबी है और उसको ठेका नहीं देना चाहिए था। फिर ठेका क्यों दिया गया? इसका कारण हमारे प्रारंभिक सहायकों में से एक का स्वार्थ था। उनका रामगढ़ में शराब का ठेका था और हमारा ठेकेदार उनका ऋणी था। उन्होंने समझा कि इस ठेके से उनका ऋण वसूल हो जावेगा। इस स्वार्थ ने कुटि बनने के कार्य में विघ्न डाला। ठेकेदार कुछ रुपये पेशगी लेकर बैठ गया। कुटि का फिर अंत तक का सब काम अमानी में अपनी ही देखभाल में कराया गया। मजदूर यहां (पहाड़) के बड़े निगरानी तलब हैं। इनको पेशगी देना धन और काम दोनों की हानि करना है।

ठाकुर कृष्णसिंह की वाटिका में निवास

रामगढ़ आकर कृष्णसिंह जी की वाटिका में ठहरा। उसमें ठहरने योग्य एक मकान बना हुआ था। प्रारंभ में जब मैं यहां आकर ठहरा तो मेरा चित्त अस्वस्थ रहने लगा। भोजन ठीक तरह से नहीं पचता था, तबियत गिरी हुई सी रहने लगी। उस

समय भक्त कुन्दनसिंह दूकानदार ने मुझे चाय के प्रयोग की सलाह दी। इससे पहले मैंने कभी चाय नहीं पी थी। औषधि समझकर उसका प्रयोग किया गया। उसके प्रयोग से सारी शिकायतें दूर होगईं। उस समय मुझे ख्याल हुआ कि शायद पहाड़ के लिये चाय अनिवार्य वस्तु है।

विद्यार्थियों के पढ़ाने का आरंभ

ठाकुर कृष्णसिंह ने प्रार्थना की कि मैं उनके पुत्र लक्ष्मण सिंह को अँग्रेजी पढ़ा दिया करूं। मैंने इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार जब लक्ष्मणसिंह पढ़ने लगा तब और भी कई नवयुवक पढ़ने आने लगे और इस प्रकार एक छोटी सी पाठशाला का प्रारम्भ होगया। प्रत्येक विद्यार्थी का पाठ पृथक् पृथक् था। कोई संस्कृत पढ़ता था, कोई अँग्रेजी कोई धार्मिक ग्रंथ इस पाठशाला से मेरा दोपहर का समय अच्छा कटने लगा।

नायक जाति और कन्याओं का वेश्या बनाना

किसी प्रतिकूल समय से नायक जाति के अन्दर दो कुप्रथायें प्रचलित होगई थीं (१) अपनी कन्याओं का विवाह न करके वेश्या बनाना (२) यदि कोई विवाह करे तो वह अपनी जाति में न करना। इस कुप्रथा के दूर करने के लिए आर्य समाज ने आन्दोलन किया और मेरे रामगढ़ आने से पहले इस आन्दोलन को क्रियात्मक रूप, श्रीयुत मा० रामप्रसाद मुख्तार नैनीताल और ठाकुर उदयसिंह नायक रामगढ़ निवासी ने, दे रक्खा था। मेरे आने से आन्दोलन की चाल में वेग

आगया और दूसरे तीसरे दिन बराबर कहीं न कहीं सभायें होने लगीं। बच्चे से बूढ़े तक इस आन्दोलन से प्रभावित हुये। कुछ लोगों ने निश्चय किया कि वे अपनी अपनी कन्याओं के विवाह करेंगे। इस मामले में सबसे पहला कदम रामगढ़ के एक प्रतिष्ठित नायक श्रीयुत नरसिंहदास ने उठाया और उन्होंने अपनी कन्याओं का विवाह किया, इससे आन्दोलन और भी तीव्र हो उठा. उसके बाद और भी कतिपय नायक सज्जनों ने अपनी अपनी कन्याओं के विवाह करने शुरू किये। इस अनुकूल और प्रतिकूल आन्दोलन के संघर्षण ने रामगढ़ का रूप बदल दिया और पांच वर्ष के भीतर, गिनेचुने व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सभी ने अपने को विवाह पार्टी में शामिल कर दिया और अब तो वे गिने चुने लोग भी विवाह करने के पक्ष में होगये। कन्याओं के वेश्या बनाने का कलंक रामगढ़ ने अपने माथे से दूर कर दिया। अब एक भी व्यक्ति कन्या को वेश्या बनाने के हक़ में यहाँ नहीं रहा। और आपस (अपनी बिरादरी) में विवाह भी अब आमतौर से प्रचलित होगया।

मुरादाबाद में सोशल कान्फ्रेंस

२३-६-२० को मुरादाबाद से म० पीतम्बर शरण एक समाज सुधारक यहां आये। स्वागत कारिणी सभा ने एक पत्र और और दूसरा तार भेजा कि मैं मुरादाबाद में होने वाली प्रान्तिक सोशल कान्फ्रेन्स के सभापति पद को ग्रहण करूं। डाक्टर भगवानदास काशी के प्रसिद्ध विद्वान, राजनैतिक कान्फ्रेन्स के

प्रधान-पद को स्वीकार कर चुके थे। यहाँ (रामगढ़ में) उस समय तार नहीं था इसलिये तार का उत्तर भी चिट्ठी में देने के लिये विवश था। और वह उत्तर निषेध परक था। परन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही स्वा० सभा ने महाशय पीतंवर शरण को मेरी स्वीकारी लेने के लिये भेजा। यह सज्जन वर्षा में भीगते हुये बड़े कष्ट के साथ रात्रि में मेरे पास पहुंचे। उन दिनों भुवाली को मोटर नहीं चले थे। काठ गोदाम से रामगढ़ २० मील घोड़े पर या पैदल आना पड़ता था। यह भाई कुछ दूर घोड़े पर और कुछ दूर पैदल आये थे। स्वागत कारिणी सभा के आग्रह और म० पीतंबर शरण के कष्ट का स्मरण कर मेरा हृदय द्रवीभूत होगया और मैंने प्रधान होने की स्वीकारी देदी।

मुरादाबाद की यात्रा और ज्वर का प्रकोप

सभापति का भाषण मैंने लिखकर स्वागत कारिणी सभा में छपने के लिये भेज दिया। यह कान्फ्रेन्स वर्ष में केवल एक दिन के लिये होकर समाप्त होजाया करती थी बाकी वर्ष भर कुछ नहीं हुआ करता था। मैंने कान्फ्रेन्स को सलाह दी कि उसका एक स्थिर संगठन होना चाहिये जो वर्ष भर बराबर काम करता रहे। प्रसन्नता की बात है कि कान्फ्रेन्स ने इस सलाह को मान कर एक स्थिर कार्य कारिणी सभा बना दी। कान्फ्रेन्स १८वी अक्टूबर २० को होने वाली थी परन्तु स्वागत कारिणी सभा ने एक दो दिन पहले पहुंचने के लिये आग्रह किया था। इसी के अनुसार मैं ३ दिन पहले हलद्वानी से चल दिया। उस समय मुझे

पैदल चलने का बहुत थोड़ा अभ्यास था और फिर मार्ग की विकटता और ऋतु की प्रतिकूलता ने सोने में सुहागे का काम किया। मैं रामगढ़ से २४ मील पैदल चलकर बुरे हाल में हल्द्वानी पहुँचा। हल्द्वानी में आर्य भाइयों ने बड़ी सेवा-शुश्रूषा की और चाहा कि मैं एकाध दिन वहाँ ठहर कर आराम करलूँ। परन्तु मुरादाबाद पहुंचने का समय नियत होने के कारण उसी दिन मुरादाबाद चल देना पड़ा। रास्ते में ज्वर आगया और मैं उसी दशा में मुरादाबाद पहुँचा। मुझे बड़ा संकोच हुआ कि मैं वहाँ अपनी रुग्णावस्था को प्रकट करूँ। इसलिये मैंने निश्चय किया कि कान्फ्रेन्स होजाने तक मुझे अपनी रुग्णावस्था नहीं प्रकट करनी चाहिए। यद्यपि १०२, १०३ डिगरी का ज्वर बराबर बना रहा परन्तु मैं सब काम स्वस्थ आदमियों की तरह करता रहा अवश्य, भोजन में परहेज रखने का पूरा यत्न किया। कान्फ्रेन्स के सब कार्य सफलता पूर्वक समाप्त होगये।

स्वामी श्रद्धानन्द का आगमन

स्वामी श्रद्धानन्द जी मुरादाबाद के मेरे निवास गृह पर आये और देहली चलकर रहने का आग्रह किया और कहा कि वहां चल कर सार्वदेशिक सभा का काम संभालना चाहिये। परन्तु मेरा दूसरा प्रोग्राम बन चुका था इसलिए देहली जाना मैं स्वीकार न कर सका। मैं मुरादाबाद के कार्य से निवृत होकर उसी रुग्णावस्था में वहां से चलकर रामगढ़ आगया और दो दिन तक और रुग्ण रहने के बाद नीरोग होगया।

इक्कीसवाँ अध्याय

प्रेम महाविद्यालय

राजा महेन्द्र प्रताप के आग्रह से मैं प्रेम महा विद्यालय प्रबंध-कर्त्री सभा का सभा सद बन गया था। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य होने के कारण वृन्दावन में रहना तो था ही; मैंने सोचा कि कभी कभी उस सभा में भी हो आया करूँगा। राजा महेन्द्र प्रताप यारुप चले गये और प्रबंध कर्त्री सभा के प्रधान उनके बड़े भाई कुँवर बल्देवसिंह जी होगये थे। प्रबंधकर्त्री सभा की एक बैठक में, जो १९१५ ई० में किसी समय हुई थी कुँवर बल्देवसिंह जी ने प्रकट किया कि प्रेम महा विद्यालय को जिला और कमिश्नरी के उच्च राज कर्मचारी सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उसे राजनैतिक कर्तृत्व का अड्डा समझते हैं। मैं उनका विरोध नहीं कर सकता इसलिए अच्छा हो कि प्रधान कोई और बना दिया जावे। सबकी सम्मति और आग्रह से मुझे प्रधान पद स्वीकार करना पड़ा। सन् १९१५ से, इस प्रकार, १९२३ ई० तक मैं प्रधान रहा। इस बीच में कई बार पुलिस कई बार मथुरा के मजिस्ट्रेट के विद्यालय पर आक्रमण होते रहे; परन्तु जब उनको यह मालूम होता कि इसका भी प्रधान मैं हूं तभी वे सब आक्रमण समाप्त होजाते थे। चौधरी मुख्तारसिंह वकील मेरठ और बाबू विश्वंभर दयाल मुख्याध्यापक गुरुकुल वृन्दावन

द्वारा विद्यालय में अनेक सुधार किये गये और खादी बुनने आदि के काम जारी किये गये तथा विद्यालय की पाठ-विधि में ऐसा फेरफार किया गया जिससे विद्यार्थियों को अँगरेजी और हिन्दी कम से कम दसवीं श्रेणी तक की आजाया करे। विद्यालय में उत्सव प्रथा प्रचलित की गई, उसके साथ प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया। इस बात पर काफ़ी देर तक विचार होता रहा कि विद्यालय का स्थान परिवर्तन करके उसे गुरुकुल के निकट पहुंचा दिया जावे जिससे गुरुकुल के ब्रह्मचारी भी उससे लाभ उठा सकें। इस मामले में प्रायः सभी श्रेणी के सभासद सहमत होगये थे केवल इस पर अमल करना बाक़ी था। यदि मैं १९२० के प्रारंभ ही में वृन्दावन न छोड़ देता तो शायद एक दो वर्ष के भीतर ही विद्यालय का स्थान परिवर्तन होजाता और उसकी कार्य प्रणाली में भी अपेक्षित परिवर्तन होजाते। मैंने वृन्दावन से रुख़सत होते हुये विद्यालय के प्रधान-पद से भी त्याग पत्र दे दिया था, परन्तु वे बराबर नाम मात्र के लिये मुझी को प्रधान चुनते रहे। मेरे बहुत इसरार से १९२३ ई० में उन्होंने दूसरा प्रधान चुना उसके बाद विद्यालय में इस प्रकार का एलीमेन्ट बढ़ गया जिससे विद्यालय एक शिल्प विद्यालय ही नहीं रहा अपितु राजनैतिक आन्दोलन का गढ़ भी बन गया। इस पर गवर्नमेन्ट ने उसे बंद करके उसकी जायदाद आदि ज़ब्त करली।

बाईसवां अध्याय

नारायण आश्रम में प्रवेश

कुटि तय्यार होगई। एक कमरा १४×१२ फ़ीट का था और उस के सामने एक बरामदा १४×६ फ़ीट का। यह कुटि दुमंज़िला थी। कुटि की तय्यारी में यहां के मजदूरों के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा। यहां के मजदूर आमतौर से, जैसा कि कहा जा चुका है सर्वथा विश्वास के अयोग्य, झूठे और बेईमान हैं! इन की बेईमानी का एक उदाहरण दिया जाता है। एक बढ़ई को किवाड़ और खिड़की आदि बनाने के लिये १६ तख्ने दिये गये थे परन्तु जो सामान तय्यार हुआ था वह केवल १४½ तख्ने का, हिसब लगाने से निकला। बहुत हैस वहस के बाद उसने स्वीकार किया कि ४½ तख्तों की कुछ चीजें, उन्हीं शराबी ठेकेदार के पृष्ठ पोषक सज्जन के लिये बना दी थी। यही हाल प्रायः अन्यों का था। आश्रम, में कुछ प्रास्तर आदि का काम, यद्यपि बाक़ी रह गया था परन्तु वह गुज़र करने के क़ाबिल होचुका था इसलिये ७ दिसम्बर को पुस्तकें, जो बहु संख्या में थी, ठाकुर कृष्णसिंह की बाटिका से आश्रम में लाई गई और ज़रूरी सामान भी पहुँच गया। ८ वीं दिसम्बर १९२० ई० को मैं स्वयं भी आश्रम में आगया। छत में अभी नमी बाक़ी थी इस लिये अपने एक विद्यार्थी की सलाह से, चीड़ की पत्तियां पहले

बिछाकर तब उसपर बिस्तरा बिछाया। मैं ठाकुर कृष्णसिंह का बहुत कृतज्ञ हूं कि लगभग सात मास मैं आराम के साथ उनकी वाटिका में रहा। इस प्रकार अपने स्थान में रहने से, स्वतंत्रता के साथ, सब काम ठीक ठीक नियम और मर्यादा के साथ होने लगे।

अध्ययन और अध्यापन

विद्यार्थियों की पढ़ाई यथापूर्व चलती रही। लक्ष्मणसिंह विद्यार्थी ने अँगरेज़ी साहित्य का कोर्स १० वीं श्रेणी तक का जारी रक्खा। उसके पढ़ाने के लिये मुझे तय्यारी करनी पड़ती थी इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। संस्कृत व्याकरण की एक बार फिर, वेदांग प्रकाश के आश्रय से, आवृत्ति की गई। एक कापी तय्यार की गई जिस में संस्कृत और अँगरेज़ी व्याकरण के प्रायः सभी नियम उदाहरणों के साथ साथ दिये गये। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

अभ्यास

साधारण रीति से रामगढ़ आने से पहले, कुछ प्राणायाम कुछ शब्द और प्रकाश सम्बन्धी अभ्यास किये गये थे। हल्द्वानी के निवास काल में उन्हें दुहराया गया। आगे क्या करना चाहिये था यह प्रश्न हल करना था। जब मैं कुटि बनाने (एकान्त-वास) के लिये, जगह की खोज करते हुये ऋषिकेश की ओर गया था तब वहां मुझे मालूम हुआ था कि वहां कभी कभी अच्छे अभ्यासी साधू आजाया करते हैं इसलिये निश्चय किया

गया कि ऋषिकेश चलकर उनकी खोज करनी चाहिये। मेरी कुटि घोर एकान्त में थी। इसलिये रात को ८ बजे सोने का समय नियत किया गया और २ बजे रात्रि को उठकर ५ बजे तक अभ्यास के लिये रक्खा गया। प्राणायाम का अभ्यास बढ़ाया गया। ३ मास ही में सात मिनट श्वास रुकने लगा। इस सफलता से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और इसकी इतनी उपयोगिता का अनुभव, पहली बार मुझे हुआ। इस बीच में श्री रामाचरक के अँगरेज़ी ग्रन्थ, जो राजयोग और प्राणायाम आदि के सम्बन्ध में थे देखे और उनमें अंकित अनेक प्राणायामों का अभ्यास किया। ये अभ्यास बड़ी सुगमता से मुझे होगये इसलिये कि प्राणायाम का काफ़ी अभ्यास होचुका था।

ऋषिकेश की यात्रा

एक बार फिर प्रेरणा हुई कि मुझे ऋषिकेश की ओर चलकर जानकारों की खोज करनी चाहिये। २१ मार्च २० को रामगढ़ से चलकर २२ को हरद्वार एक धर्मशाला में ठहरा और २३ को प्रातःकाल ऋषिकेश पहुँचकर काली कमली वाले की धर्मशाला में निवास किया। आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर लक्ष्मण झूला की ओर चल दिया। साधू-संतों में बैठता, उनसे वार्तालाप कर के और उन्हें काम के योग्य न पाकर आगे चल देता। यह अमल दो दिन तक बराबर जारी रहा परन्तु फल कुछ नहीं निकला। तीसरे दिन यह निश्चय करके निवास स्थान से चला कि यदि आज कोई उपयोगी आदमी न मिला तो फिर

रामगढ़ लौट जाऊँगा। मैं सीधा लक्ष्मणझूला के समीप वहीं एक टीले पर, वहां कुछेक साधुओं को बैठा देखकर, उन्हीं के पास पहुंच गया। थोड़ी देर बात चीत करके और सब साधू चलेगये। मैं तथा एक और साधू वहां बैठे रह गये। पता नहीं क्यों जब मैं टीलेपर पहुंचा था उसी समय से इस साधू की ओर मैं खिच रहा हूँ ऐसा मैं अनुभव करने लगा था। साधू महाशय ने थोड़ी देर तक मेरी ओर देखकर पूछा कि क्या उद्देश्य है? मैंने सब बातें, स्पष्टतया, उनसे कहदीं और पूछने पर जो अभ्यास कर रक्खे थे उन्हें भी बतला दिया। उन्होंने मुझे दो क्रियायें बतलाईं और कहा कि ६ मास में यह सिद्ध होजायेगी इसके बाद आज से सातवें मास के पहले दिन तुम यहां आजाना। मैंने पूछा कि वे मुझे यहीं मिलेंगे तो उत्तर मिला कि कहीं न कहीं इधर ही मिल जावेंगे। मैं रामगढ़ चला आया और नियमित अभ्यास उसी रात्रि के अंतिम भाग में करने लगा।

एक घटना

रामगढ़ में अब मेरा समय विभाग इस प्रकार था:—

प्रातः ५ बजे से ६ बजे तक—शौच स्नान आदि।

६ से ७ तक—आसन तथा अन्य व्यायाम।

७ से १० तक—आत्मदर्शन की कापी तय्यार करना तथा उस सम्बन्ध में उपयोगी ग्रन्थों का देखना।

१० से १२ तक—भोजन बनाना और खाना।

१२½ बजे से ३ बजे तक—विद्यार्थियों को पढ़ाना।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी
(१९७० ई मे जब आप वानप्रस्थाश्रम
में योगाभ्यास किया करते थे)

३ से ५ बजे तक—वाटिका का कार्य तथा आश्रम के सामने चबूतरा आदि बनाना।

५ से ७ बजे तक—भ्रमण—शौच और सन्ध्या।

७ से ८ बजे तक—फल और दूध का सेवन।

८ से २ बजे तक—शयन।

२ से ५ बजे तक—अभ्यास।

एक रात्रि को जब मैं दुग्धपान करके ऊपर की मंजिल में जारहा था तो मेरे एक हाथ में लालटेन थी और दूसरे में अँगीठी और बगल में लकड़ी। मैं सब से ऊपर की सीढ़ी पर जब पहुँचा तो मैंने देखा कि बरामदे की दूसरी ओर से एक रीछ सीढ़ी की ओर आरहा है। मैंने सोचा कि यदि सीढ़ी पर झगड़ा हुआ तो मैं सीढ़ी से गिर जाऊँगा इसलिये मैं भी जल्दी से उसी बरामदे में घुस गया, जिसमें रीछ था। रीछ ने जब देखा कि मैं बेधड़क होकर आरहा हूँ और मेरे पास अँगीठी आदि भी है तो उसका हृदय निर्बल हुआ और वह मुड़कर बरामदे के दूसरे दरवाजे से कूद कर भाग गया। मैं किवाड़ बन्द करके आराम से सो रहा इसी प्रकार की एक घटना मेरे साथ उस समय घटित ई जब मैं कृष्णसिंह की वाटिका में रहा करता था। वहां जिस मकान के ऊपरी हिस्से में मैं था उसके नीचे के भाग में पशु बँधा करते थे। यहां रात को अक्सर बघेरे (छोटा शेर) पशु शालाओं में चले आया करते हैं और जो पशु उनके पल्ले पड़ जाता है उसे मार कर खालिया करते हैं। मैं जिस कमरे में रहता था उसमें दो दरवाजे थे, एक वह

दरवाजा जो मेरे पलंग के पास था खुला था और दूसरा दरवाजा बन्द था। एक रात इसी अवस्था में मैं सोगया। रात को बघेरा आया परन्तु नीचे जाने की जगह वह ऊपर चला आया जहां मैं रहा करता था परन्तु दैव योग से वह उस द्वार पर पहुँचा जो बन्द था। उस बन्द द्वार पर एक थपेड़ा उसने इतनी जोर से मारा कि यदि किवाड़ मजबूत न होते तो जरूर टूट जाते। मैं इस जोर की आवाज से जग पड़ा और सब से पहला काम, जो बड़ी शीघ्रता से मैंने किया यह था कि उस खुले दरवाजे को भीतर से बन्द करके जंजीर लगादी। उसके बाद लेम्प जलाया गया। जब लालटेन जल गई और मैं लकड़ी लेकर तय्यार होगया तब किवाड़ खोले और लालटेन लेकर बाहर आकर देखा तो वहां कुछ नहीं था। मैं सोरहा; प्रातःकाल मालूम हुआ कि रात बघेरा आया था, वहां से तो उसे कुछ मिला नहीं परन्तु एक दूसरे पुरुष के एक बछड़े को मार कर उठा ले गया।

इस आश्रम का नाम 'नारायण आश्रम' कैसे पड़ा

ब्रह्मचारी धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने जो उस समय आर्य मित्र आगरा के संपादक थे, एक संगमरमर का छोटा सा पत्थर बनवाकर मेरे पास आगरे से भेजा। उस पत्थर पर उन्होंने, इस आश्रम का नाम "श्री नारायण आश्रम" तजवीज करके यही नाम इस पत्थर पर खुदवाकर भेजा और स्वयं आकर उन्होंने उसे आश्रम के बरामदे की दीवार पर लगवा दिया।

तब से सब इस आश्रम को नारायण आश्रम कहने लगे और अब यह नाम प्रसिद्ध होगया।

नारायण आश्रम में लक्ष्मण धारा

यहां आश्रम में जलाभाव था। शीत काल में नदी का जल बर्फ़ की तरह ठंडा हुआ करता है इसलिये प्रातःकाल अँधेरे ही में मुझे नदी पार करके पुल की क़रीब वाली धारा में स्नान करने जाना पड़ता था। लक्ष्मणसिंह विद्यार्थी ने, जिसका नाम ऊपर कहीं आ चुका है, एक दिन दोपहर के वक्त मुझ से कहा कि आपको प्रातःकाल स्नान करने के लिये दूर जाने से तक़लीफ़ हुआ करती है इसलिये मैं यत्न करता हूं कि आश्रम की भूमि में कहीं जल निकालूं। मुझे उसकी बात यद्यपि आश्चर्यजनक प्रतीत हुई परन्तु मैंने अनुमति देदी कि यदि कहीं जल निकल सकता है तो निकालूं। उसने इधर-उधर घूमकर, जहां अब धारा है, वहाँ खड़े होकर बतलाया कि यहां पानी निकलेगा। उसने एक और यहां के कृषक गुलाबसिंह की सहायता से वहां की भूमि को खोदा और लगभग ४ फ़ीट नीचा खोदने पर पानी निकल आया। उसने एक नाला भी बनाकर, कई सोतों के जल को इकट्ठा करने के लिये उस नाली में नल लगा दिया। उस नल से उंगली से कुछ अधिक मोटी धार जल की निकलने लगी। इस प्रकार जल निकल आने से आश्रम को बड़ा लाभ हुआ। इस जल का निकालना विद्यार्थी लक्ष्मणसिंह का आविष्कार था इसलिये इस धारा का नाम लक्ष्मण धारा रखकर

वहां एक स्नान गृह बनादिया गया। आश्रम वासी अब वहां से जल लेते और स्नान आदि करते हैं।

अपना सब काम अपने हाथ से करना

रामगढ़ आते ही इस नियम का पूर्ण रीति से अपना लिया गया कि अपना समस्त काम स्वयं अपने हाथ से करना चाहिये। इसके अनुसार मैं जंगल से जलाने को लकड़ी काट कर ले आया करता था। भोजन अपने हाथ से बनाया करता था और भोजन सम्बन्धी सब काम अपने ही हाथ से करता था। इस से मेरा चित्त बहुत प्रसन्न रहने लगा और इससे आत्म-विश्वास की मात्रा बढ़ती हुई प्रतीत होने लगी।

आश्रम में वाटिका बनाना

इस कार्य में लक्ष्मणसिंह विद्यार्थी ने बड़ी सहायता दी। खड्ड खोदकर सेव, नाशपाती, आड़, खूबानी, नीबू और नारंगी की पौदें लगाई गईं। आश्रम से मिली हुई वे नाप की भूमि को आश्रम में शामिल करने से वाटिका का विस्तार होगया अब लगभग सौ सवा सौ पेड़ तय्यार हो गये हैं जिनमें से अनेक फल देने लगे हैं।

तेईसवाँ अध्याय

योगाभ्यास और ऋषिकेश की दूसरी यात्रा

६ मास में पूरी होने के लिये जो दो क्रियायें बतलाई गई थीं, वे समय से एक मास पूर्व ही सिद्ध होगईं। अब आगे की चिन्ता हुई। ६ मास २५-३-१ को पूरे होने वाले थे इसलिये मैं २३ सितम्बर ही को ऋषिकेश के लिये चल पड़ा और २४ को दोपहर के क़रीब वहां पहुँच गया। दो घंटों में आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर लक्ष्मण झूले की ओर चल दिया। जब वहां पहुँचा तो मेरी प्रसन्नता की हद नहीं रही जब मैंने उन्ही महात्मा को ठीक उसी टीले पर बैठे देखा जहाँ उनसे पहले भेंट हुई थी। मालूम हुआ कि वे यहां नहीं थे अभी दो एक दिन हुए जब आये हैं। मैं मामूली शिष्टाचार पूरा करने के बाद वहीं उनके पास जाकर बैठ गया। उन्होंने इस बात को प्रसन्नता से सुना कि मैंने उनकी बतलाई दोनों क्रियाओं को सिद्ध कर लिया है। उन्होंने आगे के लिये एक और, जिसे तीसरी क्रिया कहनी चाहिये, बतलाई और कहा कि इसे दो तीन बार यहीं करलो, उन्होंने यह भी कहा कि वे यहां अभी ३ दिन और ठहरेंगे मैं उनसे बराबर वहीं मिल सका हूं। मैं उनसे बराबर मिलता रहा और उस क्रिया के सम्बन्ध में भी आवश्यक ज्ञान प्राप्त करता रहा। उन्होंने कहा कि इस क्रिया की सिद्धि में एक वर्ष लगेगा। इस

लिये एक वर्ष समाप्त होते ही मैं उनसे वहीं मिलूं। मैं लौटकर एक दिन हरद्वार और १ दिन कांठ ठहरता हुआ रामगढ़ आगया। कांठ समाज के आर्य भाई बड़े उत्साही और पुरुषार्थी हैं इसी-लिये मैं कभी कभी उनसे मिल लेता हूँ। इसी बीच में, स्वामी मुनीश्वरानन्द जी पं० वंशीधर पाठक और ब्रह्मचारी धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री यहां आये और कुटि में कुछ समय तक ठहरे। नई क्रिया का अभ्यास नियम पूर्वक मैं करने लगा।

कथाओं द्वारा प्रचार

रामगढ़ निवास के दूसरे वर्ष के अन्त मे कहीं कहीं प्रचारार्थ मैं जाने लगा। यह प्रचार कथाओं के रूप में करना शुरू किया। मुरादाबाद, बरेली, मेरठ, देहरादून आदि अनेक स्थानों पर कथायें की गईं। मुझे अनुभव से यह प्रतीत हुआ कि कथाओं द्वारा प्रचार का अधिक प्रभाव जनता पर पड़ता है इसलिये इस प्रथा को जारी रखने का दृढ़ इरादा किया गया।

मंत्र सिद्धि का रहस्य

जब मै गुरुकुल मे था तो वहां एक घटना घटित हुई थी। दारोगा लक्ष्मीनरायण एक बड़े सज्जन आये थे। वे वहां सहायक मुख्याधिष्ठाता थे और वस्तु भंडार का सब काय उनके आधीन था। वे कठिन रोग में ग्रसित होगये उनकी कुछ हालत खराब देखकर मैंने डाक्टर संगतराम को बुलाया। उन्होंने देखते ही कुछ चिन्ता की और उसी चिन्तित अवस्था में एक वेद मंत्र अनायास उनकी जुबान से निकल गया। मेरे ऊपर इसका बड़ा

प्रभाव पड़ा। वह मंत्र मानों मेरे हृदयांकित होगया और बार बार जुबान से निकलने लगा। इरादा करने की जरूरत नहीं होती थी। इसको प्रायः ५ वर्ष (१९२१ ई० में) होगये थे। वह मंत्र मेरी जुबान से उतरता ही नहीं था। उठते-बैठते अनायास मेरी जुबान से निकलने लगा।

एक घटना

एक बार जब मैं रामगढ़ से काठगोदाम पैदल जारहा था तो यात्रा के शुरू ही में १½ मील चलकर घोर जंगल से गुजरने लगा तो मुझे एक रीछ के बोलने की आवाज़ सुनाई दी। शीत काल में लगभग ४½ बजे प्रातः काल के समय, जब की यह घटना है, अधिक अँधेरा होता है। मैं बराबर आगे चलता गया। थोड़ी देर ही के बाद पत्तों पर चलने से जैसी खड़खड़ होती है वह मुझे सुनाई दी, इसके बाद ही वह रीछ मुझे दिखाई देने लगा। मैं जिस रास्ते से चल रहा था उससे कुछ ऊँचाई पर जो, सीढ़ी की तरह कम चौड़ी पहाड़ी क्यारी थी, उसी पर चलता हुआ वह ठीक मेरे सामने आगया। उस समय, एकान्त में, जहां फ़रलांगों दूर इधर उधर कोई आदमी नहीं था, एक भयानक जंगली जानवर का सामना होने से कुछ निर्बलता हृदय में आही रही थी कि अचानक वही मंत्र, बिना किसी इरादे के मेरी जुबान से निकल गया। उस मंत्र का निकलना था कि मुझे अनुभव होने लगा कि मानों कोई मेरा हाथ पकड़कर मुझे आगे लेजा रहा है। मैं बे खटके आगे चला गया। इस प्रकार वह

बुरा समय, सुगमता से टल गया। ऐसा ही और भी एक दो और अवसरों पर हुआ। इन घटनाओं में गुजरने से, मुझे विश्वास होगया कि श्रद्धा और विश्वास के साथ, किसी मंत्र के बार बार जपने (उच्चारण करने) से, मनुष्य पर कुछ ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है जिससे उसकी मानसिक अवस्था ऐसी हो जाती है कि उस मंत्र के स्मरण मात्र से, वह अपने अन्दर मानसिक शक्ति, बहु मात्रा में, बढ़ी हुई अनुभव करने लगता है, शक्ति की वृद्धि से मनुष्य निर्भीक हो ही जाता है। यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है इसीलिए आगत भय उसके लिये कष्टप्रद नहीं रहते। यही मंत्र की सिद्धि का मूल सिद्धान्त है।

एक दूसरी मनोरंजक घटना

पहले जब मैं रामगढ़ आया था उस समय भुवाली मोटर का रास्ता नहीं था इसलिए हमें काठगोदाम से, रामगढ़ पहुँचने के लिये, २० मील चलना पड़ता था। एक दिन मुझे रामगढ़ से काठगोदाम जाना था। मैं अँधेरे ही में लगभग ४ बजे रात्रि के रामगढ़ से पैदल चल दिया। आगे ४, ५ घोड़े वाले बंजारे अपने अपने घोड़ों के साथ जारहे थे। मैं उस समय सफ़ेद कुरता पहने हुये था और शिर पर बड़े बाल और लंबी डाढ़ी थी। यहां रामगढ़ में जब मैं आगया तो दो वर्ष तक, सन्यासी होने के समय तक बाल नहीं कटवाता था, न यहां उस समय नाई ही कोई रहता था। मैं घोड़ों के कुछ पीछे था, जब मैं सबसे पीछे वाले घोड़े के कुछ क़रीब पहुंचा तो उस घोड़े के साथ का बंजारा मुझे

"जिन" समझकर डरा। उसने अपने आगे के बंजारों से कहा कि पीछे कोई "जिन" सा आता प्रतीत होता है। उसने कदाचित् "जिन" का ऐसा ही हाल सुन रक्खा था जैसी उस समय मेरी हालत थी। अगले बंजारे भी डरे और डर के मारे उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया सिर्फ यह कह दिया कि चुप चाप चला आ। मैं पीछे वाले बंजारे के बराबर अधिक समीप होता जाता था। ज्यों ज्यों मेरी समीपता बढ़ती जाती थी उस बंजारे का भय बढ़ता जाता था। जब उसे यह निश्चय होगया कि मैं उसके बिलकुल समीप पहुंचने वाला हूँ तो उसका भय सीमा का उल्लंघन करने लगा और वह अत्यन्त भयभीत होकर चिल्ला पड़ा कि 'जिन' आगया। उसके हाथ से घोड़े की रस्सी छूट गई और वह बेहोश होकर गिर पड़ा। उसकी यह दयनीय अवस्था देखकर मैंने आवाज से कहा कि मत डर यहां कोई जिन या भूत नहीं है और उसके पास जाकर उसका हाथ पकड़कर उठा दिया तब उसका भय दूर हुआ और वह घोड़े की रस्सी पकड़कर आगे चलने लगा। उस समय मुझे ख्याल हुआ कि मनुष्य भूत-प्रेत और जिन-चुडैल आदि के मिथ्या विश्वास से अपने को कितना निर्बल और डरपोक बना लिया करता है।

भारत इन्श्योरेन्स कम्पनी

मैंने भारत बीमा कम्पनी में १५ वर्ष के लिये १०००) का बीमा कराया था। अवधी समाप्त होने पर, बोनस मिलाकर १०८१) का चैक मेरे पास आगया। चूंकि मैं आगे के (संन्यस्त)

आश्रम की तय्यारी कर रहा था इसलिये मैंने उचित समझा कि यह धन अपने छोटे भाई ज्वालाप्रसाद को अंतिम भेंट के तौर पर दे दूँ। तदनुसार चैक पर हस्ताक्षर करके उनके पास भेज दिया गया।

पहाड़ी यात्रायें

रामगढ़ में यह नियम बना रक्खा था कि आठवें (इतवार के) दिन मैं और मेरे विद्यार्थी छुट्टी मनाया करें और उस दिन किसी न किसी पहाड़ की यात्रा किया करें। इस प्रकार २०, २७ मील का सफ़र ८ वें दिन हो जाया करता था। इससे ज्ञान वृद्धि के सिवा चित्त खूब आल्हादित रहने लगा।

चौबीसवां अध्याय

बिजनौर की यात्रा और एक घटना

आर्य समाज बिजनौर में कथा करने के लिये गया था। वहाँ मेरे पास बिहार प्रान्त का एक विद्यार्थी आया जिसका नाम रामपरीक्षासिंह था। वह पटना कौलिज के दूसरे वर्ष में था। असहयोग आन्दोलन के समय म० गांधी की अपील पर उसने कौलिज छोड़ दिया था। वह अपने पिता के पास गया जो उस समय दरभंगा हाई स्कूल के हेड मास्टर थे। उसने घर जाकर पिता से कहा कि सरकारी नौकरी छोड़ दो, पिता ने पूछा कि खायेंगे क्या? लड़के ने उत्तर दिया कि चरखा काता करो। पिता ने कहा कि चरखे से तो =)॥ दिन की मजदूरी मुशकिल से मिलेगी फिर गुजर कैसे होगी? लड़के ने उत्तर दिया कि कुछ हो नौकरी छोड़ दो। जब पिता ने उसकी बात न मानी तो वह घर से भाग कर बिजनौर चला आया और यहां एक सज्जन के यहां ठहरा हुआ था। सब हाल जानने पर विद्यार्थी को समझाया गया कि फिर कुछ कला-कौशल सीखो मैं उस समय प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन की प्रबन्धक सभा का प्रधान था। उसको वहां जाकर कुछ सीखने की प्रेरणाकी। उसके लिये छात्रवृत्ति का भी प्रबन्ध करा दिया गया।

दुर्भाग्य से उन दिनों विद्यालय वार्षिक अवकाश के कारण बन्द था। बिजनौर से लौटने पर मालूम हुआ कि उस विद्यार्थी ने बनारस जाकर असहयोग किया और उसे २ साल की कैद हो गई। उस समय स्कूल और कौलिज छोड़ने के आन्दोलन ने इसी प्रकार सैकड़ों विद्यार्थियों का जीवन बरबाद कर दिया।

बरेली की एक घटना

बरेली के आर्य समाज भूड़ में; उपनिषदों की कथा मैं कर रहा था। एक बंगाली सज्जन, अपने बच्चों को लेकर, कथा से कुछ पहले ही, मेरे पास रोज़ आजाया करते थे। उनमें से किसी के पास यज्ञोपवीत नहीं था। जब मैंने कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि "हमें केवल १५०) मासिक वेतन मिलता है, हम कैसे यज्ञोपवीत करा सकते हैं? सबब पूछने पर उन्होंने बतलाया कि बंगाल में केवल यज्ञोपवीत का दिन (मुहूर्त) नियत करने पर पुरोहित को, कुछ रेशमी थान कुछ और चीजें और कुछ नक़द रुपया कुल मिला कर लगभग ७००) का सामान देना पड़ता है। फिर यज्ञोपवीत के समय तो और भी अधिक दान और तमाम बिरादरी को भोज देना पड़ता है जिसमें कुल ढाई तीन हज़ार रुपये खर्च हो जाते हैं। इसलिये ग़रीबी के कारण हमने यज्ञोपवीत कराना ही छोड़ दिया। मैंने उन्हें कहा कि इस समय आप बरेली में हैं। यहां आर्य समाज में, सप्ताह के दिन आप सब अपना यज्ञोपवीत कराओं। कठिनता से १) हवन और घृतादि में खर्च होगा। उन्हें बड़ा

आश्चर्य हुआ कि इतना सस्ता यज्ञोपवीत संस्कार ? उन्होंने अगले ही सप्ताह सब के यज्ञोपवीत करा लिये।

आत्मदर्शन का प्रकाशन

प्रतिदिन नियम से ४ घन्टे समय देने का फल यह हुआ कि १½ वर्ष में आत्मदर्शन नाम का ग्रन्थ तय्यार होगया। प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने उसे अपने पास मंगवा लिया और महाशय राजपाल को प्रकाशनार्थ दे दिया। जब मैं १९२१ ई० के अंत में गुरुकुलोत्सव के उपलक्ष में वृन्दावन गया तो वह ग्रन्थ मुझे मिला। क़ीमत यद्यपि कुछ अधिक रक्खी गई थी परन्तु इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि काग़ज़, छपाई, जिल्दबन्दी आदि सभी वाह्य रूप-रेखा की दृष्टि से ग्रन्थ बहुत अच्छा छपा था और उसके हाथ में लेने से प्रसन्नता होती थी।

अग्नि काण्ड

मई १९२१ की घटना है कि पहाड़ी जंगलों में आग लग गई। मेरा आश्रम बिलकुल जंगल में था इसलिये मेरी कुटि की ओर जंगल जलने लगा और अग्नि की लपटें ऊपर दूर दूर तक उठने लगीं। दिन-रात उसे आश्रम से दूर रखने का यत्न किया गया। इस रक्षाकार्य के कारण एक दिन और रात बराबर जाग कर अग्नि से संघर्षण करना पड़ा जंगल जल जाने के बाद आग दूसरी ओर चली गई तब कहीं शान्ति हुई।

स्वाध्याय तथा अन्य कार्य

नियम पूर्वक, संस्कृत, अँगरेज़ी तथा हिन्दी के ग्रन्थों का स्वाध्याय जारी रहा। विद्यार्थियों की शिक्षा पूर्ववत जारी रक्खी गई। अभ्यास पूरे यत्न से जारी रक्खा गया। गुरुकुल वृन्दावन का कार्य छोड़ने से पहले ही निश्चय कर लिया गया कि मुझे दो वर्ष एकान्तवास करके नव आश्रम परिवर्तन करना चाहिये। वे दो वर्ष अब पूरे हो चुके थे इसलिये आश्रम परिवर्तन का संकल्प मन में उठने लगा।

पच्चीसवां अध्याय

आश्रम परिवर्तन और बृहद्यज्ञ

मैंने हवन आर्य समाज में सम्मिलित होने से पहले ही शुरू किया था और बराबर उसे करता रहा। रेल के सफ़र में भी उस का करना नहीं छूटा। अब आश्रम परिवर्तन करने से वह छूट जाने वाला था। इसलिए निश्चय किया गया कि आश्रम परिवर्तन से पूर्व एक बृहद्यज्ञ समस्त यजुर्वेद से किया जावे। बैशाख शुक्ला ८ सं० १९७९ वै० (४ मई १९२२ ई०) से विधिवत् एक सुन्दर मंडप बनवाकर यज्ञ प्रारम्भ किया गया। मैं यजमान था पं० गौतम स्नातक गुरुकुल वृन्दावन ब्रह्मा बनाये गये, साहू रामस्वरूप मुरादाबाद, म० रामप्रसाद नैनीताल शेष ऋत्विक थे।

ग्राम निवासियों की सहायता

यज्ञ के उपलक्ष में आश्रम की सफ़ाई आदि का काम, ग्राम निवासी नायक भाइयों ने स्वयं किया। मज़दूरों से काम नहीं लेने दिया। इससे पहले कुटि बनते समय भी शहतीरों के दूर से लाने, उसे दीवारों पर चढ़ाने आदि के प्रायः सभी कठिन कार्यों मे उन्होंने सहयोग दिया था। इसके लिये मैं उनका आभारी हूं।

यज्ञ विधिवत् होने लगा। कार्य-क्रम इस प्रकार बनाया गया था कि प्रातः ७ से ९ बजे तक यज्ञ और सायंकाल ४½

से ६ बजे तक उपदेश हुआ करे। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी जो इस अवसर पर पधारे थे। उनके तथा अन्य महानुभावों के नियम पूर्वक उपदेश होते रहे।

एक विघ्न

सामाजिक सुधार में पहाड़ अभी लगभग ५० वर्ष पीछे है। इसीलिये यहां ब्राह्मण अब्राह्मण छूत अछूत पहाड़ी और देशी के झगड़े बराबर चलते रहते हैं। हमारे यज्ञ में भी कुछ थोड़े से उच्च जाति के लोगों ने चाहा था कि इस यज्ञ में शिल्पकार (पहाड़ी अछूत) लोगों को फ़र्श पर न बैठने दिया जावे, परन्तु उन्हें साफ़ उत्तर दे दिया गया कि इस यज्ञ में छूत अछूत किसी प्रकार का भेद-भाव न रक्खा जावेगा। जिसकी इच्छा शरीक होने की हो, शरीक हो, जिसकी न हो न शरीक हों। ऐसा उत्तर मिलने से वह विघ्न शान्त हो गया। यज्ञ में शरीक होने के लिये, राय इन्द्रनारायण साहिब रईस सकीट (एटा) और साहू रामस्वरूप जी रईस मुरादाबाद आदि सज्जन दूर दूर से आये थे। ९ मई तक यज्ञ और व्याख्यान नियम पूर्वक होते रहे। पूर्णाहुति का दिन था, उसी दिन आश्रम भी परिवर्तन करना था। इसलिये ७ मई से ९ मई तक उपवास करके, संस्कार विधि में अंकित ३ दिन के व्रत को पूरा किया गया। यज्ञ शेष के लिये मोहनभोग बनाने का काम, श्रीमान् जुगलकिशोर जी बरेली निवासी की धर्म पत्नी जी ने अपने जिम्मे लिया था। देवीजी बाहर से आये हुये अतिथियों के लिये भोजन बनाने का कष्ट भी बराबर कई दिन तक उठाती रहीं।

संकल्प-विकल्प

९ मई की रात्रि में कईबार यह विचार मन में उठे कि कल मुझे भरी सभा में यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि मैंने तीनों प्रकार की एषणाओं (पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा) का त्याग कर दिया। क्या यह प्रतिज्ञा ठीक रहेगी ? वितेषणा और पुत्रेषणा का तो प्रायः त्याग हो ही चुका है परन्तु क्या लोकेषणा भी छूट सकेगी। यही संकल्प-विकल्प रात में कई बार उठे। एक वार यह भी इरादा हुआ कि अभी कुछ अरसे तक तपस्वी जीवन और रखना चाहिये फिर कभी आश्रम बदल लिया जावेगा। परन्तु तत्काल दूसरा विचार आ गया कि आखिर जब कभी आश्रम बदलेंगे उसी समय फिर भी यही विचार उठेंगे। इसी देवासुर संग्राम में रात का बड़ा भाग व्यतीत होगया और सोने का आनन्द नहीं आने पाया।

पूर्णाहुति और संन्यास ग्रहण

१० मई १९२२ (वैशाख शुक्ला पूर्णमासी सं० १९७९) को जो धन पास था उसके पृथक करने की घोषणा करनी थी। उस समय मेरे पास १५००) नक़द और ५००) के Trust of India कम्पनी के हिस्से (Preference Share) थे। निश्चय यह किया गया कि यह धन आर्य-प्रतिनिधि-सभा संयुक्तप्रान्त को निम्न शर्तों के साथ दे दिया जावे। (१) मूल खर्च न होगा (२) उसका ब्याज दूसरे तीसरे बर्ष, वैदिक धर्म सम्बन्धी अच्छे ग्रन्थ लिखने वाले को, पुरुस्कार के रूप में दिया जाया करे (३) यदि सं० २

में धन व्यय न हो सके तो फिर उससे छोटे छोटे ट्रेक्ट प्रकाशित किये जाया करें। (४) यदि कभी मुझे जरूरत हुई तो वह ब्याज मैं ले सकूंगा और उस दशा में सं० २ और ३ के काम बन्द रक्खे जावेंगे। इसी प्रकार की घोषणा पूर्णाहुति के बाद कर दी गई। पूर्णाहुति हुई और उसके बाद संन्यास ग्रहण किया गया। नारायण स्वामी नाम रक्खा गया। आचार्य का काम श्री स्वामी सर्वदानन्द जी ने किया था। इस प्रकार यज्ञ और आश्रम परिवर्तन के काम समाप्त हुये। बाहर से आये हुये सज्जन अपने अपने स्थानों को चले गये और मैं आश्रम में यथापूर्व अकेला रह गया और अपने नियमित कृत्यों में लग गया।

दो आक्षेप

लाहौर के प्रसिद्ध आर्य नेता म० कृष्ण का कदाचित् विचार यह था कि जिस प्रकार ऋषि दयानन्द के सन्यस्त नाम के अंत में आनन्द और सरस्वती था, इसी प्रकार आर्य समाज के संन्यासी भी अपने नाम रक्खा करें। मुझसे पहले होने वाले संन्यासियों ने प्राय: इसी प्रकार का अपना अमल भी रक्खा था, इससे म० कृष्ण का उपयुक्त विचार और भी दृढ़ होगया प्रतीत होता है। जब मैंने अपना नाम नहीं बदला, किन्तु नाममात्र का उसमें परिवर्तन किया और आनन्द और सरस्वती को अंत में नहीं जोड़ा तो इस पर उन्होंने आक्षेप किया कि मैंने ऐसा क्यों नहीं किया ? मैंने इसका उत्तर

दिया कि वैदिक मर्यादा के अनुसार सन्यस्त ग्रहण करते समय नाम बदलना आवश्यक नहीं इसलिए मैंने नाम न बदलने में कोई गलती नहीं की है। ऋषि दयानन्द ने क्यों बदला था? इसलिये कि वे एक पौराणिक संन्यासी के शिष्य बने थे इसलिये गुरु की पौराणिक प्रथानुसार उन्हें सब कुछ करना पड़ा था परन्तु मैं ऋषि दयानन्द जैसे आदर्श वैदिक सन्यासी का जब शिष्य हूं तो मुझे किसी पौराणिक प्रथा का क्यों अनुसरण करना चाहिये था?

(७) दूसरा आक्षेप महाशय कृष्ण का यह था कि जिस धन को संन्यास ग्रहण करते समय, मैंने यू. पी. सभा को दे दिया, फिर उसमें कभी कभी उसका ब्याज लेने की ममता क्यों रक्खी? महाशय कृष्ण का यह आक्षेप उचित और सर्वथा उचित था इसलिये उसी समय मैंने यू. पी. सभा को भी लिख दिया और समाचार पत्रों में उसकी घोषणा भी करदी कि मैं भविष्य में प्रदानित धन से, कभी जरूरत पड़ने पर भी ब्याज लेने का सम्बन्ध नहीं रक्खूंगा। यह शर्त मैंने क्यों रक्खी थी? इसका एक कारण था जिसे मैं अपनी निर्बलता ही समझता हूँ और वह यह था कि मैंने प्रारम्भ में आचरण करने के लिये जो १० नियम बनाये थे (देखो पाँचवाँ अध्याय) उसमें एक नियम के द्वारा मांगना निषिद्ध ठहराया गया था। इस पर अमल करते करते मेरी हालत यह होगई है कि किसी अज्ञात व्यक्ति से एक तुच्छ से तुच्छ वस्तु मांगना भी मेरे लिए घृणास्पद होगया है।

इसलिए मांगने से बचने के लिए ही थोड़ा सा ममतांश प्रदानित धन में रक्खा गया था परन्तु था वह आदर्श से गिरा हुआ काम, इसलिये छोड़ दिया गया।

नियमित कार्य

२ जून १९२२ ई० से आश्रम में नियमित कार्य करते हुये आत्म प्रबोध या आत्म प्रस्ताव (Selff Suggestion Auto Suggestion) का अभ्यास किया गया और यह अभ्यास सरलता से सिद्ध होगया। ऋषिकेश से प्राप्त तीसरी क्रिया का अभ्यास निरंतर जारी रक्खा गया और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि वर्ष समाप्त होने से दो मास पहले ही से उसकी सिद्धि के आसार प्रकट होने लगे। एक बार इसी बीच में अभ्यास करते हुये ऐसा होगया कि मुझे लगभग एक घंटे तक अपनी सुध बुध नहीं रही और जब चेतना आई तो कहा नहीं जा सकता कि मुझे कितनी अलौकिक और असाधारण प्रसन्नता थी।

छब्बीसवां अध्याय

ऋषिकेश की तीसरी यात्रा

२४ सितम्बर १९२२ को एक वर्ष की अवधी समाप्त होनी थी, और मुझे २५ सितम्बर को ऋषिकेश पहुँच जाना चाहिए था। यह संकल्प दृढ़ कर लिया गया। अभ्यास (तीसरी क्रिया) यद्यपि पूरा हो चुका था परन्तु ऋषिकेश के पहुंचने के समय में अभी दो मास बाकी थे इसलिये यत्न किया गया कि वह क्रिया परिपक्वावस्था को प्राप्त करलें। इसलिये उसका अभ्यास यथा पूर्व जारी रक्खा गया। मैं २३ सितम्बर को ऋषिकेश के लिए रवाना होगया। वर्षा की अधिकता और नदियों के बाढ़ से प्रायः रेलों के रास्ते ख़राब हो रहे थे। काठगोदाम से, काशीपुर होकर मुरादाबाद पहुँचने के लिये मैं चला था परन्तु काशीपुर पहुंच कर मालूम हुआ कि आगे की रेल की सड़क वह गई है इसलिये लौटना पड़ा और लालकुआं से बरेली पहुँच कर वहां से हरद्वार के लिए रवाना हुआ। आगे चल कर प्रकट हुआ कि नजीबाबाद और लहकसर के बीच का गंगा का बालावाली वाला पुल खराब हो गया है। बालावाली स्टेशन से लहकसर कुछेक मील था परन्तु रेलका रास्ता बंद हो चुका था। गंगा के किनारे पहुँचकर एक चतुर मल्लाह से मैंने पूछा कि क्या मुझे नाव द्वारा गंगा के उस पार पहुंचा सकते हो?

उसने कहा कि पहुंचा तो सकता हूं परन्तु दिनभर लगेगा और फिर भी रास्ता भयानक है क्योंकि गंगा का फाट बहुत बढ़ चुका है और पानी वेग से बह रहा है कहीं उछलता है कहीं बैठ जाता है। मैंने कहा जो कुछ भी हो तुम लेचलो, पूरी नाव किराये करली गई और ईश्वर और अपने अत्यन्त अभ्यसित मंत्र का जप करते हुये नाव पर बैठ गया। नाव चल पड़ी और मैंने भी सोच लिया कि—

"हर्गिज बादाबाद मा किश्ती दर आब अंदाख्तेम"

३, ४ बार नाव के डूबने का नावक को आशंका हुई और उसने मुझे सावधान भी किया परन्तु हर बार यह हुआ कि जगत् के रक्षक ने हमारी नाव की रक्षा की और हम आशा और निराशा के मध्य से गुज़रते हुये सायंकाल के लगभग, गंगा के उस किनारे पहुँचे। सुनसान घोर जंगल में उस समय, कहां जाते. इसलिए नावक के आग्रह से, उसी की झोंपड़ी में, रात काटी। सुख की नींद से सोये और प्रातःकाल एक मालगाड़ी में, जो कई रोज़ से मुरादाबाद जाने की प्रतीक्षा में खड़ी थी, जब निश्चय होगया कि वह आगे नहीं जा सकती तब निराश होकर उसे लौटना पड़ा गार्ड की कृपा से, बैठ कर लहकसर और वहाँ से हरद्वार पहुंचे परन्तु मालूम हुआ कि हरद्वार और देहरादून के बीच की भी रेल बन्द है तब वहां भी ख़ुश्की के रास्ते से ऋषिकेश के लिये चला। बीच की पहाड़ी क्षुद्र नदी इतना भयानक रूपधारण कर रही थी कि उसका कुछ कथन नहीं

किया जा सकता। पुल खराब होरहा था। इधर के तांगे इधर और उधर के उधर ही रहजाते थे। नदी को नाव से पार किया जाता था। ऐसा ही करते कराते, मैं २५ की जगह जितनी कठिनतायें रास्ते में आईं, उन्हें दूर करते हुए, २७ को ऋषिकेश पहुंच सका। असबाब काली कमली वाले की धर्मशाला में रख कर, मैंने सबसे पहला काम यही किया कि लक्ष्मण झूले की ओर अपने शिक्षक महात्मा की तलाश में चला। परन्तु चार घंटों की लगातार कोशिश और अनेकों से पूछ-पाछ करने पर भी उनका पता नहीं चला। मैं३ दिन ऋषिकेश ठहरा और तीनों दिन तलाश बराबर जारी रक्खी परन्तु सब निरर्थक सिद्ध हुई। इतना अवश्य पता चला कि ४, ६ दिन हुये जब उन्हें लोगों ने देखा था परन्तु फिर क्या हुआ? इसका किसी को कुछ पता नहीं था। उनके न मिलने पर मुझे निराश होकर ऋषिकेश से लौटना पड़ा।

एक दुर्घटना

ऋषिकेश में जब मैं अपेक्षित महात्मा की खोज कर रहा था तो इस बीच में अनेक योगियों से साक्षात्कार हुआ परन्तु वे सभी हठयोगी थे। मुझे किसी राजयोगी की तलाश थी। एक दिन एक मेरे हठयोगी मित्र ने कहा कि आप थोड़ी देर मेरी कुटी पर ठहरें मैं केवल धोती क्रिया करलूं तब आप के साथ चलकर तलाश में सहायता दूंगा। मैं रजामंद होगया। उसने लंबी कपड़े की चीर को मुँह के रास्ते से शरीर में पहुंचा दिया और जब वह उसे निकालने लगा तो शायद किसी असावधानी या कपड़े

के सड़े और कमजोर होने से, वह टूट गया। कुछ कपड़ा इस प्रकार उसके शरीर ही में रह गया। ऐसी अवस्थाओं में जो क्रियायें कपड़े के निकालने के लिए की जाया करती हैं उन सब को जब उसने कर लिया और उसका कुछ फल न निकला तब उसकी बेचैनी बढ़ने लगी और मुझे भी बड़ी चिन्ता हुई कि किस प्रकार इसे बचाया जावे। उस समय पंजाब सिंध क्षेत्र की धर्मशाला से मैं एक डाक्टर को ले गया और उसे दिखलाया उन्होंने नमक का पानी बहु मात्रा में, उसे पिलाकर क़ै कराई परन्तु वह कपड़ा न निकला, उसकी हालत बद से बदतर होगई। मैंने उसे देहरादून जाने की सलाह दी परन्तु उसने उसे नहीं माना और तीसरे दिन बड़े कष्ट से उसकी मृत्यु हो गई। जब से हटयोग को, इस प्रकार को क्रियाओं का मैं बड़े भय की दृष्टि से देखने लगा।

आश्रम में लौटकर पहुँचना

निराश होकर आश्रम पर पहुँचने के बाद, मैंने निश्चय किया कि किये हुये अभ्यास को दुहराया जाय और आगे के लिये, आगे बताने वालों की तलाश जारी रक्खी जावे। इस प्रकार यह तथा अन्य नियमित कार्य, यथा पूर्व करने लगा।

देहली में ऋषि दयानन्द की जन्मशताब्दी मनाने पर विचार

जुलाई १९२२ ई० में, देहली के पाटोदी हाउस में एक सभा स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से, सार्वदेशिक सभा और परोपकारिणी सभा की ओर से बुलाई गई कि ऋषि दयानन्द

की जन्म शताब्दी मनानी चाहिये या क्या? इस बात पर विचार किया जावे। स्वामी जी के आग्रह से इस सभा में मैं भी शरीक हुआ था। सभा ने बहुत वादानुवाद के बाद जन्म शताब्दी मनाना मथुरा में निश्चय कर दिया और एक उप सभा शताब्दी सभा का संगठन करने के लिये बनादी। उस उपसभा का मैं भी एक सभासद बनाया गया।

डेरा इसमाईलखां से सम्बन्धित एक घटना

मैं अमृतसर विरजानन्द विद्यालय के उत्सव में गया था, जिसे स्वामी सर्वदानन्द जी के परामर्श से पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आदि सज्जनों ने खोला था। उत्सव के समय एक शास्त्री महोदय, जो मुजफ्फरगढ़ जिले के रहने वाले थे आये और इसरार किया कि मैं तथा स्वामी सर्वदानन्द आ० स० डेरा इसमाईलखां के उत्सव में शरीक़ हों। हम दोनों ने एक-एक दिन-के लिये उत्सव में शरीक़ होना स्वीकार कर लिया। मैं अमृतसर के एक पुस्तक विक्रेता सज्जन, और शास्त्री महोदय तीनों डेरा इसमाईलखां के लिये चल दिये। दूसरे दिन प्रातःकाल हम सब दरयाख़ां "स्टेशन पर पहुँचे जहां से पुल द्वारा सिन्ध नदी को पार करके मोटरें डेरा इसमाईलखां को जाया करती थीं। पता चला कि नावों का पुल जो सिन्ध को पार करने के लिये बनाया गया था टूट गया है इसलिये मोटरों का जाना बन्द हो गया था। स्वामी सर्वदानन्द जी, हम से पहले इसी कारण वहां से लौट गये थे। प्रतिज्ञा करने के बाद किसी जगह न

पहुँचना, मेरे लिये बुरे से बुरा काम था इसलिये हम तीनों आदमियों ने अपना अपना सामान दरयाखां छोड़ा और नदी के टूटे पुल पर आकर इसलिये खड़े हुये कि सोचें किस तरह डेरा इसमाईलखां पहुँच सकते हैं। कुछ ग्रामीण आदमियों को पानी में जाते हुये देखकर, मैंने अपने साथियों से कहा कि जब ये जा सकते हैं तो हम क्यों नहीं जा सकते? इसलिये निश्चय कर लिया गया कि पैदल नदी में होकर चलना चाहिये। हम नदी के एक भाग का पूरा करके, खुश्क भूमि में होकर चले। डेरा इसमाईलखां वहां से १५ मील था। कहीं पानी में चलना पड़ा, कहीं सूखी भूमि में। दो जगह की घटना उल्लेख करने के योग्य है। (१) ७-८ मील चलने के बाद फिर पानी आया। मैं अपनी लाठी से पानी की गहराई का अन्दाजा करके पानी में घुसा करता था और बाक़ी साथी मेरे पीछे पीछे चले आया करते थे। वह पानी छः सात फ़ीट ही चौड़ा था, परन्तु लाठी जो ६ फ़ीट के क़रीब लम्बी थी सब डूब गई परन्तु पानी का थाह नहीं मिला। टटोलते टटोलते पता चला कि ५ फ़ीट चौड़ा पानी ऐसा है जिसकी थाह नहीं आगे दो तीन फ़ीट से अधिक गहरा नहीं था। अब क्या करना चाहिये? यह विचारणीय बात होगई। पानी को छलांग मारते हुये यदि गहरे पानी में पाँव पड़ गया तो पता भी नहीं नीचे कहाँ पहुंचेंगे? अंत में निश्चय यही हुआ कि पानी को कूद करके पार करना चाहिये। मैंने ऐसा ही किया और ईश्वर के अनुग्रह से उस गहरे पानी को पार कर गया। मेरे साथी भी इसी प्रकार पार होगये।

(२) दूसरी जगह ठीक डेरा इसमाईलखां के किनारे थी। यह पानी लगभग १५० फ़ीट चौड़ा था और कहीं कहीं आदमी के डुबाने के लिये काफ़ी था। लाठी के सहारे पानी की थाह लेते हुए, कभी इधर जाते कभी उधर इस प्रकार एक घन्टे में, उस पानी को पार करके हम लोग सही-सलामत डेरा इसमाईलखां के आर्य समाज मन्दिर में पहुँच गये। बारह बजे दोपहर का समय हो चुका था। डेरे के भाई बड़े प्रेम से मिले और हमारी मुसीबत का हाल शास्त्री जी से सुनकर बड़े प्रेम से कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित करते हुये कोई हाथ दाबने लगा कोई पांव। लौटते हुये हमें ऐसी कठिनता नहीं उठानी पड़ी। तब एक स्टीमर चलने लगा था, उसी के द्वारा हम दरयाखां वापिस पहुंच गये। यद्यपि इस यात्रा में अधिक से अधिक कष्ट भोगना और खतरों का सामना करना पड़ा परन्तु फिर भी प्रसन्नता इस बात की रही कि प्रतिज्ञा की हुई अपूर्ण नहीं रहने पाई।

सत्ताईसवां अध्याय

सार्वदेशिक और शताब्दी सभा

दिसम्बर १६२३ ई० में देहली में शताब्दी सभा की एक बैठक इसलिये बुलाई गई थी कि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्रशंसित सभा के प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया था। स्वामी जी से सभा में पूछने पर प्रकट हुआ कि उन्हें इस कार्य में सफलता होने की इसलिये आशा नहीं है क्यों कि बहुत लोग साधारण-तया काम का और विशेष कर उनका विरोध इसलिये करते हैं कि यह काम उनके आधीन क्यों है? पंजाब में एक पार्टी ऐसी थी कि जिसकी स्वामी जी से सदैव अनबन रहा करती थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी का संकेत कदाचित् उसी पार्टी से था। उनके आग्रह पर कि वे किसी प्रकार से भी प्रधान नहीं रहना चाहते, सभा ने उनका त्याग पत्र स्वीकार कर लिया। अब इस काम को कौन संभाले इस पर विचार हुआ तो सभी उपस्थित सभा के सदस्यों और विशेष कर पंजाब के सभासदों के, असाधारण आग्रह से, मुझे यह काम अपने ज़िम्मे लेना पड़ा और सभा ने सर्व सम्मति से मुझे प्रधान बना दिया। इस प्रकार का निश्चय होने पर, मेरे इसरार से, स्वामी श्रद्धानन्द ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि उनका नाम प्रधान पद पर नाम मात्र के लिए रक्खा जावे और मैं कार्यकर्ता प्रधान

(President Incharge) के तौर पर समस्त कार्यभार अपने जिम्मे रक्खूं। स्वामी श्रद्धानन्द के इसरार से, मैंने इस बात को भरी सभा में स्पष्ट कर दिया कि मैं उन्हें शताब्दी सम्बन्धी किसी कार्य के भी करने को उनसे न कहूंगा। छोटे से छोटे और बड़े से बड़े समस्त कार्यों को स्वयं करूंगा अथवा अपने अन्य सहायकों से कराऊँगा। श्री स्वामी श्रद्धानन्द ने, उसी समय, एक रजिस्टर जो उन्होंने शताब्दी सभा के सम्बन्ध में बना रक्खा था मुझे दिया और बतलाया कि चार रुपये दस आने उनके निज के, इस काम में (शताब्दी सभा पर ऋण के तौर पर) खर्च हो चुके हैं उन्हें जब धन हो यह दे दिये जावें या न भी दिये जावें तो भी वे न मांगेंगे। जुलाई १९२२ ई० से सितम्बर २३ तक अर्थात् सवा वर्ष के भीतर शताब्दी सभा का यह काम हुआ था जो मुझे चार्ज में मिला था। दो सप्ताह के अन्दर ही ४॥=) स्वामीजी को वापिस करके, शताब्दी सभा को ऋण से मुक्त कर दिया गया।

(२) इस कार्य के होजाने पर सार्वदेशिक सभा की वार्षिक बैठक हुई। स्वामी श्रद्धानन्द जी कई वर्ष से उसके भी प्रधान थे; परन्तु अब उन्होंने प्रधान रहने से क़तई इन्कार कर दिया था। उसके दो कारण उन्होंने, उस समय प्रकट किये थे।—(१) आर्य जनता इस सभा की जरूरत नहीं समझती (२) प्रान्तिक सभायें न पंचमांश देती हैं न अन्य प्रकार से आर्थिक सहायता करती हैं। उसका उन्होंने एक उदाहरण दिया कि सभा

की ओर से गिनती का एक उपदेशक, उन्होंने मदरास में अछूतों में काम करने के लिए रक्खा था, परन्तु उसके वेतन के लिये भी धन एकत्र न हो सका, इसलिये सार्वदेशिक सभा ने निश्चय कर दिया है कि वह उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आधीन कर दिया जावे कि वही उससे काम ले और वही उसका वेतन दे।

इस कार्यभार को भी सार्व० सभा के उपस्थित सदस्यों के इसरार से मुझे अपने ज़िम्मे लेना पड़ा।

सार्वदेशिक सभा सम्बन्धी पहला काम

सार्व० सभा के सम्बन्ध में उसका चार्ज ले लेने पर निश्चय किया गया कि मदरास वाला उपदेशक इसी सभा के आधीन रक्खा जावे। इसके लिये संयुक्त प्रान्त के कुछेक आर्य समाजों और कुछेक व्यक्तियों को पत्र लिखकर ५०), ५०) उनसे मंगाकर १०००) एकत्र करके प्रबंध कर दिया गया कि जिससे वह उपदेशक यथापूर्व सार्वदेशिक सभा के आधीन काम करे, जिससे सभा का कम से कम नाम तो बाकी रहे। यह बात विशेष रीति से विचार कोटि में रक्खी गई कि किस प्रकार यह सभा उन्नतावस्था में लाई जा सकती है।

साहित्य-संबन्धी कार्य

आत्म-दर्शन पांचवां ग्रन्थ था जो लिखा जाकर प्रकाशित होचुका है। इस बीच में दो छोटे छोटे पुस्तक एक वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में और दूसरा मिलाप नामक पुस्तक शूद्रों के कर्त्तव्य

और अधिकार के सम्बन्ध में था, लिखे गये। पहले पुस्तक को आर्य समाज आगरा और दूसरे को आ० स० पीलीभीत ने प्रकाशित किया। मथुरा शताब्दी के अवसर पर प्रारंभ में एक "आर्य स्मृति" बनवाने का काम मैंने अपने जिम्मे लिया था उसका ढांचा कुछ तय्यार भी हुआ था परन्तु शताब्दी का समस्त कार्य भार ऊपर आजाने से वह पूरा न हो सका।

अट्ठाईसवां अध्याय

दयानन्द जन्म शताब्दी मथुरा

मथुरा शताब्दी का कार्य भार लेने से अनेक चिन्ताओं ने आकर घेर लिया कि किस प्रकार शताब्दी महोत्सव सफल बनाया जा सकता है। आर्य समाज के इतिहास में यह उत्सव अपने प्रकार का पहला था, इसलिये इसकी सफलता के लिए आवश्यक था कि भरसक पूरा पूरा यत्न किया जावे। सन् १६२३ ई० के अंत में इस कार्य्य को मैंने अपने ज़िम्मे लिया था। उसी समय से काम चलाने के लिये कुछ धन एकत्र करने का यत्न प्रारंभ किया गया। क्योंकि चार्ज में काम करने के लिये कुछ धन मिलने की जगह, मिला था ४॥=) का ऋण चुकाना। प्रसन्नता की बात है कि धन के लिये जो अपील की गई थी उसका अच्छा और सन्तोषजनक उत्तर मिलना प्रारंभ हुआ। राजाधिराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश ने ५०००) देने का वचन दिया और भी आर्य्य समाजों और संपन्न आर्य्यों ने जी खोलकर सहायता देनी शुरू की। मथुरा में उत्सव होना था। मथुरा जंकशन स्टेशन के क़रीब विस्तृत भूमि उत्सव मंडप बनाने और आर्यनगर बसाने के लिए ली गई। इन सब कामों के लिए मथुरा रहना आवश्यक था। इसलिये सन् १६२३ ई० के अंत से गुरुकुल वृन्दावन को शताब्दी सभा का हेड क्वार्टर बनाया

गया और वहीं से आवश्यक पत्रिकायें जारी की गई। मुझे इस बात के प्रकट करने में, बड़ी प्रसन्नता होती है कि आर्य समाज से बाहर की दुनिया ने भी, उत्सव की सफलता में पूरा पूरा योग दिया।

(१) गवर्नमेंन्ट आव इन्डिया ने उत्सव में शरीक होने वाले राज कर्म-चारियों को एक एक सप्ताह की छुट्टी दे देने का वचन दिया। इसी प्रकार समस्त प्रान्तिक सरकारों और देशी रजवाड़ों ने भी, उत्सव में शरीक होने वालों को छुट्टी (Holiday) देना स्वीकार किया।

(२) रेलों ने स्पेशल ट्रेनों के चलाने का उदारता के साथ प्रबन्ध किया।

(३) छोटी रेल वालों ने शताब्दी केम्प के निकट ट्रेनों के खड़ी करने का प्रबन्ध कर दिया।

(४) मथुरा निवासी नागरिकों और विशेष कर वहां के चतुर्वेदी (चौबे) महानुभावों ने नगर कीर्तन में लोगों को अपने अपने हाथों से जल पिलाने, अपनी अपनी भूमि शताब्दी सभा को देने तथा अन्य सभी प्रकार की सहायता जो वे दे सकते थे उसके देने में ज़रा भी संकोच नहीं किया।

(५) पोस्ट आफिस विभाग ने प्रथम श्रेणी का डाक ख़ाना और तार घर आर्य नगर में खोल दिया।

(६) जिले के सरकारी अधिकारियों, कर्म चारियों और पुलिस का पूरा पूरा सहयोग हमें प्राप्त था।

(७) मथुरा के म्यूनिसिपल बोर्ड ने रोशनी और पानी मुफ़्त देने का प्रबन्ध कर दिया।

उत्सव का समय

शताब्दी उत्सव मेला १५ से २१ फ़रवरी १६२५ तक होने वाला था परन्तु फ़रवरी के प्रारम्भ होने से पहले ही से दूर दूर से लोगों का आना शुरू होगया था।

शताब्दी के लिये आर्य जनता में उत्साह

शताब्दी के कार्यालय का चार्ज रखने मेले का स्थानिक प्रबन्ध करने के सिवा बाहर भी अनेक जगह जाना पड़ता था। जहाँ जाता था शताब्दी के लिये वहां की आर्य जनता में अपूर्व उत्साह देखकर चित्त प्रसन्न हो उठता था। आर्य समाज लाहौर के उत्सव में शरीक होकर मैंने देखा कि वहां की दोनों पार्टियों (गुरुकुल और कौलिज) ने ४ दिन तक अपने अपने उत्सव इकट्ठे मनाये थे। आर्य समाज शिमला के उत्सव में शरीक होने से, इसलिये बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहां के कतिपय प्रतिष्ठित पुरुष शताब्दी के लिए बड़ी लगन से काम करते थे। राय साहिब गंगाराम जिनमें मुख्य थे। इसी प्रकार कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ, आगरा, अजमेर, काशो और प्रयाग सभी जगह उत्साह ही उत्साह दिखलाई देता था।

शताब्दी के मेले का प्रबन्ध और शताब्दी मेला

शताब्दी के मेले के केम्प प्रान्त वार बनाये गये थे। देश से बाहर के लोगों के लिये पृथक् पृथक् केम्प थे। उत्सव में

जापान, चीन, ब्रह्मा, एफ़्रीका, मौरिशस, मेडिगास्कर, वैस्टैन्डीज़, जावा, सुमात्रा, फिलिपायन और अमरीका के लोग भी शरीक़ हुये थे। केम्प का प्रबन्ध प्रान्त वार था और सब का मुख्य प्रबन्धकर्ता एक था। स्वयं सेवक बहु संख्या में बरदी के साथ प्रत्येक प्रबन्ध कर्ता के आधीन प्रत्येक केम्प में पृथक् पृथक् नियुक्त थे। बाज़ार में लगभग ५०० दूकानें प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं की थी। मंडप अत्यन्त विस्तृत था। मेले की सफ़ाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। स्त्रियां शायद इतनी स्वतंत्रता के साथ बेखटके किसी भी मेले में नहीं घूम सकती थीं जितनी स्वतन्त्रता उन्हें इस मेले में थी। बच्चा अथवा स्त्री अपने केम्प से पृथक् होजाने अथवा रास्ता भूल जाने पर स्वयं सेवकों तथा आर्यनगर निवासियों द्वारा, तत्काल अपने अपने केम्प में पहुंचा दी जाया करती थीं। मेले में कितने लोग शरीक़ हुये थे इसका अन्दाज़ा केवल रेलों के टिकटों से किया जा सकता है। बड़ी लाइन के स्टेशन (मथुरा जंकशन) में एक लाख तिरानवे हज़ार (१९३०००) और छोटी लाइन के स्टेशन पर ६१००० टिकट मेले के यात्रियों से संग्रह किये गये थे। रेल के सिवा जो यात्री मोटर लारियों इक्कों और तांगों पर आये थे उनकी संख्या इससे पृथक् है। ग्राम के बहुत से लोग, अपनी अपनी बैल-गाड़ियों पर आये थे, और उनकी इतनी अधिक संख्या थी कि उनका एक गाड़ी केम्प यू० पी० केम्प के सामने पृथक् बनाना पड़ा था। बहुत से यात्री साधारण मुसाफ़िरों की तरह आकर

शहर में ठहरे थे। बहुत से निकट के रहने वाले पैदल आये थे। इन सब का तख़मीना बहुत संकोच के साथ किया जावे तो ५० सहस्र से कम न होगा। इस प्रकार २ लाख चौअन हज़ार रेलों द्वारा और ५०००० ये, कुल ३ लाख से कुछ अधिक यात्री होते हैं जो बाहर से आकर मेले में शरीक हुए थे। शहर के शरीक़ होने वाले इससे पृथक हैं।

इतना बड़ा धार्मिक मेला, विशेषज्ञों का कहना था कि हज़ारों वर्षों के बाद हुआ है। शायद महाराजा अशोक के काल में इतने बड़े धार्मिक मेले हुये हों तो हुये हों।

उत्सव में पुलिस का कोई प्रबन्ध नहीं था। सारा उत्सव और मेले का प्रबन्ध आर्य वीरों के हाथ में था; परन्तु इतना उत्तम कि किसी का कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। न कहीं चोरी की वारदात, न ठगी की, न किसी की गांठ काटी गई न और प्रकार से किसी को ठगा गया।

भोजन का पर्याप्त और अधिक से अधिक अच्छा प्रबन्ध था। छूत अछूत किसी प्रकार का भेद भाव न था। इतना बड़ा मेला केवल शिक्षितों का था। कोई मैला कपड़ा पहने हुये कहीं भी दिखाई नहीं दे सकता था।

उत्सव की एक मुख्यता

प्रत्येक यात्री अनुशासन (डिसिप्लिन) में था जो नियम जहां के थे उनका पूरा पूरा पालन किया जाता था।

एक उदाहरण

बाज़ार में एक नियम रक्खा गया था कि कोई नशे की चीज़ जिसमें खाने पीने और सूंघने का तमाकू भी शामिल था, सारे केम्प में कहीं न बेचा जावे। मेले के दिनों ही की बात है कि प्रयाग हाईकोर्ट के एक वकील की समझ में यह बात नहीं आई कि क्या यह सम्भव है कि इतने बड़े मेले में सिग्रेट न पिया और न बेचा जाता हो? इस बात की जांच के लिये वे खुद बाज़ार में गये और एक पान वाले की दूकान पर जाकर उन्होंने सिग्रेट मांगा उसने मने कर दिया। वकील साहिब के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि एक सिग्रेट का १) देने पर भी, उन्हें सिग्रेट नहीं मिल सका।

पुलिस की सहायता

हमने पुलिस की सहायता इस तरह से ली कि पुलिस के उच्च कर्मचारियों को सलाह देकर, जो जो रास्ते मेले की ओर आते थे, उन सब पर दिन रात, पुलिस के पहरे का प्रबन्ध करा दिया गया कि वे किसी गुंडे को मेले की ओर न आने देवें। पुलिस के इस प्रबन्ध के करा लेने का फल यह हुआ कि गुंडों से मेला पाक़ साफ रहा और किसी प्रकार की दुर्घटना न हो सकी। केम्प में तो यह समझा जाता रहा कि पुलिस का कुछ प्रबन्ध नहीं है परन्तु हमने इस प्रकार पुलिस की सहायता ली कि जो हमारे उत्सव के प्रबन्ध में बड़ी भारी सहायता देने वाली सिद्ध हुई।

मंडप का प्रबन्ध

मंडप का भी एक बहुत बड़ा अहाता था जिस में शताब्दी के समस्त कार्यालय और डाक तथा तार के भी दफ़तर थे। इसी अहाते में हम लोगों के निवास-स्थान थे। एक छोटा सा कोठा जो कठिनता से ८ फ़ीट लम्बा और ६ फ़ीट चौड़ा था इस में, मुझे ६ मास व्यतीत करने पड़े थे। नीचे की उसकी मंजिल में दूसरे कार्यकर्ता रहते थे। लाउड स्पीकर आदि उस समय नहीं चले थे इसलिये व्याख्याताओं के लिये बड़ी ऊँची जगह बनाई गई थी परन्तु वह भी नाकाफ़ी सिद्ध हुई तब मजबूरन उस ऊँचाई पर रक्खी हुई मेज़ पर खड़े होकर व्याख्याताओं ने व्याख्यान दिये।

नगर कीर्तन

श्री मद्दयानन्द सरस्वती ने जिस कुटी में श्री विरजानन्द जी से शिक्षा पाई थी उसे देखने के लिये शताब्दी केम्प से प्रायः सभी नरनारी १६-२-२५ को गये थे। उनके इस पर नियमबद्ध होकर जाने से नगर-कीर्तन की सूरत बन गई थी। इतना विशाल नगर कीतन आर्य समाज के इतिहास में "नभूतो नभविष्यति" की कहावत चरितार्थ करने वाला था। नगर कीर्तन के दोनों किनारे सायं काल के समय शताब्दी नगर में थे। जाने वालों का तांता जो बँधा था वह समाप्त होने ही में नहीं आता था। यहाँ तक कि सब से पहली सफ़वाले नगर कीर्तन को समाप्त कर के जब केम्प में लौट आये थे तब भी नगर कीर्तन में जाने

वालों का तांता टूटा नहीं था। सभी तरह से यह महोत्सव अभूतपूर्व था।

एक दुर्घटना

नगर कीर्तन करना पहले से निश्चित नहीं था, १८ ता॰ की सायंकाल उसका करना निश्चय हुआ था। स्वामी श्रद्धानन्द जी वहां नहीं थे मैंने डाक्टर केशवदेव शास्त्री मन्त्री सार्वदेशिक सभा से कह दिया था कि वे स्वयं जाकर स्वामी जी को इसकी सूचना दे देवें। पुलिस के अध्यक्ष और जिलाधीश के पास मैंने पत्र भेज दिये थे। उनके उत्तर भी आवश्यक प्रबन्ध कर देने के सम्बन्ध में आचुके थे। कदाचित् डाक्टर केशवदेव स्वामी श्रद्धानन्द से कहना भूल गये या पता नहीं क्या हुआ कि १९ ता॰ को प्रातःकाल ही जब मैं पिंडाल से अपने निवास स्थान पर जा रहा था तो कार्यालय के कमरे में स्वामी श्रद्धानन्द जी मुझे मिले। वे उस समय बड़े आवेश में थे। उन्होंने वैसे ही स्वर में मुझ से कहा कि "नगर कीर्तन के सम्बन्ध में मुझे खबर भी नहीं दी गई। क्या इसका यह मतलब है कि मेरा कुछ उत्तर दायित्व नहीं है?" मैं चूंकि उन्हें खबर देने के लिये कह चुका था इसलिये उनका इस प्रकार खराब लहजे में अप्रसन्नता प्रकट करना मुझे अच्छा नहीं मालूम हुआ इसलिये मैंने जो उत्तर दिया उसका भी लहजा अच्छा नहीं था जिसका मुझे पीछे से बड़ा अफ़सोस हुआ। मेरा उत्तर यह था कि "मैंने आपके खबर देने को डाक्टर केशवदेव से कह दिया था यदि उन्होंने

इतला नहीं दी तो यह उनकी ग़लती है। रही उत्तरदायित्व की बात वह तो उसी दिन समाप्त हो चुकी थी जब आपने प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया था। जब अब तक के किसी काम में आपका उत्तरदायित्व कुछ नहीं था तो इस में भी आपका कुछ उत्तरदायित्व नहीं है, ऐसा ही आप समझें।" इस उत्तर से स्वामी जी कुछ और भी असन्तुष्ट होकर चले गये। मैं अपने निवास स्थान को, जहाँ जा रहा था, चला गया।

स्वामी श्रद्धानन्द की सरलता

नगर कीर्तन २ बजे दिन से शुरू होना था। इसी सम्बन्ध में कुछ सलाह करने के लिये म० हंसराज जी मेरे पास आये। मैं उनसे बात करने लगा। इसी बीच में स्वामी श्रद्धानन्द जी आ गये। उन्हें बहुत आदर से मैंने बिठलाया। उन्होंने आते ही पूछा कि नगर कीर्तन का क्या प्रबन्ध हुआ? मैंने उन्हें सब बातें बतलाईं और कहा कि इसी सम्बन्ध में बातचीत हो रही है कि सब से आगे की सफ़ किस प्रकार रहे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कहा कि पहले ओ३म् का झंडा उसके बाद बैंड बाजा उसके बाद आगे मैं हो जाऊँगा और फिर और सन्यासीगण हो जावेंगे। बाक़ी प्रबन्ध सब ठीक है। मैं चूँकि उन्हें कुछ अप्रसन्न कर चुका था इसलिये उन्हें प्रसन्न करने के लिये मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली और वैसा ही प्रबन्ध होकर नगर कीर्तन बड़ी शान्ति और सफलता के साथ समाप्त होगया।

देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर प्रचार के लिये अपील

विचार करने से निश्चय होगया कि सार्वदेशिक सभा न काम की सभा बन सकती है न उसका वह नाम हो सकता है जिसकी वह अधिकारिणी है, जब तक उसके पास कुछ धन न होजावे। धन एकत्र कर लेने का सुनहरी अवसर शताब्दी महोत्सव था। दोनों काम मेरे आधीन थे इसीलिये शताब्दी सभा से प्रार्थना की गई कि वह अपने महोत्सव में, सार्वदेशिक सभा के लिये, देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर प्रचारार्थ, धनकी अपील करने की अनुमति दे, प्रशंसित सभा ने यह प्रार्थना स्वीकार करली। अपील करने पर एक लाख से कुछ अधिक धन एकत्र होगया। काम की अधिकता के कारण अवकाश नहीं मिला अन्यथा और भी अधिक धन एकत्र हो सकता था। काम की अधिकता के कारण मेरी क्या अवस्था थी, इसका अन्दाजा. निम्नांकित एक उदाहरण से किया जा सकता है।

एक उदाहरण

१५ फरवरी १९२५ ई० से शताब्दी महोत्सव प्रारंभ होना था। १४ फरवरी को प्रातः काल ही से दर्शकों की असाधारण भीड़ शुरू होनी प्रारंभ होगई। कोई अपनी संस्था के लिये विशेष स्थान चाहते थे, कोई प्रोग्राम में भाग लेने के इच्छुक थे, कोई कुछ खेल-तमाशा दिखलाना चाहते थे इत्यादि प्रायः सभी, बात करने के इच्छुकों से, दो-दो तीन-तीन मिनट से अधिक बात मैंने किसी से नहीं की परन्तु; इसी में प्रातः काल से लेकर रात के

दस बज गये तब कहीं जाकर इतमीनान का श्वास लेने का अवसर प्राप्तः हुआ और उस समय मुझे पता चला कि आज दिन में, मैंने भोजन भी नहीं किया। ऐसी हालत में कहां अवकाश था कि किसीसे धन देने की बात कही जा सकती। जो कुछ धन एकत्र होगया मुख्यतया उसके दो कारण थेः—(१) एक तो यात्रियों ने स्वयमेव कुछ न कुछ धन दिया क्योंकि उनका विचार था कि तीर्थ पर जाकर कुछ दान अवश्य करना चाहिये।

(२) दूसरा कारण स्वर्ग वासी श्री विद्याधर जी (ला० ज्ञानचन्द्र जी ठेकेदार देहली के सुपुत्र) तथा बाबा मिलखासिंह जी ठेकेदार देहली का असाधारण प्रयत्न था जो उन्होंने अपील के नोटों के बेचने में किया था। इस धन के एकत्र करने में कुछ बाधायें भी उपस्थित हुई थीं।

(१) पंजाब की आर्य प्रति निधि सभा के संचालक अपने उपदेशक विद्यालय के लिये धन एकत्र कर रहे थे और उनमें से अनेकों ने शताब्दी की अपील में धन देने का विरोध किया। (२) पंजाव की आर्य प्रादेशिक सभा ने इस अपील में इसलिये सहयोग नहीं दिया कि वे सार्वदेशिक सभा के संगठन में लिये नहीं गये थे।

इन सब बाधाओं के होते हुये जो धन एकत्र होगया उसे गनीमत समझा गया और इसलिये भी उसे गनीमत समझा गया कि कम से कम, वह सार्वदेशिक सभा की स्थिति बनाने के लिये काफी था। इतना धन एकत्र होने के बाद सार्वदेशिक सभा की स्थिति सँभलनी शुरू होगई।

सार्वदेशिक सभा की स्थिति मेरे प्रधान बनने से पहले कैसी थी ?

इससे पहले जब तक सार्व० सभा का कार्य मैंने अपने हाथ में नहीं लिया था, सभा की स्थिति कैसी थी उसका अनुमान एक लेख से हो सकेगा जिसे स्वामी श्रद्धानन्द जी ने, सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन प्रधान की हैसियत से लाहौर के प्रसिद्ध अखबार 'प्रकाश' में छपवाया था। वह लेख इस प्रकार है:—

"सार्वदेशिक सभा की डांवा डोल"

"अवस्था"

कुछ अरसा हुआ मैंने 'प्रकाश' के द्वारा सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत मद्रास प्रचार निधि के लिये अपील की थी। इसके साथ ही सभा के सभासदों से नियम धारा (२२) के अनुसार सम्मति मांगी थी। नियम धारा २२ (क) इस प्रकार है :—

"नियम सं० २२ में दिये हुए कार्यों के अतिरिक्त यदि कोई अन्य कार्य उपस्थित हो तो प्रधान सभा को पत्र द्वारा सभासदों की सम्मति लेकर और एक तिहाई सम्मति आने पर बहु पक्षा-नुसार निश्चय करने का अधिकार होगा।"

सभा के सभासदों की सं० २२ है। इनमें से यदि आठ सभासदों की सम्मति आजाती तो बहु पक्षानुसार मैं निश्चित कर सकता। परन्तु केवल चार सज्जनों ने ही अपनी सम्मति भेजी है। पं० गंगाप्रसाद एम. ए. ने लिखा है "मद्रास प्रचार

का काम बंद करना उचित नहीं। सार्वदेशिक सभा के हाथ में इस समय यही कार्य है। मुझे आशा नहीं कि कोई प्रतिनिधि सभा ३५०) मासिक का बोझ अपने ज़िम्मे लेवे। यदि आप २००) प्रति सभासद लेना चाहें तो मुझको स्वीकार है। जून के अंत में या जौलाई के आरंभ तक भेज सकता हूं।" मैंने लिख दिया कि कृपा करके २००) उचित समय तक भेज देवें। शिमले वाले लाला गंगाराम जी ने लिखा कि वे भी २००) जमा करके भेज देवेंगे। म० कृष्ण बी. ए. ने अपने "प्रकाश" में सम्मति दी कि "धन के लिए अपील होनी चाहिए। यदि अपील पर धन एकत्रित न हो तो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, यह बोझ उठाने को उद्यत होगी।" सभा के कोषाध्यक्ष ला० नारायण दत्तजी ने सम्मति दी कि "किसी प्रान्तिक प्रति निधि सभा के आधीन ही यह कार्य कर देना चाहिये।" मैं कुछ भी निश्चित नहीं कर सकता। चैत्र सं० १९७९ के अंत तक के लिये ४०००) की आवश्यकता है। ११ मई को जब मैं देहली से चला था उस समय तक सिवाय ५०) के जो, जालंधर के ला० वृन्दावन ने, मेरे द्वारा भेजे थे एक पाई भी इस निधि में सभा के कोषाध्यक्ष को प्राप्त नही हुई थी। इस समय फिर मैं अधिक बीमार हो चुका हूँ और आगामि अक्टूबर के अंत तक बाहर जाने और परिश्रम करने का कोई कार्य मैं नहीं कर सकता। कोषाध्यक्ष जी को आज्ञा भेज दी है कि जो थोड़ा बहुत अन्य निधि द्वारा धन सभा के पास है उसी में से काम चलावें। सभा का अधिवेशन इस

उद्देश्य के लिए बुलाना व्यर्थ है क्योंकि जो सभासद घर बैठे सम्मति नहीं भेज सकते वे देहली आने का कष्ट क्यों उठावेंगे। चैत्र सं० १९७९ के अन्त तक मैं प्रधान हूं, इसके पीछे सभा से कोई संम्बन्ध नहीं रख सकता। यदि सभा के कोष में धन न रहा तो अक्टोबर तक ऋण लेकर काम चलाऊँगा और जाड़ों में भीख मांग कर ऋण उतार दूंगा। यदि कोई योग्य परिश्रमी सभासद इस समय भी प्रधान पद ग्रहण करने को तय्यार हों तो मुझे निजू पत्र भेज देवें। मै त्याग पत्र भेजकर काम उन्हें सौंप सकता हूं। कारण यह कि शायद मेरे सबब ही से मद्रास पचार को सहायता न मिलती हो। अन्त में आर्य समाजों और आर्य पुरुषों से पुनः निवेदन है कि मद्रास प्रचार जारी रखने का अवश्य प्रयत्न करें।"

श्रद्धानन्द प्रधान सार्वदेशिक सभा,
(देखो प्रकाश ८ जेठ संवत् १९७९ वि०)

शताब्दी महोत्सव की समाप्ति

अन्तिम प्रार्थना के साथ सायंकाल को महोत्सव समाप्त होना था। उससे पहले दिन की बैठक में, उपस्थित गण्यमान्य आर्य नेताओं ने, मुझे बाधित किया कि आर्य जनता की इच्छानुसार मैं उन की ओर से अभिनन्दन पत्र लेना स्वीकार करूं; तदनुसार किया गया। उस समय पिंडाल खचाखच भरा हुआ था। अभिनन्दन पत्र श्री राजाधिराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश ने पढ़ा था। जो वाक्य वे पढ़ते थे प्रिंसिपल दीवानचन्द जी कानपुर

उसको उच्च स्वर से दुहराते जाते थे। अभिनन्दन पत्र इस प्रकार था:—

श्री मद्दयानन्द जन्म शताब्दी के मंगलमय अवसर पर
पूज्य पाद श्री नारायण स्वामी जी महाराज
कार्यकर्ता प्रधान श्रीमद्दयानन्द शताब्दी सभा
तथा
प्रधान भारत वर्षीय आर्य सार्व देशिक सभा की
सेवा में

अभिनन्दन पत्र

श्रद्धेय स्वामी जी,

हम भिन्न २ प्रान्तों तथा उपनिवेशों के आर्य नर-नारी जो कि भगवान दयानन्द की, शतसांवत्सरिक, स्मृति मनाने के लिये एकत्र हुये हैं, अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने के लिये श्रद्धा समेत, आपकी सेवा में, यह मानपत्र अर्पण करते हैं। जो अनथक पुरुषार्थ, जो निःस्पृह तपस्या आपने इस दयानन्द महायज्ञ को पूर्ण करने के लिये की है, उससे हमारा हृदय कृतज्ञता के सच्चे भावों से गद्‌गद् हो रहा है और हमें निश्चय है आपकी आदर्श निःस्वार्थ सेवा, अगली पीढ़ी के लिये, दृष्टान्त बनेगी और उसकी विद्युत से. न जाने कितने युवक हृदय प्रभावित होंगे। आर्य समाज का गौरव है कि उसमें आप जैसे दयानन्द के सच्चे भिक्षु विद्यमान हैं। आपने आर्य समाज और उसके प्रवर्तक महर्षि के काम पर सर्वस्व न्यौछावर किया है। आपका

विशुद्ध उन्नत चारित्र्य, विद्वत्ता, दृढ़ अध्यवसाय, आत्मस्वाध्याय, शान्ति युक्त कर्मण्यता ये ऐसे गुण हैं जिन्हें हम सब अनुभव कर रहे हैं।

उस दयामय प्रभु के अचिन्त्य चरणों में, हम सारे नर नारी अपनी यह हृदय कामना पहुँचाते हैं कि वह आपको दीर्घायु और नवोत्साह प्रदान करे जिस से आप वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द के विजय नादको दिगन्तव्यापी बनाने में अधिक और अधिक सफल हो सकें।

हम हैं—
आपके प्रतिकृतज्ञता पूर्ण
भारत और उपनिवेशों के
समस्त आर्य नर-नारी।

अभिनन्दन पत्र के पढ़े जाने के बाद प्रत्येक प्रान्त और उपनिवेश के उपस्थित नेताओं ने कृतज्ञता, प्रकाशनार्थ वक्तृतायें कीं और वे सब व्यक्तिगत रूप से भी उस कृतज्ञता प्रकाशन में शामिल हुये। अभिनन्दनपत्र का समुचित उत्तर देने के बाद सभा समाप्त हुई।

शताब्दी नगर से बाहर मथुरा शहर में जमुना के किनारे एक झगड़ा

शताब्दी नगर में किसी प्रकार का न कोई झगड़ा हुआ न और किसी प्रकार की दुर्घटना हुई। जमुना के किनारे स्नानार्थ कुछेक दयानन्द कालिज लाहौर के विद्यार्थी गये थे। उनसे और

कुछेक बे समझ जमुना के पंडों से झगड़ा होगया। झगड़े की ख़बर ज्योंही केम्प में पहुँची कि सैकड़ों विद्यार्थी तथा अन्य यात्री, उपर्युक्त विद्यार्थियों के सहायतार्थ शहर में जाने लगे। ख़बर मिलते ही उन्हें शहर में जाने से रोक दिया गया और मैं स्वयं शहर में जाकर उन विद्यार्थियों को अपने साथ ले आया। एक विद्यार्थी का हाथ टूट गया था। उसका अपने सामने बैंडेज कराके उसे अस्पताल में दाख़िल करा दिया। इस प्रकार झगड़ा बढ़ने से रुकगया।

जिस लड़के का हाथ टूट गया था, पुलिस और ज़िले के अन्य अधिकारी चाहते थे कि उसकी रिपोर्ट लिखकर और पंडों पर फ़ौजदारी अभियोग चलाकर, उन्हें दंडित करावें। शताब्दी के प्रबन्धकर्ताओं ने, अपने प्रबन्ध कार्य में, इतनी दक्षता, शान्ति और सहनशीलता दिखलाई थी कि ज़िले के प्रत्येक राजकर्मचारी की सहानुभूति उन के साथ थी और इसी कारण वे पंडों को सजा दिलाना चाहते थे, परन्तु मैंने पं० लखपतराय जी वकील हिसार की सलाह से जो लाहौर कालिज के प्रतिनिधिरूप में, इस मामले के निपटारे के लिये मेरे पास आये थे, अभियोग चलाना अच्छा नहीं समझा। जिस दयानन्द ने, अपने विष देने वाले को, यह कहकर छुड़ा दिया था कि मैं दुनिया को क़ैद कराने नहीं अपितु क़ैद से छुड़ाने आया हूँ।" उसी की स्मृति में जो उत्सव हो उसके सम्बन्ध में किसी को क़ैद कराके, उत्सव की ख़राब स्मृति, हमेशा के

लिये मथुरा नगर में छोड़ना, उचित नहीं कहा जा सकता था। इसलिये अभियोग किसी दशा में भी नहीं चलने देना चाहिये ऐसा निश्चय कर लिया गया। मैंने पं० लखपतराय को कह दिया "कि जब कोतवाल उस लड़के को लेने के लिये, जिसका हाथ टूट गया है, मेरे पास आवेंगे तो मैं उन्हें आपके पास भेज दूंगा आप जैसा चाहें उन्हें उत्तर दे देना। यह तै करके लखपतराय जी ने यह किया कि अस्पताल से उस हाथ टूटे हुये लड़के को लेकर तथा अन्य भी लाहौर कौलिज के समस्त विद्यार्थियों को, समय से पहले ही पंजाब भेज दिया। इस प्रकार पुलिस को उस विद्यार्थी का नाम और पता भी नहीं मालूम हो सका और मामला खत्म हो गया।

शताब्दी उत्सव सम्बन्धी एकाध मनोरंजक घटना

जिस दिन शहर में चौबों और विद्यार्थियों में कुछ झगड़ा हो गया था उस झगड़े के बाद मथुरा के मजिस्ट्रेट और सुपरिंटेन्डेन्ट पुलिस मेरे पास आये और दबे लफ़्ज़ों में कुछ शिकायत सी की कि यदि प्रबंध अच्छा होता तो यह झगड़ा न होता। मैंने उनसे सहमत होते हुए कह दिया कि यह झगड़ा वहां हुआ जहां पुलिस का प्रबंध था इसलिये यदि पुलिस का अच्छा प्रबंध होता तो बेशक झगड़ा न होता। हम तो केवल उतने ही प्रबंध के उत्तर दाता हैं जो हमारे नगर में, हमारी ओर से हमारे स्वयं सेवक कर रहे हैं। इस पर वे कुछ मुसकरा के चले गये।

(२) मेला समाप्त हो जाने पर एक मास और हमें मथुरा

इसलिये ठहरना पड़ा कि केम्प को उजाड़ कर बांस बल्ली आदि वस्तुओं को नीलाम करा दिया जावे। इस बीच में एक दिन बाबू सुनहरीलाल डिपुटी कलैक्टर मथुरा, मेरे पास आये और बात चीत शुरू होने पर कहा कि "आपने हमारे जिले के मजिस्ट्रेट को निराश कर दिया"। मैंने पूछा कि कैसी निराशा ? तो उन्होंने बतलाया कि "जिलाधीश यह समझ कर कि लाखों आदमी मेले में जमा होने वाले हैं, झगड़े किस्से, वारदातें बहुत होंगी इसलिये ४ डिपुटी कोलेक्टरों को उनके फ़ैसले के लिये नियत किया था परंतु हुआ यह कि केम्प में तो नाम मात्र को भी कोई झगड़ा नहीं हुआ; शहर में एक झगड़ा हुआ था सो उसे भी आपने नहीं चलने दिया"। मैंने हँस कर उत्तर दिया कि "यह तो बहुत अच्छा हुआ। आप लोगों को फ़ुरसत रही और आप अच्छी तरह मेला देख सके अन्यथा सारा समय मुक़दमों के फैसले में लगाना पड़ता।"

उनतीसवां अध्याय

स्वामी श्रद्धानन्द जी से सफाई

यह बात कही जा चुकी है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी से, शताब्दी के नगर कीर्तन के संबंध में मुझ से कुछ मत भेद हो गया था। जब नगर कीर्तन से कुछ पहले स्वामी जी मेरे स्थान पर आये और मैंने उनके साथ जैसा मैं किया करता था उससे कुछ अधिक नम्रता का व्यवहार किया और वे नगर कीर्तन में शरीक रहे तो मैं तो समझा था कि वह प्रकरण समाप्त हो गया परंतु मथुरा से जाते हुये स्वामी जी ने एक पत्र मेरे पास भेजा जो इस प्रकार था:—

श्रीमान महात्मा नारायण स्वामी जी

नमस्ते

कल प्रातः यहां से दिल्ली चला जाऊँगा। जान बूझ कर तो मैंने आप के काम को सुगम करने ही का प्रयत्न किया था; परंतु आपके कहने से मालूम हुआ कि मैंने आपके काम में विघ्न डाले। जो कुछ भी मेरे बरताव से आपको दुख पहुंचा वा आपके काम में हानि हुई उसके लिये मुझे पश्चात्ताप है। यदि मैंने जान बूझ कर ऐसा किया तो परमात्मा की ओर से मुझे दंड मिल ही जायगा और तभी मेरी शुद्धि होगी। आप अब मुझे भूल जाइये क्योंकि मैं अब रजिस्टर्ड आर्य समाज के किसी भी काम में

सम्मिलित न हूंगा। मेरे सम्मिलित होने से काम बिगड़ते हैं बनते नहीं। मुझे निश्चय है कि आपके नेतृत्त्व में सार्वदेशिक सभा एक जीवित संस्था बनकर वैदिकधर्म प्रसार शीघ्र ही भारत वर्ष के कोने कोने में करेगी। मैं तो अब अपने प्रायश्चित्त ही में लग जाऊंगा।

आपका मंगलाभिलाषी
२१. २. १९२५ ई० श्रद्धानन्द

उपर्युक्त पत्र का उत्तर जो स्वामी जी को मैंने भेजा था वह इस प्रकार है:—

मान्यवर स्वामी जी महाराज
नमस्ते

आपका कृपा पत्र मिला। मैंने समझा था कि उस दिन की घटना को आप भूल गये होंगे। आपके पत्र से विदित है कि अभी आप नहीं भूले। कृपा करके आप उसे अब भुला देवें। मेरे किन्हीं शब्दों से यदि आपको दुख हो गया है तो उसके लिये मुझे अत्यन्त दुख है। यदि इतने से आप सन्तुष्ट न हों तो फिर कृपा करके आप बतलावें कि किस प्रकार आप सन्तुष्ट होंगे ताकि वही कर के मैं आपको सन्तुष्ट करूँ।

शुभचिन्तक
नारायण स्वामी

२३. २. १९२५

इसके उत्तर में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने निम्न पत्र भेजा:—

(निजू पत्र) १७ नया बाज़ार, देहली

१. ३. १९२४

श्रीमान् महात्मा नारायण स्वामी जी

नमस्ते

आपका निजू पत्र मिला। मुझे सन्तोष हुआ, पत्र रखने की जरूरत न थी फाड़ दिया।

(२) मैंने पहले ही शास्त्री (डाक्टर केशव देव) जी से कह दिया था कि मैं आर्य्य विवाह बिल आदि के काम में वैसे ही सहायता दूंगा। "सार्वदेशिक सभा के संगठन विषय में भी सहायता दूंगा।

(३) मैंने जब पहले आप से कहा था कि मैं कभी प्रधान नहीं हो सक्ता तो वह बनावट न थी। "कल्याण मार्ग का पथिक" छपवाने से आप को स्पष्ट ज्ञात हो जावेगा। सभा (सार्वदेशिक) का काम आप ही को करना होगा। यदि आप प्रधान रहेंगे तो जो सेवा हो सकेगी करूंगा अन्यथा सभा की उतनी सेवा भी न कर सकूंगा।

(४) मुझे आप सार्वदेशिक सभा का प्रथम प्रचारक समझ लीजिये। इससे आगे मैं कुछ नही करूंगा।

(५) एक बात न भूलिये। मुरादाबाद में पहली बार (१९९३ ई० में) जाकर ही मैंने आपके सदाचार और धर्म भाव को समझ कर आर्य्य समाज की सेवा के लिये अपने मन में चुना

था। वह विचार मेरा अन्यथा सिद्ध नहीं हुआ। हम दोनों ही अब ऊपर के दिखाये में सन्यासी (त्यागी) हैं परन्तु मेरे हृदय में पुराने भाव अंकित रहते हैं। मैं उस समय आपको अपना (धर्मानुसार) प्रिय छोटा भाई समझता था और अब भी वही भाव मेरे अन्दर हैं।

आपका मंगलाभिलाषी*

श्रद्धानन्द

इस पत्र के साथ यह प्रकरण समाप्त हो गया।

(२) एक बार और भी इसी प्रकार का भ्रम हो चुका था और स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मेरा और कुछ मतलब समझ लिया था। उसकी भी उसी समय सफाई हो गई थी उन पत्रों की भी कापी यहां दी जाती है:—

स्वामी श्रद्धानन्द जी का पहला पत्र

श्रीमान् महात्मा नारायण स्वामी जी

नमस्ते

६ दिसंबर (१६२४ ई०) को जब मैंने नई प्रतिनिधियों के निर्माण के लिये बातचीत की तो आपने कहा था कि मैं सार्वदेशिक सभा का प्रधान बन जाऊँ। मैंने यह भी कहा था कि

---

*स्वामी श्रद्धानन्द के असल पत्र मेरी असल डायरी में सुरक्षित हैं। जो इबारत रेखान्तर्गत की गई हैं यह भी स्वामी जी की की हुई असल पत्र में है।

पं० केशवदेव शास्त्री सुस्त हैं कोई चुस्त मंत्री चाहिये। मुझे आश्चर्य था कि ऐसा भाव (स्वा० श्रद्धानन्द के प्रधान बनने का) आपने क्यों प्रकट किया ?

(२) अभी थोड़े दिन हुये मैंने डाक्टर केशव देव को सभा का साधारण वार्षिक अधिवेशन करके चुनाव करने और बजट पास करने के लिये लिखा था। मुझे ६ दिसम्बर की रात को पं० इन्द्र ने बतलाया कि वह मेरा पत्र डाक्टर केशव देव ने सुनाया था जिस पर महाशय कृष्ण ने टिप्पणी की थी कि इसमें कोई विशेष रहस्य है। तब आपके संकेत का मतलब मेरी समझ में आ गया।

(३) मैं आपको निश्चय (विश्वास ?) दिलाता हूं कि मेरा कभी विचार सार्वदेशिक सभा अथवा और किसी आर्य्य सामाजिक संस्था का अधिकारी बनने का नहीं है। मैं कुछ पूछ लेता हूँ या सम्मति देता हूँ तो केवल हित से प्रेरित होकर। अब कुछ भी नहीं लिखा वा बोला करूँगा।

(४) दयानन्द जन्म शताब्दी कमेटी का प्रधान भी मैं नहीं रहना चाहता था। आपके आग्रह पर नाम मात्र प्रधान बना रहा। अब वह तो बना ही रहूँगा परन्तु गलत फ़हमियों का शिकार होने से बचने के लिये मथुरा में केवल १४ फरवरी को ही पहुँचूंगा।

आशा है कि आप मेरे विषय में कोई संदिग्ध विचार न बनायेंगे। मुझ से कुछ सेवा नहीं हो सकी इसका मुझे शोक है

परन्तु उस सेवा से आर्य्य समाज के दायरे में खलबली पड़े तो उसे मैं हानि कारक समझता हूँ।

आपका

श्रद्धानन्द

मैंने पत्र आते ही १२ दिसम्बर १६२४ को स्वामी जी को उत्तर दे दिया कि मुझे म० कृष्ण आदि की बात चीत का कुछ पता नहीं था मैंने तो अपनी ओर से, आर्य्य समाज के हित की दृष्टि से, आप से प्रधान बनने की बात कही थी। इस पर स्वामी श्रद्धानन्द जी का निम्नांकित दूसरा पत्र आयाः—

स्वामी श्रद्धानन्द का दूसरा पत्र

१७, नया बाजार, दिल्ली

ता० १५. १२. १६२४

श्रीमान महात्मा नारायण स्वामी जी

नमस्ते

आपका पत्र पढ़ कर संशय दूर हो गया।

(२) मैं तो अब किसी सभा का भी अधिकारी नहीं बनूंगा, अपने लिये बहुत से लेख के काम निश्चित कर चुका हूँ। इसके अतिरिक्त शारीरिक दशा ऐसी है कि शारीरिक परिश्रम का काम नहीं हो सक्ता।

(३) परन्तु आप विदेश प्रचार और मुद्रण मतलब के लिये जन्म शताब्दी पर अपील करना चाहते हैं। यदि आप प्रधान न रहें तो वह अपील किस के भरोसे पर होगी? यदि आपने

स्थिर स्थान पहाड़ (रामगढ़) बना लिया है तो इस काम के लिये किसी अन्य को तलाश कीजिये।

(४) मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि यदि आपने सार्वदेशिक सभा का काम छोड़ दिया तो मुझे आर्य्य समाज में इस काम को संभालने वाला कोई नहीं दीखता और इस सभा की समाप्ति हो जावेगी और बहुत से प्रान्तिक नेताओं को यह अभीष्ट भी है। आप उस समय तक पूर्ण विचार कर लीजियेगा।

आपका

श्रद्धानन्द*

इसके सिवा मेरे और उनके ३५ वर्ष के लंबे परिचय काल में, कभी कोई नोट करने योग्य, मतभेद नहीं हुआ और मथुरा शताब्दी की घटना के बाद तो कोई मामूली सा मतभेद भी नहीं हुआ। सदैव प्रेम और प्रीति से हम और वे मिलते रहे। नवम्बर १९२६ ई० के लाहौर आर्य समाज के उत्सव में मेरा और उनका अन्तिम साथ हुआ था। तब वे कहते थे कि अब शरीर दुर्बल हो गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि अब इसके छूटने का समय निकट आ चुका है। मैंने उत्तर दिया कि "आप शारीरिक परिश्रम कम किया करें। निर्बलता होने पर शरीर को अधिक आराम देने की जरूरत हुआ करती है। इसके सिवा और कोई बात चिंता करने योग्य नहीं है।" उस समय यह किस के ख़याल में था कि एक मास बाद ही उनका शरीरांत हो जावेगा।

---

*स्वामी श्रद्धानन्द के ये दोनों पत्र भी असल डायरी के साथ हैं।

तीसवां अध्याय

शरीर का रोग ग्रस्त होना

अप्रेल के १९२५ ई० के अन्त तक शताब्दी महोत्सव के अवशिष्ट कार्यों के लिये मथुरा रुकना पड़ा। इस बीच में आर्य्य-समाज बम्बई के शताब्दी उत्सव में शरीक होना पड़ा। मुझे अत्यंत दुख हुआ जब मैंने वहाँ एक सज्जन के व्याख्यान का विषय देखा। "स्वामी दयानन्द एक महान् गुजराती" इसी विषय पर उन्होंने व्याख्यान भी दिया। व्याख्यान के अंत में 'गुजरात' माता की जय बोली गई। हम तो ऋषि दयानन्द को भारतीय कहने में भी संकोच होता है क्योंकि वे महापुरुष तो संसार की विभूति थे, उन्हें किसी देश विशेष का कहना, उन्हें उनके महान् आसन से नीचा करना है। असल में इन क्षुद्र प्रान्तिक भावों ने देश की दुर्दशा कर रक्खी है, परन्तु यह हमारी नस नस में इस प्रकार ओत प्रोत हो रहे हैं कि निकलने में नहीं आते। अस्तु, मई के प्रारम्भ में, अपने आश्रम रामगढ़ में आया और यहां आते ही अस्वस्थ रहने लगा। ज्वर अच्छी तरह से खुल कर आने लगा और पेट में दाहिने ओर दर्द रहने लगा। साधारण चिकित्सा से कुछ लाभ नहीं हुआ। १½ मास तक जल चिकित्सा की उससे भी कुछ लाभ नहीं हुआ। डाक्टर श्यामस्वरूप के सुपुत्र पं० सत्य-पाल आयुर्वेदाचार्य्य यहाँ आश्रम पर आये हुये थे। उनके आग्रह

से मैं बरेली उनके साथ चला गया। डाक्टर श्याम स्वरूप जी ने देखते ही बतला दिया कि आंत बढ़ जाने का (Appendicites) रोग है। २३ जून तक बरेली रहा, अच्छा हो जाने पर २५ जून को आश्रम में लौट आया। डाक्टर श्याम स्वरूप तथा अन्य कई डाक्टरों ने सलाह यह दी कि यद्यपि इस समय रोग दब गया है परन्तु आराम तभी होगा जब औपरेशन करा लिया जावेगा। आश्रम में आकर फिर कुछ ज्वर रहने लगा। संयुक्त प्रान्तीय सभा के प्रधान जी ने गुरुकुल के प्रसिद्ध वैद्य पं० रमाशंकर जी को मुझे देखने और चिकित्सा करने के लिये भेजा। वैद्य जी का अनुमान था कि अब ज्वर नहीं रहा। इसी लिये वैद्य जी वापिस चले गये।

दो सज्जनों ने आश्रम में आकर संन्यस्त ग्रहण किया

आश्रम में श्री [illegible] म० [illegible] रिटायर्ड डिपुटी मजिस्ट्रेट नगर अनूपशहर और श्री आनन्द भिक्षु जी आनरेरी जनरल मैनेजर प्रेम महा विद्यालय वृन्दावन, आश्रम में आये और संन्यस्त ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। अपनी अपनी इच्छानुसार पृथक पृथक वृहद् यज्ञ के बाद उन्होंने आश्रम परिवर्तन किया और वापिस चले गये।

डाक्टर भाटिया से सलाह लेने के लिये लखनऊ जाना

डाक्टर श्याम स्वरूप जी ने अक्तूबर का महीना औपरेशन के लिये अच्छा बतलाया था इसलिये २८ सितंबर को आश्रम से चल दिये और भी कई सज्जन साथ हो लिये। बरेली आइजट

नगर स्टेशन पर डाक्टर श्याम स्वरूप भी मिल गये इसलिये इनके साथ वरेली शहर चला गया और वहां से १. १०. २५ की रात में लखनऊ के लिये प्रस्थान किया। लखनऊ जाने का उद्देश्य केवल यह था कि डाक्टर आर. एन. भाटिया प्रोफेसर सरजरी मेडिकल कौलिज लखनऊ से जो आंतों के रोग के विशेषज्ञ हैं, सलाह ली जावे। लखनऊ के प्रसिद्ध आर्य नेता पं० रामबिहारी तेवारी के साथ, डाक्टर भाटिया से मुलाकात की। उन्होंने भी औपरेशन कराने की सलाह दी और २३. १०. २५ औपरेशन की तिथि निश्चित कर दी। इस बीच में आर्य्य समाज बरेली के उत्सव के उपलक्ष में सात दिन तक वहां वेद की कथा की। उसके बाद शाहजहाँपुर जाना हो गया जहां आर्य समाज के प्रसिद्ध उपदेशक म० इन्द्रजीत जी ने संन्यास ग्रहण किया। उनका नाम विशुद्धानन्द रक्खा गया, वहां से बरेली लौट आया।

औपरेशन के लिये लखनऊ प्रस्थान और औपरेशन

२०.१०.२५ को औपरेशन कराने के लिये लखनऊ चल दिया। २१ अक्टोबर को मेडिकल कोलिज पहुँचने पर मालूम हुआ कि यौरुपियन वार्ड में, जहाँ मुझे ठहरना था, इस समय कोई कमरा खाली नहीं है। इसलिये औपरेशन २६ अक्टोबर के लिये मुलतवी हुआ। २४ अक्टोबर को एक खाली कमरे में जाकर निवास किया। स्वामी भजनानन्द (अनूपशहर) साथ थे। २५ को जुलाब और २६ को प्रातः काल अनीमा दिया गया। ६ बजे दिन

के औपरेशन होना था। औपरेशन खतरनाक था। जीना और मरना दोनों उसके पहलू थे। इसलिये संभावना थी कि शायद औपरेशन असफल हो और मेरी मृत्यु हो जावे, ऐसी हालत में रामगढ़ के आश्रम का क्या होगा? इस संबंध में जैसा मुझे उचित प्रतीत हुआ, एक वसीयतनामा लिख कर और लिफाफे में बंद करके, स्वामी भजनानन्द को औपरेशन से पहले दे दिया और कह दिया कि मृत्यु होने की सूरत में यह लिफ़ाफ़ा डाक्टर श्याम स्वरूप (बरेली) को दे देना। औपरेशन की खबर रखने के लिये डाक्टर श्यामस्वरूप जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री आदि अनेक सज्जन वहां उपस्थित थे। डाक्टर भाटिया ने, डाक्टर श्याम स्वरूप को तो डाक्टर होने के कारण औपरेशन हाल में रहने दिया. बाकी सब को हाल के बरामदे की छत पर भेज दिया जहाँ से वे औपरेशन होता हुआ तो देख सकें परन्तु डाक्टर न होने के कारण कोई ऐसी हरकत न कर बैठें जिससे आपरेशन कर्ता का ध्यान. औपरेशन के कार्य्य से हट जावे। डाक्टर भाटिया ने मुझ से पूछा कि क्लौरा फ़ार्म तेज सुंघाया जावे या हल्का? मैंने उत्तर दिया कि अत्यंत हलका अथवा न सुंघावें और बिना क्लौराफ़ार्म सुंघाये ही औपरेशन कर देवें। डाक्टर ने हँस कर कहा कि बहुत हल्का नाम मात्र को सुंघाते हैं। मैंने अपने चित्त को दूसरी ओर एकाग्र करने का यत्न किया परन्तु क्लौराफार्म सुंघाने से उसमें कुछ विघ्न पड़ गया। औप-

रेशन हो गया और सफलता के साथ हो गया। मैं जागने और सोने के बीच की सी हालत में रहा। कभी कुछ खबर हो जाती थी। कभी बेखबरी। वाह्य आंत (Appendix) इतनी बढ़ गई थी कि इससे पहले अनेक औपरेशनों में, जो मेडिकल कालिज में यहां पर हुआ करते थे, इसके बराबर कभी कोई नहीं निकली थी। डाक्टर भाटिया ने मेरी उस काटी हुई आंत को, उन लोगों को दिखला कर कहा कि इसी आंत के इतना बढ़ जाने से स्वामी जी को (मुझे) तकलीफ थी। मैं औपरेशन हाल से अपने कमरे में स्ट्रेचर (Stretcher) द्वारा पहुंचाया गया। इस सब की मुझे जानकारी रही।

औपरेशन के बाद टाँके खोलने तक

जब मैं अपने स्थान पर पहुंचा तो मेरा पेट फूलना शुरू हुआ, और हिचकियों का तांता बँध गया। खाना पीना निषिद्ध था और पेशाब पाखाना बंद। ३ दिन अत्यंत कष्ट के साथ बीते। बाहर से आये हुये सभी सज्जन औपरेशन के बाद ही चले गये थे। चौथे दिन अनीमा दिया गया उससे कुछ दस्त हुआ। पेशाब भी आना शुरू हो गया था। पांच दिन के उपवास के बाद प्रथम दूध फिर रोटी दाल मिलने लगी। १०वां दिन टांके खोलने के लिये नियत था।

टांकों का खोलना और कौलिज से शहर में जाना

नियत समय पर डाक्टर भाटिया कुछेक विद्यार्थियों के साथ आये और मुझ से कहा कि स्वामी जी! दो समय होते

हैं जिसमें रोगी डाक्टर को तकलीफ़ दिया करते हैं:—(१) औपरेशन के समय, सो उसमें आपने ज़रा भी तकलीफ़ मुझे नहीं दी। इसी प्रकरण में उन्होंने एक भाटिया रोगी की बात सुनाई कि तेज क्लौराफ़ार्म देने के बाद बेहोश हो जाने पर उसके हाथ-पांवों का हिलना बंद नहीं हुआ। जब ६ आदमियों ने उसको पकड़ा तब उसने औपरेशन होने दिया (२) दूसरा टांके खोलने का समय, इसमें भी डाक्टरों का बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ती है। मैंने कहा कि मैं इसमें भी आपको तकलीफ़ न दूंगा। मैंने दूसरी ओर मुंह फेर कर, खिड़की के एक स्थान विशेष पर, चित्त को, एकाग्रिन कर दिया और उसी अवस्था को, पूरा यत्न किया कि कायम रहे। प्रसन्नता की बात है कि वह स्थिति बनी रही। डाक्टर भाटिया ने टांके खोल दिये। टांके तार के होते हैं एक एक टांके के तार को काटना पड़ता है तब एक टांका खुला करता है, इसमें कुछ तकलीफ़ का होना स्वाभाविक ही है। परन्तु दूसरी ओर चित्त के एकाग्र कर लेने से, मुझे टांकों के खुल जाने की खबर नहीं हुई। डाक्टर भाटिया और उनके विद्यार्थियों ने देखा कि मेरी आँखें खिड़की की ओर लगी हैं तब हेड नर्स, जिसे वहां बहन (Sister) कहा करते हैं, वह मेरी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई। इस प्रकार चित्त की एकाग्रता भंग हो गई और मैंने उसकी ओर देखा तो उन्होंने पहले तो मुझ से कहा कि स्वामी जी! आपने अब भी मुझे ज़रा भी तकलीफ नहीं दी इसके लिये मैं आपको धन्यवाद

देता हूँ। इसके बाद उन्होंने साथ के विद्यार्थियों को संबोधन करके मेरे संबंध में कहा:—

"He renounced the world So he is above pain. He is an example for you and for your principal and professors." अर्थात् इन्होंने दुनिया को छोड़ दिया है इसलिये यह कष्टों से ऊपर हो गये हैं (अर्थात् अब इन्हें कोई बात तकलीफ़ नहीं देती) यह एक उदाहरण तुम्हारे और तुम्हारे गुरुओं के लिये हैं।

एक और घटना

औपरेशन के दिन से पहले दिन डाक्टर (House Surgeon) जो मेरे कमरे में प्रातः और सायंकाल आया करते थे, एक विद्यार्थी को लाकर उन्होंने उसे बतलाया कि औपरेशन की जगह और उसके आस पास के बालों को उसतरे से साफ कर दो। मेडीकलकौलिज में यह सब काम वहां के विद्यार्थी ही किया करते हैं। डाक्टर चले गये। विद्यार्थी के कहने से मैंने लंगोट आदि सब उतार दिये उसने बालों को साफ़ किया और मूत्रेन्द्रिय तक के सब बाल काट दिये। एक बात, जिससे उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था यह थी कि क्यों जननेन्द्रिय को स्पर्श करने से उसमें उत्तेजना नहीं पैदा हुई। इस बात को जाकर उसने क्लास में कह दिया। इस घटना और डाक्टर भाटिया के उपर्युक्त शब्दों से, प्रेरित होकर मेडिकल कौलिज तथा केनिंग कलिज के अनेक विद्यार्थी, बड़ी श्रद्धा से मेरे पास आने लगे।

अलमोड़े की एक घटना

उन (केनिंग कौलेज के) विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी था जो राय बहादुर पं० पीतंबर जोशी रिटायर्ड जज का शायद दामाद था। पीतंबर जोशी कुछ रुग्ण थे। मैं अलमोड़ा में कथा करने के लिये गया था। जोशी जी बड़ी श्रद्धा से कथा में आया करते थे और जब मैं कथा करके निवास स्थान पर जाता तो वे सदैव मुझे मेरे स्थान तक पहुंचा कर तब घर जाया करते थे। उनकी रुग्णता सुनकर मैं उनके घर उन्हें देखने गया। वह विद्यार्थी जो अब मुंसिफ हो गया था, हजामत बनवा रहा था। उसे जब यह मालूम हुआ कि मैं वही (नारायण स्वामी) हूँ जिसका मेडिकल कौलिज में औपरेशन हुआ था तो उसने हजामत बंद कर के, बड़ी श्रद्धा से खड़ा होकर अभिवादन किया। वह वहां खड़ा ही रहना चाहता था परन्तु मेरे और पीतंबर जी के इसरार करने से, हजामत बनवाना शुरू किया। अस्तु मैं ग्यारहवें दिन, पांचवी नवम्बर १९२५ ई० को, मैडिकल कौलिज को छोड़ कर शहर में आ गया। मैंने निश्चय किया था कि लखनऊ से फैजाबाद जाकर कुछ दिन विश्राम करूँगा। जब मेडिकल कौलिज से रुखसत होकर चलने लगा था तो डाक्टर भाटिया ने आकर बड़ी श्रद्धा से पूछा कि मैं कहाँ जाऊंगा तो मैंने कह दिया कि मैं कुछ दिन फैजाबाद रहने का इरादा कर रहा हूँ। तब उन्होंने कहा कि मैं फैजाबाद रहा हूँ यदि जरूरत हो मैं वहाँ आराम से रहने का कोई प्रबंध कर दूं। मैंने उन्हें धन्यवाद देते हुये कह

दिया कि फैजाबाद में, मेरे आराम से रहने का प्रबंध है। इस प्रकार मैं लखनऊ से रुखसत होकर फैजाबाद आ गया और फैजाबाद पहुंच कर बाबू ज्वाला प्रसाद वर्मा की बनाई हुई नारायण वाटिका में बने हुये मकान में ठहरा जिसे अब वाटिका समेत बाबू ज्वाला प्रसाद ने आर्य्य समाज फैजाबाद को आर्य्य कन्या पाठशाला चलाने के लिये दे दिया है।

धन्यवाद

इस औपरेशन के प्रकरण में जहां मैं डाक्टर भाटिया का अत्यंत कृतज्ञ हूं वहाँ श्री पं० रामबिहारी जी तिवाड़ी का भी बड़ा ऋणी हूँ। उन्होंने शुरू से अंत तक इस प्रकरण में मुझे अधिक से अधिक आराम देने का यत्न किया और इस औपरेशन में जो खर्च हुआ वह सब आर्य समाज गणेश गंज लखनऊ ने दिया इसके लिये मैं प्रशंसित आर्य समाज का भी कृतज्ञ हूँ।

बरेली में चिकित्सा

फैजाबाद के निवास काल में पता चला कि औपरेशन से जो जख्म हो गए थे वे अभी भरे नहीं हैं। कुछ दिन फैजाबाद रहने के बाद मैं बरेली आ गया और वहाँ डाक्टर श्यामस्वरूपजी के यहाँ ठहर कर उनकी चिकित्सा की, उससे जख्म सब भर गये और मैं तन्दुरुस्त हो गया। वहां से हल्द्वानी एक दिन ठहर कर ३१३१ को रामगढ़ अपने आश्रम पर पहुँच गया।

रामगढ़ पहुँचना और वहाँ ठहरना

रामगढ़ पहुँच कर अहतियात से रहना शुरू किया गया।

जिससे शरीर के उस कोमल भाग को कष्ट न पहुँचे जहाँ ऑपरेशन किया गया था। आम खयाल के मुताबिक यह रोग मुझे मथुरा शताब्दी के असीम कार्य्य भार उठाने से हुआ परंतु सफलता के साथ ऑपरेशन हो जाने के बाद आश्रम में लौटने पर जब मैंने सोचा तो प्रतीत हुआ कि रोग का कारण कुछ भी क्यों न हो परन्तु उस रोग से मुक्त होने का कारण जो मुझे प्रतीत हुआ यह था कि मुझ से ऋषि दयानन्द जैसे महान् व्यक्ति की जन्म शताब्दी मनाने के संबंध में कुछ सेवा बन पड़ी थी।

रोग के प्रकरण का उपसंहार

सामांत से कुछ पहले मैं गुरुकुल वृन्दाबन के महोत्सव पर गया। मुझे एक भयानक रोग से अच्छा हुआ देख गुरुकुल के ब्रह्मचारी और प्रायः सभी बाहर से आये हुये भाई बड़े प्रेम और प्रसन्नता से मिले। रोगावस्था में देश भर के आर्य्य भाइयों ने जो प्रेम प्रदर्शित किया उसके लिये मैं उनका बड़ा आभारी हूँ। सयुक्त प्रान्त और पंजाब के भाइयों की उनमें बहुतायत थी। पं० सत्यपाल वैद्य बरेली, बाबू रघुनाथ सहाय बरेली से, सेवा करने के लिये लखनऊ मेरे पास पहुँचे थे। म० वेद मित्र सहारन पुर से, स्नातक पृथ्वी राज (गुरुकुल वृन्दावन) भी लखनऊ पहुंच गये थे। इन सब की प्रेम पूर्ण सेवाओं से मुझे कभी यह अनुभव करने का अवसर नहीं मिला कि संन्यासी होने से मैं किसी का नहीं हूँ।

इकतीसवां अध्याय

कानपुर में काँग्रेस के अवसर पर धर्म प्रचार

वृन्दावन गुरुकुलोत्सव से निवृत्त होकर, बाबू ज्वाला प्रसाद मंत्री आर्य्य समाज कानपुर के विशेष आग्रह से मैं कानपुर पहुंचा। उन दिनों वहाँ काँग्रेस के अवसर से लाभ उठाकर आर्य्य समाज की ओर से धर्म प्रचार हो रहा था। प्रचार का बड़ा सुन्दर प्रबंध था। एक बहुत अच्छा विशाल पंडाल बनाया गया था। अच्छे अच्छे व्याख्यान हो रहे थे। मुझे भी प्रचार में भाग लेना पड़ा।

सार्वदेशिक सभा का कोश विभाग

मुझे वहां लाला नारायणदत्त जी कोषाध्यक्ष सार्व० सभा से यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मथुरा शताब्दी के अपील का धन, डा० केशवदेव मंत्री सभा ने, अभी तक कोषाध्यक्ष के हवाले नहीं किया है। डा० केशवदेव शास्त्री का यह काम अनुचित था इसलिये उन्हें मलामत की गई और ताकीद के साथ कहा गया कि देहली जाते ही कोष का धन, कोषाध्यक्ष को दे देवें। आश्चर्य है कि एक बार फिर मुझे ताकीद करने का अवसर मन्त्री जी ने दिया और तब कहीं अप्रेल २६ में पूरे एक साल के बाद उन्होंने वह धन कोषाध्यक्ष के हवाले किया। मेरे रोग-ग्रस्त रहने से, यह ढीलापन करने का अवसर मन्त्री जी को

मिल गया। मैं जब रोगग्रस्त और काम करने के अयोग्य होगया था तभी अप्रेल १९२५ ई० में सार्व० सभा के प्रधान पद का चार्ज प्रो० रामदेव जी उप प्रधान को दे दिया था परन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

बहुतायत के साथ प्रचार यात्रायें

कुछ शताब्दी के काम और उसके बाद कुछ रोगी होने के कारण प्रचारार्थ मैं कहीं नहीं जा सका था अब मुझे अच्छा देखकर आर्य समाजों ने अपने अपने यहां बुलाने के लिये बड़ा आग्रह किया और मुझे १९२६ ई० में प्रायः लगातार छै मास भ्रमण करते हुये निम्न स्थानों में जाना पड़ा:—

(१) लखनऊ (२) हल्द्वानी (३) टंकारा (४) आगरा (५) मैनपुरी (६) फतहपुर, (६) गुरुकुल कांगड़ी, (७) मुरादाबाद गंज, (८) देहरादून, (९) शाहजहांपुर, (१०) रुड़की, (११) पीलीभीत, (१२) मेरठ, (१३) जब्बलपुर, (१४) गुरुकुल भटिंडा, (१५) संभल, (१६) अमरोहा, (१७) लखीमपुर, (१८) भूड़बरेली, (१९) गोरखपुर, (२०) क्वेटा विलोचिस्तान, (२१) मुरादाबाद बांसमन्डी, (२२) शिकोहाबाद, (२३) मथुरा, (२४) गुरुकुल वृन्दावन, (२५) खगड़िया (मुँगेर), (२६) पटना, (२७) मुंगेर, (२८) देहली, (२९) मऊरानीपुर, (३०) इलाहाबाद, (२१) कटरा, (३२) सिमला, (३३) आर्य कुमार सभा मुरादाबाद, (३४) नैनीताल, (३५) अल्मोड़ा, (३६) चौड़ा-बाजार लुधियाना, (३७) लाहौर, (३८) अम्बाला, छावनी, (३९) अनाथालय अलमोड़ा, (४०) हसनपुर (मुरादाबाद) (४१)

हरदोई (४२) सीतापुर, (४३) जालंधर (४४) कांठ, (४४) नगीना, (४६) बिजनौर, (४७) बाराबंकी।

कुछेक उल्लेखनीय बातें

६ मास के प्रचारार्थ लंबे भ्रमण काल में कुछेक घटनायें उल्लेखनीय हैं। उनका यहां उल्लेख किया जाता है:—

१—टंकारा शताब्दी—मोरवी राज्य में टंकारा एक बड़ा कसबा है। मोरवी तक रेल है। मोरवी से टंकारा को ट्रेम्बे जाती है। टंकारा ऋषि दयानन्द का जन्म स्थान होने से, प्रसिद्ध है। काठियावाड़ी भाइयों ने, टंकारा में जन्म शताब्दी मनाने को, काठियावाड़ में प्रचार प्रारम्भ करने का, एक अच्छा साधन समझकर वहां शताब्दी उत्सव मनाया था। उत्सव में बहुत से संन्यासी, उपदेशक और थोड़े थोड़े प्रायः सभी प्रान्त के आर्य भाई एकत्र होगये थे। लगभग ५०० के बाहर से नर नारी वहां पहुँच गये थे परन्तु उत्सव की उपस्थिति लगभग ४००० के स्थानिक और आस पास के व्यक्तियों के आजाने से, होजाया करती थी। ५ दिन तक बराबर उत्सव मनाया गया। ऋषि दयानन्द का जिस घर में जन्म हुआ था उसे देखा और कुछ देरतक, उसमें, भीतर जाकर बैठा भी। स्वामी श्रद्धानन्द जी भी वहां आगये थे। ऋषि के अवशिष्ट सम्बन्धियों से भेंट हुई।

पिता के वंश में उस समय कोई नहीं था; हां भगनी के वंश में निम्न व्यक्ति उस समय थे:—

(१) प्रेम बाई पुत्री, (२) मागा पुत्र, (३) कल्याण जी पुत्र कल्याण जी के दो पुत्र (१) पोपटलाल और (२) प्राणशंकर, उस समय थे। सं० २ का पुत्र केशव नामक है।

टंकारे में आर्य समाज की स्थापना

इसी शताब्दी के अवसर पर टंकारे में आर्य समाज की स्थापना हुई और पोपटलाल जी उसके मन्त्री नियत हुये। वह चूहे वाला [illegible] शिव का मन्दिर भी देखा गया जिस पर, टंकारा निवासियों ने एक कपड़े पर मोटे अक्षरों में यह लिखकर टांग रक्खा था:—

"स्वामी दयानन्द के पिता करसन जी तिरवारी का"

"बनवाया हुआ शिव मन्दिर।"

स्वामी जी का बचपन का नाम मूलशंकर नहीं अपितु मूलजी दयाराम और उनके पिता का अंबाशंकर नहीं अपितु करसन जी तिरवारी था।

इबराहीम पटेल

ऋषि दयानन्द के बचपन का साथी और उनके साथ खेलने वाला एक व्यक्ति इबराहीम पटेल था। उससे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी आयु उस समय (१६२६ ई० में) १०५ वर्ष की थी। वह ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में अनेक मोटी मोटी बातें सुनाता रहा। उससे जिरह करने के ढंग से, उपस्थित पुरुषों में से किसी एक ने, कुछ प्रश्न किये जिनके उत्तर उसने इस प्रकार दिये :—

एक व्यक्ति का प्रश्न—स्वामी जी तो छोटे क़द के और काले रंग के थे न ?

उत्तर—नहीं; वे बड़े लंबे और गोरे रंग के थे।

प्रश्न—लड़कपन में तो स्वामी दयानन्द बड़े सीधे सादे थे न ?

उत्तर—नहीं ! वे बड़े नट खट थे।

इस उत्तर को सुन कर हँस पड़े। कई पुरुषों ने, बड़े प्रेम और श्रद्धा से, उसे कुछ भी दिया।

देवेन्द्रनाथ (स्वामी जी के जीवन चरित्र लेखक) को, जब यह निश्चय होगया था कि यह वही घर है जिसमें स्वामी दयानन्द ने जन्म लिया था तो, टंकारा के लोगों ने बतलाया कि बड़ी श्रद्धा से उन्होंने वहां की धूलि को लेकर अपने मस्तक से लगाया और अपने को कृत्कृत्य समझा। मैं भी वहां की थोड़ी सी धूलि को अपने साथ लाया था और उसे अपने रामगढ़ के आश्रम में रख दिया था। टंकारा में मौरवी के राजा और वीरपुर के ठाकुर साहिब से तथा अन्य अनेक काठियावार के गण्यमान्य पुरुषों से भेट हुई। वीरपुर के ठाकुर साहिब, काठिआवाड़ के एकमात्र आर्य राजा हैं। हम जब टंकारा से रुखसत होकर ट्रम्वे पर चढ़ने लगे तो ठाकुर साहिब आये और उन्होंने बड़े प्रेम और श्रद्धा से अपने राज्य में आने का निमन्त्रण दिया था। धन्यवाद देते हुये उन्हें उत्तर दिया कि अवसर प्राप्त होने पर आने का पूरा यत्न करूंगा। मौरवी के राजा साहिब ने, अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुये, बड़े अभिमान से कहा कि ऋषि

दयानन्द जैसे महान् व्यक्ति उनके राज्य में उत्पन्न हुये हैं, इसका उन्हें और उनके राज्य को बड़ा गौरव है। प्रशंसित राजा साहिब ने, शताब्दी के उत्सव के लिये बहुत सा सामान अपने राज्य से दिया था और बहुत धन खर्च करके शताब्दी की केम्प में पानी के नल भी लगवा दिये थे।

२—कृष्ण की द्वारिकापुरी

टंकारा से लौटते हुये राजकोट, जामनगर आदि स्थानों पर होते हुये, मैं और अनेक भाई द्वारिका पहुँचे। यह स्थान बड़ा रमणीक है और समुद्र के तट पर होने से, उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई है। एक दूसरी द्वारका, समुद्र के बीच में किनारे से १४, १५ मील के फ़ासिले पर है। यह दूसरी द्वारिका टापू के तौर पर है और नावों और स्टीमरों के द्वारा वहां जाया करते हैं। इसी तरह हम भी, उसे देखने के लिए गये थे। इन दोनों द्वारिकाओं में, इस समय मन्दिरों के सिवा और कोई बात उल्लेख करने योग्य नहीं है।

शारदा पीठ के शंकराचार्य

हम लोग शारदा पीठ के शंकराचार्य जी से भी मिले। यह महानुभाव उदार विचार के व्यक्ति हैं और सुधार-सम्बन्धी कार्यों में, उनकी सहानुभूति आर्य समाज के साथ थी और जन समूह में उन सुधारों के प्रकट कर देने का वे साहस भी रखते थे ऐसा वहां अनेक पुरुषों ने बतलाया। उन्होंने एक छपी हुई सूची भी, अपने मठ के, आदि शंकराचार्य से लेकर, अब

तक के शंकराचार्यों की दी। इस सूची में प्रत्येक शंकराचार्य के नाम, संवत वार दिये हुये हैं। इस सूची के अनुसार आदि शंकराचार्य का समय, अब से लगभग २३०० वर्ष के होता है जैसा कि ऋषि दयानन्द ने लिखा है। संभव है ऋषि दयानन्द के इस लेख के हेतु यही इन मठों के रिकार्ड ही हों क्योंकि आधुनिक पश्चिमी तथा भारतीय विद्वान्, जिन में लोकमान्य तिलक भी शामिल हैं, शंकर का समय ८०० और ९०० ई० के बीच का कूतते हैं। शंकर के मठों के रिकार्ड के ठीक मानने से, अशोक, कनिष्क, चन्द्रगुप्त, चाणक्य और बुद्ध आदि सभी के समय अशुद्ध ठहरेंगे और उनमें से अनेक आदि शंकराचार्य के समकालीन जैसे चन्द्रगुप्त, चाणक्य आदि और अनेक उनके पीछे के, जैसे अशोक और कनिष्क आदि ठहरेंगे। अस्तु, शंकराचार्य जी से जब यह पूछा गया कि विद्वानों में से कुछेक का जो यह मत है कि शांकर भाष्यादि ग्रंथ आदि शंकराचार्य जी के बनाये हुये नहीं, किन्तु ये सब चतुर्थ शंकराचार्य की रचना है इस पर प्रकाश डालने वाला क्या कोई रिकार्ड उनके मठ में है जिससे जाना जा सके कि किस शंकराचार्य ने कौन कौन से ग्रंथ कब कब बनाये ? तो इसका उत्तर उन्होंने निषेध परक दिया और यह भी कहा कि उनका अपना इस विषय में कोई स्थिर मत नहीं है। इसके बाद हम वहां से चले आये।

३—रामगढ़ में आर्य समाज

रामगढ़ निवासियों में से अनेक सज्जनों की इच्छा से

१६२६ ई० के मध्य में, आर्य समाज की स्थापना हुई। उसके साप्ताहिक अधिवेशन, नारायण आश्रम ही में होने लगे परन्तु सब ने मिलकर निश्चय किया कि यथा सम्भव शीघ्र आर्य मन्दिर बनना चाहिये।

४—प्रचार शैली में परिवर्तन

नैनीताल, अलमोड़ा बरेली, लखनऊ, मेरठ, और प्रयाग आदि अनेक स्थानों पर वेद और उपनिषद की कथा के द्वारा प्रचार करने से, प्रकट हुआ कि आम तौर से शिक्षित पुरुष इसी प्रकार का प्रचार चाहते हैं। उनमें श्रद्धा से, इन कथाओं को सुनने की इच्छा और यथा संभव उनके ग्रहण करने की भी रुचि है।

५—स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान

मैं जब वृन्दावन गुरुकुल के उत्सव पर जारहा था तो हाथरस जंकशन पर किसी ने कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द को एक दुष्ट मुसलमान ने गोली से मार दिया है। तसदीक़ न होने से विश्वास नहीं हुआ और मैं सीधा वृन्दावन गुरुकुल चला गया। वृन्दावन पहुँचते ही देहली से भेजे अनेक तार मिले जिससे दुर्घटना का घटित होना सिद्ध होगया। इसलिये मैं २४ दिसंबर को दिन ही में वृन्दावन से चलकर देहली पहुँच गया और जाते ही स्वामी श्रद्धानन्द के शव को देखा। उसके बाद ला० ज्ञानचन्द जी ठेकेदार के यहां जाकर ठहर गया।

अन्त्येष्ठी संस्कार

२५।१२।२६ को उनका अन्त्येष्ठी संस्कार होना था। १० बजे दिन के, उनका शव बलिदान भवन से उतारा गया और उसे श्मशान की ओर लेकर चले। शवके साथमें जो जुलूस था वह असाधारण था, उसमें एक लाख से कम आदमी न होंगे। ७ घंटे जुलूस को श्मशान तक पहुंचने में लगे। श्मशान में उत्तम रीति से पुष्कल, घृत और सामग्री से उनकी अन्त्येष्ठी की गई। अन्त्येष्ठी से पहले दो तीन आदमियों के साथ, जिनमें एक मैं था, उनके शव का फ़ोटो लिया गया। उसके बाद विधिवत् संस्कार हुआ। संस्कार के बाद उनके सुपुत्र पं० इन्द्रजी की इच्छानुसार मेरी एक संक्षिप्त सी वक्तृता के साथ. ईश्वर से दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई। इस प्रकार श्मशान की कार्यवाही समाप्त हुई।

क्वीन्स गार्डन के विशाल मैदान में एक वृहत् शोक सभा

मैदान स्त्री-पुरुषों से खचाखच भरा हुआ था। देहली के बड़े-बड़े आदमी प्रायः सभी उपस्थित थे। श्रीमान् लाजपतराय जी और जैकर महोदय भी उपस्थित थे। मुझे उस सभा का प्रधान पद ग्रहण करना पड़ा। अनेक शोक से भरी वक्तृताओं के साथ सभा विसर्जित हुई।

स्वामी श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट

सार्वदेशिक सभा की ओर से, स्वामी श्रद्धानन्द के स्मारक बनाने के लिये धन की अपील की गई। धन आना भी

शुरू होगया था। उस समय ला० लाजपतराय ने प्रस्ताव किया कि ट्रस्ट समस्त हिन्दु जाति के नाम से बनाया जावे परन्तु ट्रस्ट में बहुपक्ष आर्यों का रक्खा जावे। हमने उनके प्रस्ताव को, अन्तिम शर्त के साथ स्वीकार कर लिया। उनके द्वारा ट्रस्ट बनाया गया परन्तु उसमें आर्यों का बहुपक्ष नहीं रक्खा गया जब उनसे अपनी प्रतिज्ञा भंग का कारण पूछा गया तो आंय बांय शांय करके बात टाल दी गई और कारण नहीं बतलाया गया। यह ट्रस्ट यद्यपि अब आर्यों के हाथ में है परन्तु ला० लाजपतराय के, इस प्रतिज्ञा भंग करने का, मेरे ऊपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा।

बत्तीसवां अध्याय

बलिदानभवन में स्वामी श्रद्धानन्द के स्थान पर किस को रहना चाहिए ?

सार्वदेशिक सभा का प्रधान १६२३ ई० से मैं था। स्वामी श्रद्धानन्द जी, बलिदान के समय भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के प्रधान थे। उनके बलिदान के बाद प्रश्न उठा कि कौन शुद्धि सभा का प्रधान हो और कौन इस बलिदान भवन में रहे। नगर निवासी हिन्दू और आर्य जनता बलिदान भवन को खाली नहीं देखना चाहती थी कि कोई न कोई यहां रहे और शुद्धि सभाका काम करे। इसके लिये पहले हमने ला० लाजपतराय से प्रार्थना कराई कि वे उन सब कामों को देहली रह कर करें जिन्हें स्वामी श्रद्धानन्द किया करते थे। परंतु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। तब भाई परमानन्द जी से स्वयं मैंने प्रार्थना की कि वे इस भार को अपने जिम्मे लेवें और यह कि देहली रहने में जो उन्हें दिक्कतें आवेंगी वे सब दूर होती रहेंगी। मुझे प्रसन्नता हुई कि भाईजी ने विचार करके इसे स्वीकार कर लेने का वचन दिया। मैं शुद्धि सभा के कार्यकर्ताओं से, यह कह कर, कि वे भाई जी को शुद्धि सभा का प्रधान चुन लेवें, रामगढ़ अपने आश्रम में लौट आया।

भारतीय शुद्धि सभा का प्रधान पद मुझे ग्रहण करना पड़ा

जनवरी १९२७ में, मेरे पास स्वामी चिदानन्द जी मन्त्री शुद्धिसभा का पत्र आया कि शुद्धिसभा के वार्षिक साधारण अधिवेशन में, मुझे उस सभा ने अपना प्रधान चुना है। इस पत्र के पढ़ने से मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ कि क्यों भाई जी को प्रधान नहीं चुना गया। मैं देहली गया और वहां जाकर मालूम किया तो प्रकट हुआ कि भाई जी ने भी इस पद को ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। स्वामी चिदानन्द जी तथा और भी कई सज्जनों ने कहा कि बलिदान भवन के खाली रहने का, यहां की हिन्दू जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और यह कि खुले तौर से यह कहने लगी है कि चूंकि यह मरने की जगह है, इसलिये अब यहां कोई नहीं रहेगा। इसलिये शुद्धि सभा ने, मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे अपना प्रधान चुन लिया है। मैं इन सब हालात के जानने के बाद दुविधा में पड़ गया कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं ?

अंत में, विचार करने और जनता के आग्रह से, मुझे शुद्धि सभा का प्रधान पद ग्रहण करना पड़ा और जनवरी मास के तीसरे सप्ताह में, आवश्यक पुस्तक आदि लेकर मैं देहली आगया और बलिदान भवन में रहने लगा। और इस प्रकार रामगढ़ के सिवा, मुझे अपना दूसरा हेड क्वार्टर देहली बनाना पड़ा।

देहली निवास की प्रारंभिक अवस्था

जब मैं देहली रहने लगा और सार्वदेशिक तथा शुद्धि सभा दोनों संस्थाओं का काम करने लगा तो यह बात शहर में प्रसिद्ध होगई। इस प्रसिद्धि के बाद लगभग एक दर्जन गुम नाम पत्र, मेरे पास आये जिनमें से किसी में क़त्ल की धमकी दीगई थी, किसी में और प्रकार से हानि पहुँचाने की बात अंकित थी और किन्हीं में गालियों के सिवा और कुछ भी नहीं था। मैंने ऐसे पत्र जिस सुलूक के योग्य होते हैं, वही सुलूक उनके साथ किया अर्थात् रद्दी की टोकरी में, इन्हें आराम से रहने की जगह दीगई।

(२) मैं प्रातःकाल ५ बजे, भ्रमण करने के लिये, सदैव चला जाया करता था। देहली जाने पर वहां भी यही अमल जारी रहा। मैंने, देहली का निवास, जनवरी मास में, प्रारम्भ किया था, यह बात कही जा चुकी है। उन दिनों ५ बजे प्रातःकाल अच्छा खासा अंधेरा हुआ करता था। मेरे अनेक मित्रों और शुभ चिन्तकों ने मुझे सलाह दी कि मैं ५ की जगह ६½ या सात बजे भ्रमणार्थ जाया करूं। मैंने देहली में गुंडों से डर कर रहना सर्वथा अनुचित समझा। इसके सिवा आत्म विश्वास की भावना ने भी ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। इसलिये मित्रों और शुभचिन्तकों को धन्यवाद देते हुये, मैंने उन्हें स्पष्ट रीति से कह दिया कि मेरा समय विभाग, जो वर्षों से बना है, वह जैसा बन चुका है, यहां भी वैसा ही रहेगा। ऐसा करने में

जो भी कठिनतायें आवेंगी, मैं प्रसन्नता से उनका मुक़ाबिला करूंगा और विश्वास है कि वे मुझे, मेरे कार्यक्रम से, टस से मस नहीं कर सकेंगी। इस प्रकार मैं निश्चिन्त और बे खटके होकर, रहने और अपना सब काम. यथाक्रम करने लगा, मैं अक्टूबर से अप्रेल तक ७ मास देहली और मई से सितम्बर तक ५ मास रामगढ़ रहने लगा।

तैंतीसवां अध्याय

वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

वानप्रस्थाश्रम खोलने का विचार, ला० खुशीराम रिटायर्ड पोस्ट मास्टर लाहौर ने उठाया था। यह सज्जन १८९२ ई० के लगभग, कई वर्ष तक आर्य समाज बच्छोवाली लाहौर के मन्त्री रह चुके थे। मुझ से इनसे सब से पहली बार लाहौर ही में भेंट हुई थी। लाहौर छोड़ने के बाद इन्होंने कुछ काल तक गुरुकुल कांगड़ी में भी काम किया था और अंत में ये देहरादून रहने लगे थे और वहीं वानप्रस्थाश्रम खोलने का विचार उनके मस्तिष्क में चक्कर लगाने लगा था। परन्तु कुछ विचारों में भेद हो जाने से, वे इच्छा रखते हुए भी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सके। उसके बाद इस प्रस्ताव को, पुनर्जीवित करने और कार्य रूप देने के लिये, स्वर्गीय पं० तुलसीराम स्वामी अग्रसर हुए। उन्होंने अनेक लेख भी अपने मासिक पत्र "वेद प्रकाश" में लिखे। कई बार हरद्वार जगह तलाश करने के लिये गये भी, परन्तु सफलता नहीं हुई, और वे भी, इस प्रस्ताव को, क्रियात्मक रूप दिये बिना ही संसार से चल दिये।

सन् १९०६ ई० में जो बड़े संघर्षण का वर्ष था, कुछ समय मैंने इस काम के लिये निकाला। मैं देहली से हरद्वार गया, वहां पं० गंगाप्रसाद जी चीफजज टिहरी और एक और सज्जन

भी मिल गये। सब मिलकर हरद्वार, कनखल, मायापुर और ज्वालापुर में, उपयोगी भूमि की तलाश में घूमे। दिन का आधा समय निकल गया, उसके बाद ज्वालापुर की, इस भूमि को देखा और पसंद किया, जहां इस समय वानप्रस्थाश्रम है। कई जगह हमें मुफ़्त और कई जगह थोड़े दामों पर भूमि मिलती थी परन्तु हम ने तैकर रक्खा था कि पहले भूमि को देखेंगे और यदि वह आश्रम के लिये जल वायु आदि सभी दृष्टियों से उपयोगी हुई, तब सोचेंगे कि वह किस प्रकार मिल सकती है। जब यह ज्वालापुर वाली भूमि पसंद कर ली गई तब इसके ख़रीदने का प्रबन्ध किया गया। उसमें कुछ देर अवश्य लगा अन्त में वह मिल गई। सार्वदेशिक सभा की हालत उस समय डांवा डोल थी यद्यपि उसके भी सुधार का यत्न किया जा रहा था। इसलिये साथियों की इच्छा से भूमि का बैनामा, आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के नाम कराया गया। भूमि मिल जाने पर आश्रम खोल दिया गया। मेरे सिवा चार और सज्जनों ने अपनी अपनी कुटो बनवाई। शर्त यह रक्खी गई कि जब तक कुटी बनाने वाले जीवित रहें कुटी में रहें, मृत्यु होने के बाद कुटी आश्रम की हो जावेगी। इसी शर्त को स्वीकार करके हम सबने कुटी बनवाई थी। वानप्रस्थों के लिये दिनचर्य्या आदि बनाकर अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया जिससे वे अपना समय भली भांति ईश्वर-चिन्तन और सेवा आदि कार्यों में लगा सकें।

चौंतीसवां अध्याय

सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन (आर्य कां

स्वामी श्रद्धानन्द के वध के सम्बन्ध में यह बात भली भांति प्रमाणित हो चुकी थी कि एक षड्यंत्र रचा गया था। बड़े स्केल पर जो उन्होंने शुद्धि का काम प्रारंभ किया था और उनके इस कार्य से एक लाख से कुछ अधिक मुसलमान हिन्दू बन चुके थे यह बात सांप्रदायिक मुसलमानों को अच्छी नहीं लगी और इसलिये उन्होंने उपर्युक्त षडयंत्र रचा था। परन्तु पुलिस ने अपनी "मुजिरमाना लापरवाही से" अथवा किसी निहित नीति के वश होकर, इस षड्‌ यंत्र के परदा उघाड़ने का यत्न नहीं किया। इससे आर्य और हिन्दू जनता में रोष बढ़ने लगा। दूसरी ओर सरकारी कर्मचारियों ने आर्य समाज के नगर कीर्तनों के होने में बाधा पहुँचाना शुरू कर रक्खा था। इससे भी आर्यसमाजों में असन्तोष की मात्रा बढ़ रही थी। इन सब बातों पर विचार करने के बाद निश्चय किया गया कि सार्वदेशिक सभा की ओर से समय समय पर, एक आर्य सम्मेलन (आर्य कांग्रेस) किया जाया करे और उसमें, इन अन्यायों और ज्यादतियों के विरुद्ध सम्मिलित आवाज उठाई जाया करे। तदनुसार निश्चय हुआ कि ऐसा पहला सम्मेलन, देहली नगर में, संगठित किया जावे। यह सम्मेलन हुआ और उसी शान से हुआ जिसका वह

अधिकारी था। इस सम्मेलन में आर्य समाज के प्रत्येक विभाग के आदमी शरीक हुए थे। सम्मेलन ने जहां यह आवाज़ उठाई, कि स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के वध के सम्बन्ध में, पुलिस षड्यन्त्र का पता लगाने में असमर्थ रही या जान बूझकर उसने पता नहीं लगाया वहां यह भी निश्चय किया कि नगर कीर्तनों की रुकावटों को दूर करने के लिये यदि ज़रूरत हो तो सत्याग्रह किया जावे और इस सत्याग्रह के करने के लिए उसने निश्चय किया कि ५० हज़ार रुपये एकत्र किये जावें और १० हज़ार स्वयं सेवक भरती किये जावें।

सत्याग्रह के प्रस्ताव उपस्थित करने का उत्तरदायित्व

विषय निर्धारिणी सभा के सदस्यों तथा अन्य आर्य पुरुषों के आग्रह से, सत्याग्रह वाले प्रस्ताव को आर्य कांग्रेस में पेश करने का काम मैंने अपने ज़िम्मे लिया था। इस जिम्मेदारी को लेने से पहले मैंने स्वयं भी अच्छी तरह से समझ लिया था और जिन सज्जनों ने प्रस्ताव पेश करने का मुझ से आग्रह किया था उन्हें भी अच्छी तरह समझा दिया गया था कि, इस प्रस्ताव के उपस्थित करने का अर्थ यह है कि कम से कम १० हज़ार स्वयं सेवक भरती करने का उत्तरदायित्व मैं अपने ज़िम्मे लेता हूँ। धन तो काम के योग्य सदैव एकत्र हो ही जाया करता है, कठिन काम स्वयं सेवकों के भरती करने का था। प्रस्ताव का उपस्थित करना था कि मानों आर्य जनता में, उत्साह और प्रसन्नता की एक लहर दौड़ने लगी। लोग प्रस्ताव के विरुद्ध बोले। यद्यपि ऐसे पुरुष

३००० से अधिक प्रतिनिधियों में, दो-चार ही थे, तो भी उन्हें बोलना मुश्किल हो गया। आर्य जनता प्रस्ताव के विरुद्ध कुछ सुनने के लिये तय्यार न थी। महात्मा हंसराज ने, इस प्रस्ताव के विरोध करने में भूल की थी। प्रस्ताव पास हो गया।

गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव में आर्य समाज छोड़ने की घोषणा

सत्याग्रह करने के सम्बन्ध में जितना जोश आर्य जनता में था, दुःख है कि उतना जोश उसने धन और जन के एकत्र करने में नहीं दिखलाया। धन और जन एकत्र होते रहे परन्तु बहुत सुस्त चाल से।

गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव के अवसर पर, वहां के संचालकों ने, आर्य सम्मेलन के नाम से, एक सम्मेलन रक्खा था। आचार्य रामदेव जी, मेरे पास आये और उन्होंने सम्मेलन के प्रधान पद ग्रहण करने की, मुझ से प्रार्थना की। चूंकि आर्य समाज के मुख्य कार्य कर्ताओं में से, जिनमें रामदेव जी, एक थे, किसी ने, इस धन और जन के संग्रह करने में बहुत थोड़ा समय नाममात्र ही को लगाया था इसलिये सम्मेलन के प्रधानपद ग्रहण करने में संकोच हुआ। तब रामदेव जी ने प्रतिज्ञा की कि वे पंजाब, बम्बई और कलकत्ता जाकर, धन की पूर्ति कर देंगे। उनके ऐसा विश्वास दिलाने पर, मैंने सभापति पद ग्रहण करने का वायदा कर लिया। सम्मेलन हुआ, अन्य कार्यों के बाद जब सत्याग्रह के प्रस्ताव के समर्थन का

प्रस्ताव उपस्थित हुआ तब भी भाषण करने वाले तो बहुत आये परन्तु कुछ करने की घोषणा करने वाला एक भी प्लेट फ़ार्म पर नहीं आया। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ और दुखित होकर मैंने घोषणा की कि यदि दो मास के भीतर दस हजार आर्य वीर न भरती होगये तो मैं समझ लूंगा कि अब आर्य समाज में मेरे लिये स्थान नहीं है और मैं आर्य समाज छोड़ दूंगा। उपस्थित आर्यों ने मेरी इस घोषणा को बड़ी चिन्ता से सुना। उसी समय स्वामी ब्रह्मानन्द जी (आचार्य गुरुकुल भैंसवाल) ने घोषणा की कि "१००० स्वयं सेवक २ मास के भीतर मैं भरती कर दूंगा।" स्वामी परमानन्द जी (आचार्य गुरुकुल झज्झर) और पं० रामचन्द्र जी पुरोहित आर्य समाज चावड़ी बाजार देहली ने भी ऐसी ही एक एक हजार स्वयं सेवक संग्रह कर देने की घोषणा की। सम्मेलन इस प्रकार समाप्त हो गया। सम्मेलन के समाप्त होते ही उपर्युक्त तीनों सज्जनों तथा आम तौर से संयुक्त प्रान्त और पंजाब के आर्यों ने, आर्य वीर दल के भरती करने में बड़ा उत्साह दिखलाया। मुझे यह लिखते हुये हर्ष होता है कि अभी दो मास में, ५ दिन बाक़ी थे तभी मेरे पास सार्वदेशिक सभा के कार्यालय से सूचना मिली कि १०६०० आर्य वीर भरती हो चुके हैं। इन मासों में, जो प्रेम आर्य बन्धुओं ने मेरे साथ दिखलाया उससे मेरा हृदय बहुत प्रभावित हुआ। इसके लिये मैं उन सब का कृतज्ञ हूँ। दुख के साथ यह जरूर लिखना पड़ता है कि प्रो० रामदेव जी अपनी धन-सम्बन्धी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सके।

पैंतीसवाँ अध्याय

कशमीर की यात्रा

२५ जून १९२७ ई० को रामगढ़ से श्रीनगर के आर्य समाजों के उत्सव में शरीक होने के लिये, आर्य समाज हुजूरी बाग के निमन्त्रण पर, कशमीर की यात्रा शुरू की गई। २८ जून को रावलपिंडी पहुँचे। आर्य भाइयों के इसरार से २८ और २९ को वहाँ ठहर कर दो व्याख्यान देने पड़े। वहां स्वामी विरक्तानन्द और विशुद्धानन्द (शाहजहांपुरी) आदि पांच छै सज्जन और श्रीनगर जाने वाले मिल गये। ३० जून को प्रातःकाल रावलपिंडी से एक बस में बैठ कर यात्रा शुरू की गई। मरी पर्वत होते हुये सांयकाल बारह मूला पहुँचे। कशमीर की राजधानी श्रीनगर यद्यपि केवल ३० मील बाकी रह गई थी परन्तु पहाड़ों में, रात्रि में मोटरों के न चलने के नियम होने के कारण, रात में बारह मूला एक धर्मशाला में ठहरना पड़ा। पहली जुलाई को प्रातः काल ही चलकर ९ बजे श्रीनगर पहुंच कर आर्य मन्दिर हुजूरी बाग़ में निवास किया। दूसरी जूलाई का खाली दिन था, इसलिये शंकराचार्य पर्वत और वहाँ के मन्दिर तथा अन्य स्थानों की सैर की। तीसरी से उत्सव प्रारंभ हुये। आर्य समाज हुजूरी बाग, नागरिक आदि के उत्सव १० जूलाई तक रहे। इन दोनों में प्रचार करने के सिवा और कोई मुख्य कार्य्य नहीं

किया, छोटी छोटी बातें अवश्य सुनते और देखते रहे। उत्सव के बाद मुख्य मुख्य स्थानों की सैर की जिनका विवरण इस प्रकार है:—

गन्धर्व बल

श्रीनगर से गन्धर्व बल १३ मील है। दो शिकारे (छोटी नावें) श्रीनगर से गन्धर्व बल आने जाने के लिए ५) में किराया करके, श्रीनगर से हमारी पार्टी चलदी। गन्धर्व बल पहुँचकर, शिकारों को वहीं छोड़ा और २ मील पैदल चलकर वहाँ से "खीर भवानी" पहुंचे। वहां देवी के एक मन्दिर की सैर की। इस जगह यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालायें हैं और आवश्यक वस्तुओं की दूकानें भी हैं। ये दोनों स्थान स्वास्थ्यप्रद हैं। गन्धर्व बल निसबतन अच्छी जगह है परन्तु यहाँ ठहरने के लिए डेरों और छोलदारियों के सिवा कोई जगह नहीं है। अनेक पुरुष स्त्री वहाँ इन्हीं में ठहरे हुये मिले। 'खीरभवानी' से मानस बल ५ मील है यह एक झील और देखने योग्य है। रास्ते में लौटते हुये झील में पानी के ऊपर के खेत भी देखे और वहां से रास्ते में खाने के लिए, कुछ ककड़ी आदि फल भी खरीदे। ये जलीय खेत कशमीर की विशेषता है अन्यत्र कहीं नहीं देखे जाते।

शालामार और निशात बाग़

१२ जूलाई को शालामार और निशात बाग़ों की सैर की। रास्ते मे परी महल भी देखा गया। ये बाग़ अपूर्व और दर्शनीय

हैं। तरह तरह के फूल और फलों से दोनों बाग़ भरपूर हैं। पानी के झरनों और जगह जगह बने हुये फ़व्वारों का दृश्य सुहावना और हृदय ग्राही था।

रेशम का कारखाना

रेशम के सबसे बड़े राज्य वाले कारख़ाने के, अध्यक्ष जो एक कशमीरी पंडित और विद्वान् थे, बड़ी श्रद्धा से नित्य प्रति मेरे निवास स्थान पर आया करते और अनेक प्रकार की अपनी शंकाओं को निवृत्त किया करते थे। उन्होंने कारखाना देखने के लिये एक दिन हमें निमन्त्रित किया। हम सब १३ जूलाई को उस कारख़ाने को देखने गये। प्रबन्धक महोदय ने बड़ी कृपा से, कारखाने में होने वाले प्रत्येक कार्य को हमें बतलाया और उन्हें होते हुये दिखलाया भी। किस प्रकार कीड़े उत्पन्न किये जाते, किस प्रकार उनसे रेशम निकाला और बुना जाता आदि सभी बातें क्रियात्मक रूप में देखी गईं। पहले ये सब काम हाथ से किया जाता था परन्तु अब अनेक प्रकार की मशीनें मंगाई गई हैं और उनसे अच्छे प्रकार का रेशम तैयार होने लगा है। इन मशीनों के आने से कारख़ाने का पैदावार भी बढ़ गया है। मैंने यह आश्चर्य से सुना कि इस कारख़ाने के तैयार हुये रेशम की खपत इस देश में नहीं है किन्तु जितना भी माल तैयार होता है सभी बाहर, विशेष कर यौरुप में चला जाता है, हां मोटा माल यहाँ जरूर खप जाता है।

गुलमर्ग और अलपथरी

१४ जूलाई को गुलमर्ग के लिये हमारी पार्टी, जो अब

स्वामी सर्वदानन्द जी के आजाने से, दस बारह आदमियों की होगई थी, रवाने हुई। गुलमर्ग से ४ मील श्रीनगर की ओर तक बसें जाती हैं। जाते समय एक एक रुपया और लौटते समय दस दस आने प्रति व्यक्ति किराया देना पड़ा था। ४ मील पैदल चल कर हम सब गुलमर्ग पहुंचे और राज्य मन्दिर की ऊपरी धर्मशाला में ठहरे। मर्ग मैदान को कहते हैं। गुलमर्ग के अर्थ हुये फूलों का मैदान। सचमुच यह फूलों का मैदान ही था। फूल इतनी कसरत से वहां थे मानों यहां फूलों की खेती ही होती है। यहां के जंगल देखने योग्य हैं। सफ़ेदा और देवद्वार के ऊँचे ऊँचे पेड़ मानों आसमान से बातें करना चाहते हैं।

१५ जूलाई को खिलनवर्ग और अलपथरी की सैर की गई। गुलमर्ग से खिलन बर्ग ४ मील और वहां से अलपथरी ३ मील है। घोड़ों की सड़क के रास्ते से १२ मील का मार्ग होजाता है। अलपथरी पहाड़ की ऊँची चोटी है और उसपर जो विस्तृत सरोवर है वह वास्तव में दर्शनीय हैं। अलपथरी से खिलन वर्ग तक वर्फ के ऊपर से फिसल कर आना बड़ा मनोरंजक है। फिसलाने वाले कुली. यह काम बड़ी चतुरता से करते हैं। फिसलकर आने वालों का रास्ते में. हँसते हँसते पेट फूल जाता है। कुवर चांदकरण शारदा और पं० धुरेन्द्र शास्त्री आदि युवकों का वर्फ की गेंद बना बनाकर एक दूसरे को मारने का खेल बड़ा मनोरंजक था।

वटमज़ार

निशातबाग़ जाते हुये रास्ते में झील के एक किनारे एक

बड़ा लम्बा चौड़ा ऊँचा चबूतरा है। हमारे नावकों ने बतलाया कि इसे बटमज़ार कहते हैं परन्तु वे नहीं बतला सके कि यह बटमजार आखिर है क्या ? इसके जानने के लिये, लोगों से पूछताछ की गई और राजकीय पुस्तकालय में, कशमीर के इतिहास के सम्बन्ध में, राजतरंगिनी से लेकर जितने भी इतिहास ग्रन्थ थे चाहे वे किसी भाषा में थे, उनको कई दिन व्यतीत करके देखडाला। इन सब से जो बात मालूम हुई वह यह है कि कशमीर में सिकन्दर तातारी का, जो चंगेज़खां के घराने में था, राज्य होगया। यह तातारी मज़हब रखता था जिसमें कुछ बातें हिन्दू और बुद्ध धर्म से मिलती जुलती थीं और कुछ बातें उनकी अपनी थीं। सिकन्दर को हिन्दू धर्म अच्छा लगा और उसने श्रीनगर के विद्वानों से कहा कि उसे हिन्दू बनालिया जावे, परन्तु उन्होंने, अपनी चिरकालीन अथवा मौरूसी बेसमझी का अनुकरण करते हुये, उसे हिन्दू बनाने से इन्कार कर दिया। वह इससे अप्रसन्न हुआ और बुलबुलशाह एक मुसलमान फ़क़ीर की प्रेरणा से मुसलमान होगया। असुभटभी एक नौमुसलिम अछूत था, उसको उसने अपना वज़ीर बना लिया। इन दोनों ने मिलकर हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये। उन अत्याचारों में से एक यह भी था कि ब्राह्मणों के गले में पत्थर बांध बांध कर उन्हें, उपर्युक्त झील के किनारे की ओर डुबो दिया गया। इस प्रकार उनकी लाशों की बहुतायत से यह चबूतरा सा बन गया और इसे बट (भट्ट-ब्राह्मण) मज़ार (क़ब्र) अर्थात् ब्राह्मणों की क़ब्र कहने लगे।

कशमीर से वापसी

अभी कशमीर की यात्रा का श्रीगणेश ही हुआ था कि श्रीगर लौटने पर, देहली से, सार्वदेशिक सभा के कतिपय कार्य कर्ताओं की ओर से, भेजा हुआ तार मिला कि "आर्य समाज बरेली में मुसलमानों ने झगड़ा किया है और पुलिस ने समस्त मन्दिर पर क़ब्ज़ा कर रक्खा है। इसलिये मुझे बरेली जाकर उचित कार्य करना चाहिये।" ऐसा तार मिलने पर, सैर करने को, कैसे जी चाह सकता था, इसलिये मैं १६ जुलाई को प्रातःकाल ही, साथ के व्यक्तियों को सैर पूरी करने के लिये, वहीं छोड़कर, श्रीनगर से देहली के लिये चल दिया। मार्ग में रात होगई और मोटर एक उजाड़ जगह में आकर खड़ी होगई। वहां एक मात्र एक कृषक सिक्ख की झोंपड़ी थी। उसके आग्रह से वहीं उसके घर भोजन किया। मक्का की रोटी और शलग़म का शाक। कहा नहीं जा सकता कि वह भोजन मेरे लिये कितना रुचिकर था। उसी कृषक भाई ने एक चारपाई भी वहीं उस खुले मैदान में डाल दी जिसपर आराम के साथ मैं सोगया। प्रातः होते ही वहां से चलकर १० बजे दिन के रावलपिंडी पहुँचा और वहां से उसी समय पंजाब कलकत्ता मेल से देहली के लिये रवाने होगया।

छत्तीसवां अध्याय

बरेली में पुलिस का अत्याचार

देहली पहुंचने पर, बरेली के प्रसिद्ध आर्य नेता, डाक्टर श्यामस्वरूप जी सत्यव्रत बरेली से तथा सार्व० सभा के कार्यकर्ताओं से भेंट होकर बरेली के हालात मालूम हुये। ताज़िया निकालने के सम्बन्ध में, पुलिस और मुसलमानों के एक भाग का झगड़ा था। मुसलमानों का दूसरा भाग पुलिस के साथ था। पुलिस का विरोधी मुसलिम भाग बड़ा और प्रभाव शाली था। जब ताज़िये कुतुबख़ाने के क़रीब पहुंचे तो झगड़ा व्यक्तरूप में आगया था और पुलिस को भय था कि आपस में मुसलमानों या पुलिस और मुसलमानों के मध्य झगड़ा शुरू हो हुआ चाहता है। सायंकाल के बाद का समय और इतवार का दिन था इस लिये आर्य समाज मन्दिर बिहारीपुर में समाज का साप्ताहिक सत्संग हो रहा था। आर्य समाज मन्दिर एक गली में और मुख्य सड़क से, जिसपर से ताज़िये का जुलूस जा रहा था, एक फ़रलांग के फ़ासिले पर था। किसी हालत में वहां के किसी भी कार्य की आवाज़ जुलूस तक नहीं पहुँच सकती थी। मुसलिम कोतवाल ने जो जुलूस के साथ था, जब देखा कि झगड़ा हुए बिना बच नहीं सकता तो उसने बड़ी चालाकी और शरारत से, मुसलमानों से स्वयं कहा और अन्य

दूसरों से कहलवाया कि तुम मुसलमान आपस में लड़ते हो और तुम्हारी इस लड़ाई का फ़ायदा उठाकर, आर्य समाजी लोग जलसा करके तुम्हारी और इसलाम की तौहीन कर रहे हैं। भीड़ की मनोवृत्ति (Mob Psychology) कोसब जानते हैं कि इस प्रकार को थोड़ी भी उत्तेजना से, बदली जाती है। जुलूस के साथी मुसलमान उत्तेजित हो उठे और उनमें से सैकड़ों मुसलमान जिनके साथ स्वयं कोतवाल भी था आर्य समाज मन्दिरकी तरफ़ चल दिये। वहां साप्ताहिक सत्संघ में कुल बीस पच्चीस आदमी थे। कोतवाल के सामने ही, उस भीड़ ने, आर्य समाज मन्दिर का फाटक तोड़ डाला और मन्दिर में घुसकर प्रत्येक प्रकार के अपमानजनक काम किये। स्वयं कोतवाल भी जूता पहने हुये ही वेदी पर चला गया जहां हवन हो चुका था। इस प्रकार पुलिस ने, शरारत से अपने और मुसलमानों के झगड़े को बचाने के लिये, सर्वथा अनुचित रीति से मुसलमानों का आर्यों से झगड़ा करा दिया। इस झगड़े के बाद पुलिस ने आर्य मन्दिर पर क़बजा कर लिया और ३-४ कौन्स्टेबिल का वहां पहरा लगा दिया। वे कान्स्टेबिल वहीं रहने भी लगे थे। इन हालात के मालूम होने पर मैंने डाक्टर श्यामस्वरूप जी को बरेली भेज दिया और मैंने देहली में अपने साथियों से सलाह की जिनमें कई कानून जानने वाले भी थे। इस प्रकार आवश्यक सलाह लेने के बाद मैं भी बरेली चला गया।

आर्य्य मन्दिर को पुलिस से खाली कराना

जब मैं आर्य समाज मन्दिर में पहुँचा और पुलिस के सिपाहियों को देखा तो मैंने घोषणा कर दी कि जब तक पुलिस के सिपाही मन्दिर से निकाल न दिये जावेंगे मैं भोजन न करूंगा। इस पर उसी कोतवाल के भेजे हुए आदमी आये और उन्होंने मुझ से कहा कि सिपाही तो केवल मन्दिर की रक्षा के लिये नियुक्त हैं। मैंने उत्तर दिया कि हम में अपने मन्दिर की रक्षा की सामर्थ्य है हम पुलिस की सहायता नहीं चाहते। इस पर मेरे समाज मन्दिर में पहुंचने के चार घंटे के भीतर ही भीतर पुलिस वहाँ से हटा दी गई तब मन्दिर में नियम पूर्वक हवन कराने के बाद मैंने भोजन किया। मन्दिर में अब दैनिक हवन आदि यथापूर्वक फिर होने लगे, फाटक भी नया बन गया। पूरा यत्न किया गया कि कोतवाल को उसके दुष्कृत्यों का दंड मिले। आन्दोलन करने से वह बरेली से बनारस की ओर बदल दिया गया और सुना गया कि वहाँ जाते ही उसकी मृत्यु हो गई।

बिहार का भ्रमण और मुख्य मुख्य घटनायें

आर्यवीर दल का संगठन करने और आर्यों के अन्दर अनुशासन में रहने की योग्यता लाने आदि के लिये बिहार के कतिपय स्थानों पर प्रचार किया गया। प्रचार करते हुये कुछेक उल्लेखनीय बातों का ज्ञान हुआ और वे इस प्रकार हैं:—

(१) मोतीहारी के समीप लौरिया में चाणक्य का प्रसिद्ध

टीला है और यही चाणक्य का निवास स्थान बतलाया जाता है वहाँ अशोक का एक स्तूप भी है। तत्कालीन भाषा में लौरिया स्तूप ही को कहते थे। उस स्तूप के कारण इसलिये इस जगह का नाम भी लौरिया हो गया। यह स्थान बेतिया से कुछ आगे है।

(२) पिप्पली कानन (Pipra Ry. Station B.N:W. Ry.) चन्द्रगुप्त का जन्म स्थान है।

(३) शाक्य नसल के मनुष्य, जिसमें बुद्ध का जन्म हुआ था, आज कल थारू कहलाते हैं। ये लोग बहुसंख्या में बेतिया सब डिविजन में आबाद हैं। कपिल वस्तु चम्पारन और गोरखपुर के मध्य में है। बैसाली हाजीपुर प्रसिद्ध रेलवे स्टेशन के समीप है और कुशि नगर बुद्ध का मृत्यु स्थान गोरखपुर के कसिया सब डिविजन में हैं।

इन स्थानों के देखने से भारत के प्राचीन गौरव की एक झलक आंखों के सामने आ जाती है, और चित्त में एक विशेष प्रकार के भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

(४) राँची से २६ मील फासले पर झरना (Fall) है इस झरने का नाम कटरू है। यह झरना पहाड़ से निकल कर सुबर्ण रेखा नदी में गिरता है। कहा जाता है कि दुनियाँ में यह दूसरे दरजे का झरना है।

(५) राँची से ४६ मील के फ़ासले पर लोहरदग्गा जंगली जातियों का केन्द्र है। यहां उरांव, लुहरा, महली, आदि जातियां बसती हैं जिन में प्रधानता उरांवों की है। इन लोगों का प्रधान

व्यवसाय खेती है। ये बड़े ईमानदार और सच्चरित्र होते हैं। इन में शराब पीने और भूत-प्रेत मानने का रिवाज है।

साथ ही जगन्नाथ की भी पूजा करते हैं। होली मनाते हैं इन की भाषा में उसे "सरहुल" कहते हैं। ये होली को चैत और वैसाख में मनाते हैं। इस जाति के लोग अपने को नागवंशी क्षत्री कहते हैं। तीर-कमान उनका मुख्य हथियार है। विशेष २ अवसरों पर स्त्री और पुरुष मिलकर नाचा करते हैं। मरे पितरों का श्राद्ध नहीं करते व्यभिचारी पुरुष भेद खुलने पर मार डाला जाता है। चावल और दाल साधारणतया इनके भोज्य पदार्थ हैं माँस सब प्रकार का खा लेते हैं। जब इनका कोई आदमी ईसाई हो जाता है तो इसकी शुद्धि एक सफेद मुर्ग काटकर कर लेते हैं। नर बलि की प्रथा भी इनमें प्रचलित है। इनकी आबादी ३६ लाख है। ८२ वर्ष से ईसाई मिशन इनके भीतर काम कर रहा है। ४ लाख के लगभग ईसाई हो चुके हैं।

आर्य समाज का मिशन

उराव जाति के लोगों में एक वर्ष से आर्य्य समाज का मिशन काम करता है। दो रात्रि पाठशालायें खोल दी हैं। एक छात्रावास (बोर्डिङ्ग हाउस) जिसमें ३६ लड़के रहते हैं, स्थापित है। जिसमें लड़के नियम से सन्ध्या, हवन करते हैं। ये लोग अब गाय का मांस खाना छोड़ रहे हैं। १० हजार उरवों ने मांस खाना और शराब पीना छोड़ दिया है।

इन लोगों के मध्य, आर्य समाज का सफलता पूर्वक कार्य

होते देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आर्य समाज का यह काम असली और ठोस काम है।

मेरठ के ज़िले में शुद्धि का काम

१६ मार्च १६२८ ई० को मेरठ ज़िले के शेरपुर ग्राम में ५ पुरुष, ४ स्त्री और ४ बच्चों की शुद्धि हुई। यह शुद्धि एक मूले जाट परिवार की थी। मुसलमान थानेदार की रिपोर्ट पर, सब डिवीजनल आफीसर ने जो एक अंगरेज़ था, दफे १४४ जाब्ते फौजदारी का नोटिस जारी कर दिया कि ग्राम में कहीं १० आदमी से अधिक जमा न हों। मैं वहां रात्रि ही में शुद्धि से पहले पहुँच गया था। चौधरी मामराजसिह जी रईस शामली (मुज़फ्फरनगर) भी मुझसे पहले वहां पहुँचे हुए थे। मेरी सलाह से इस शुद्धि के कार्य को चौधरी साहिब ने अपने हाथ में ले लिया और शुरू से अन्त तक कार्य-क्रम बना लिया गया। स्त्रियों की शुद्धि तो प्रातःकाल होते ही घर में कर दी गई। पुरुषों की शुद्धि का प्रबन्ध, ग्राम से बाहर जंगल में एक बड़े बाग़ में किया गया था, जहां १५ हज़ार से अधिक मनुष्य एकत्र हो गये थे। उस सब डिवीजनल आफीसर को भी विशेष निमन्त्रण देकर बुला लिया गया था। उसके सामने ही शुद्धि का सब कार्य किया गया। शुद्धि के बाद प्रथम चौ० मामराजसिंह ने, उसके बाद मैंने संक्षिप्त सा व्याख्यान दिया। हमने कहा कि आर्य समाज समस्त पृथ्वी निवासियों का एक विशाल परिवार बनाना चाहता है, जिसमें न कोई छोटा हो न बड़ा। सब भाई

भाई की तरह मिल कर शान्ति के साथ रहें। संसार में शान्ति बढ़ाने ही के लिये आर्य समाज शुद्धि करना चाहता है। सब डिवीजनल औफीसर को हम लोगों की बातें बहुत अच्छी लगीं और इस बात को वह अपनी गरदन हिला हिलाकर प्रकट कर रहा था। अन्त में मैंने लोगों से बल पूर्वक शुद्धि का विस्तार करने की अपील की जिससे शीघ्रातिशीघ्र दुनिया में शान्ति का विस्तार हो। इस प्रकार शुद्धि का कार्य समाप्त हुआ। अन्त में सब डवीजनल आफीसर से कहा गया कि जो लोग यहां आये हैं वह ग्राम में भोजन करने के लिये आपके हुक्म के अनुसार नहीं जा सकते क्योंकि इनकी संख्या १० से बहुत अधिक है। इस पर उसने दफा १४४ का नोटिस वापिस कर लिया और सब लोग ग्राम में चले गये। पुलिस का सबइन्स्पेक्टर जो एक गाड़ी भर कर सिपाही और हथकड़ी लाया था, मुंह ताकता ही रह गया।

बहालसिंह चौकीदार

बिजनौर के जिले में धामपुर एक बड़ा तिजारती क़सबा है वहां बहालसिंह गूजर पुलिस की चौकी का एक सिपाही था जो रातों को पहरा दिया करता था। मुझे इससे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह दृढ़ आर्य था परन्तु वे पढ़ा लिखा, अपना नाम भी नहीं लिख सकता था। उसके हृदय में धर्म प्रचार को बड़ी लगन थी। अपनी इच्छा पूर्ति के लिये, उसने रातों में पहरा देते हुये यह कहना शुरू किया कि "५ हज़ार वर्ष के सोने

वालो जागो।" दिन में जब लोगों ने उससे पूछना शुरू किया कि तू यह क्या कहा करता है कि ५ हजार वर्ष के सोने वालो जागो? तब उसने उत्तर देना शुरू किया कि यह बात सत्यार्थ प्रकाश से मालूम होगी। इस प्रकार उसने सैकड़ों सत्यार्थ प्रकाश, जब उसकी कीमत २।।) थी मँगा दिये। जब वह देखता था कि १५-२० लोग सत्यार्थप्रकाश पढ़ पढ़ कर आर्य बन गये तब किसी शिक्षित आर्य को बुलाकर यहां आर्य समाज की स्थापना करा देता था। बिजनौर के जिले में वह चार जगह रहा था और चारों जगह, उसने इसी प्रकार से समाज स्थापित करा दिये। सच है आदमी के भीतर यदि लग्न हो तो वह सब काम कर सकता है। मैंने अन्तिम बार इस महापुरुष को १६२४ ई० में किसी समय चांदपुर में देखा था। चांदपुर के करीब ही वह किसी ग्राम में रहा करता था। मेरे वहां पहुँचने का हाल सुनकर मिलने चला आया था।

सैंतीसवां अध्याय

साहित्य सम्बन्धी काम

अबतक छोटे बड़े सात ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे जिनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) म० इन्द्रमणि के शिष्य ला० जगन्नाथ के, वेद भाष्य सम्बन्धी आक्षेपों के उत्तर

(२) म० जगदम्बाप्रसाद के ट्रेक्ट, मैंने इसलाम क्यों ग्रहण किया, का उत्तर

(३) वेद और प्रजातन्त्री राज्य व्यवस्था

(४) प्रयाग महिला विद्यापीठ का भाषण

(५) आत्मदर्शन

(६) वर्णव्यवस्था सम्बन्धी आक्षेपों के उत्तर

(७) शूद्र वर्ण के कर्तव्य और अधिकार

इसके बाद, अनेक सज्जनों की प्रेरणा पर, एक ऐसे ग्रन्थ के लिखने का विचार किया कि जिसके पढ़ने से, किसी सम्बन्धी की मृत्यु होजाने के बाद शान्ति उपलब्ध हो सके। इसी विचार से मृत्युरहस्य नामक पुस्तक लिखी गई परन्तु फिर उसे बढ़ाकर उसका नाम "मृत्यु और परलोक" रक्खा गया। यह आठवां ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ को जनता ने इतना अपनाया कि अब (१६४० ई०) तक उसके १७ संस्करण निकल चुके हैं।

(९) वैदिक सन्ध्या रहस्य (सन्ध्या की व्याख्या)

(१०) प्राणायाम विधि

कलकत्ता यूनिवर्सिटी से सम्बन्धित कौलिजों के इन्सपेक्टर श्रीयुत एच० सी० मुकरजी एम० ए० पी० एच० डी०, ने अंत के दो ट्रैक्टों को, कालिजों में प्राणायाम प्रचलित करने के लिये मुझ से मँगाया था। विश्वास है कि उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ किया होगा। वैज्ञानिक रीति से प्राणायाम की व्याख्या करने का फल यह जरूर हुआ कि शिक्षितों का ध्यान प्राणायाम से लाभ उठाने की ओर हुआ--

लाहौर में भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन

आर्य कुमार सभाओं की उपयोगिता की ओर आर्य समाज ने बहुत थोड़ा ध्यान दिया। उसीका फल यह है कि आर्य कुमार सभाओं को जिस प्रकार फूलना फलना चाहिये था वह हालत उनकी दिखलाई नहीं देती। अवश्य एक आर्य कुमार सभा बड़ौदा राज्य की है जिसके लिये कहा जा सकता है कि उसने बड़ौदा की आर्य प्रतिनिधिसभा का रूप, उन्नत होते हुये धारण कर रक्खा है, अन्य प्रायः सभी कुमार सभायें टूटे फूटे हाल से चल रही हैं। इनको उन्नत अवस्थाओं में पहुँचाने की ओर से, अवहेलना करना मेरी दृष्टि में एक अपराध है, जो आर्य समाजों और आर्यों की ओर से हो रहा है। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् ने जबयह तै किया कि उसका आगामी सम्मेलन लाहौर में हो तो उसने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उस सम्मेलन के

सभापति पद को ग्रहण करूं। मैंने उन्हें, उत्साहित करने की दृष्टि से, उनकी बात मानली। जो भाषण प्रधान पद के आसन से, उस सम्मेलन में दिया था उसे लाहौर के कुमारों ने कुछ उपयोगी समझकर पुस्तक रूप में छापकर प्रकाशित किया था। सम्मेलन सफलता के साथ समाप्त होगया।

साम्यवाद का पूर्व रूप

रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत वहां की प्रजा दो भागों में विभक्त थी। एक धनी और कुलीन जिन्हें पैटरीशियन (Patrician) कहते थे और दूसरी साधारण ग़रीब आदमी जिन्हें प्लेबियन (Plebeian) कहा जाता था। ज़माने के उलट फेर से, धनी स्वामी और साधारण पुरुष दास के रूप में परिणत होगये।

दासों पर अत्याचार

अमीर लोग जिन्होंने स्वामित्व ग्रहण कर लिया था, दासों पर तरह तरह के अत्याचार करने लगे। उनमें से कुछ के उदाहरण रूप में यहां अंकित किये जाते हैं:—

(१) यह दास मनोरंजनार्थ शेरों से लड़ाये जाते थे और जब शेर उन्हें मार डालता था, तो इससे वे अमीर लोग बहुत खुश होते थे।

(२) धनी लोग जब शिकार से वापिस आते थे तो दासों का बध कराके, उनके खून से अपने पांव धोया करते थे।

(३) शारलुअर (एक धनी) छत पर काम करते हुये, राज को गोली मार देता था और जब वह छत से गिरता था तो वह अपना मनोरंजन समझता था।

(४) नीरो ने केवल तमाशा देखने के लिये नगर में आग लगवा दी थी। इन अत्याचारों से बचने के लिये दासों और ग़रीब लोगों ने, अपना एक संघ बनाया जिसे भ्रातृ संघ (Brotherhood) कहते थे। इसकी शाखायें अलेकज़ेन्डरिया, जेरोशलीम आदि में स्थापित होगई थीं। इनके सदस्य इकट्ठा भोजन करते थे, एक जैसे वस्त्र पहनते थे। और जो धन कमाकर लाते थे वह एक ही सम्मिलित कोष में जमा होता था। ईसा (Christ) भी, इसी प्रकार के एक संघ का मेम्बर था, जिसका मुख्य स्थान जेरोशलीम था। इस प्रकार के, ईसा के जीवन सम्बन्धी, अनेक हालात थे जो एक पुस्तक में छपे थे जिसका नाम Crucifixion by an eye witness था। यह पुस्तक मुझे, पहले केवल ३ दिन के लिये, मिली थी। पढ़ने के बाद प्रतीत हुआ कि उसमें अंकित हालात बिलकुल नये हैं और कई बातों में वह बाइबिल में गैप को पूरा करते हैं। इसलिये मैंने उसका भाषानुवाद हिन्दी में करके, ईसा के जीवन चरित्र के नाम से प्रकाशित करा दिया था। यह मेरे लिखे ग्रंथों में, बारहवां पुस्तक था।

अट्ठाईसवां अध्याय

सन् १९२९ ई० की मुख्य मुख्य घटनायें

१४ वीं फ़रवरी १९२९ ई० बसंत पंचमी (जन्मदिवस) के अवसर पर, विचार करने से, अपनी त्रुटियां इस प्रकार प्रकट हुईं:—

(१) शारीरिक अवस्था को उन्नत करने पर कम ध्यान दिया गया। इस कमी को पूरा करना चाहिये। आँखों की चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है।

प्रायश्चित्त सम्बन्धी नियम

एक बार भूल करके, प्रकट होजाने पर, वह फिर न दुहराई जा सके इसके लिये निश्चय किया गया कि प्रत्येक छोटी सी छोटी भूल का भी, कुछ न कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये।

कथा प्रणाली

(३) प्रचलित प्रचार प्रणाली दूषित है, इसे कथाओं द्वारा परिवर्तित करने का यत्न करना चाहिये।

वर्ष की मुख्य मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं: —

पं० इन्द्र का पुनर्विवाह

(१) पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के पुनर्विवाह करने पर देहली

में कुछ आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन का प्रारंभ आर्य महिलाओं से हुआ था। यह आन्दोलन शायद न होता यदि यह विवाह और कुछ दिनों के बाद होता। जो कुछ हो इस आन्दोलन के दो पहलू थे, एक अच्छा दूसरा बुरा। अच्छा पहलू तो यह था कि आर्यों और आर्य महिलाओं में यह उच्च भाव मौजूद है कि आदर्श से गिरा हुआ कोई काम नहीं होने देना चाहिये। बुरा यह था कि जब स्त्री या पुरुष विवाह की जरूरत अनुभव करते हैं तो उसे रोकना या उसमें विघ्न डालना सर्वथा अनुचित है। इस विषय में चिरकाल से मेरी सोची और विचार की हुई सम्मति यह है कि चाहे पुरुष क्षत वीर्य हो और चाहे स्त्री क्षत योनि, परन्तु यदि वे विवाह के इच्छुक हों तो उन्हें, बिना किसी संकोच के, विवाह करने की अनुमति दे देनी चाहिये।

लाहौर की पार्टी बन्दी

(२) लाहौर की कौलिज पार्टी के सम्बन्ध में, यह जानकर दुःख हुआ कि इस पार्टी के कुछ सज्जन असंदिग्धशब्दों में यह स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं कि मांस भक्षण वेद विरुद्ध और पाप है।

गुरुकुलोत्सव में जाने से इन्कार

(३) प्रोफ़ेसर रामदेव जी ने, म० कृष्ण के साथ आकर अपने गुरुकुलोत्सव में शरीक़ होने का निमन्त्रण दिया परन्तु रामदेव जी से यह बात साफ़ तौर से कह दी गई कि उन्होंने

प्रतिज्ञा करके रक्षा निधि के लिये धन संग्रह नहीं किया इस लिये, अपनी इस घटना से, अप्रसन्नता प्रकट करने के लिये मैं इस वर्ष उनके उत्सव में शरीक़ न होऊँगा, तदनुकूल मैं शरीक़ नहीं हुआ।

कोटा राज्य और अछूत

(४) आर्य समाज बारां (कोटा राजस्थान) के उत्सव में शरीक़ होने के सिलसिले में, कोटा राज्य की भीतरी अवस्था जानने का अवसर मिला। अन्य बातों के साथ, एक बात यह भी मालूम हुई कि उस राज्य में कोई दलित जाति का आदमी गाय या भैंस नहीं पाल सकता, न घृत की कढ़ाई अपने घरों में चढ़ा सकता है। उनके विवाह तथा अन्य उत्सवों के सिल-सिले में भी यह नियम कठोरता के साथ पालन किया जाता है। पता नहीं हिन्दू जाति का कभी सुधार होगा या इसे नष्ट ही होना है। कोटा के राजा साहिब एक शिक्षित व्यक्ति हैं और कई बार विलायत भी हो आये हैं। हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि होकर लीग आफ नेशन्स (League of Nations) में भी जा चुके हैं परन्तु इस भले आदमी को यह नहीं दिखलाई देता कि उसके राज्य में, दलितों पर कितना अत्याचार हो रहा है।❀

प्रादेशिक सभा का सार्वदेशिक सभा में प्रवेश

(५) पंजाब की कौलिज पार्टी की प्रादेशिक सभा के सार्व-

❀ यह सन् १९२९ ई० की बात है। सम्भव है अब इन बातों में से कुछ का सुधार होगया हो।

देशिक सभा के साथ सम्बन्धित होने के सिलसिले में लाहौर जाना पड़ा। श्री पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा (अमृतधारा) के घर ठहरा। पहले कौलिज पार्टी का डिपुटेशन, जिसमें महात्मा हंसराज, रायबहादुर दुर्गादास जी आदि सम्मिलित थे, मिला। उन्होंने इस बात को असन्दिग्ध रीति से प्रकट किया कि हम, हमारे समाज और हमारी (प्रादेशिक) सभा, मांस खाने को वेदानुकूल नहीं समझती है; परन्तु हम मांस खाने वाले को असदाचारी कहने या मानने के लिये तय्यार नहीं हैं। उसके बाद राय बहादुर बद्रीदास तथा कुछेक अन्य सज्जन गुरुकुल पार्टी के डिपुटेशन के रूप में मिले। राय बहादुर बद्रीदास जी ने तो बड़ी सरलता से यह कह दिया कि यदि स्वामी जी (मैं) कह दें तो हम इसमें कुछ भी उज्र न करेंगे कि प्रादेशिक सभा का सम्बन्ध सार्वदेशिक सभा से होजावे परन्तु उनके साथ के दो सज्जनों ने आग्रह किया कि मांसभक्षी सदाचारी न समझा जावे। यह दुःख की बात है कि दोनों ओर कुछेक आदमी ऐसे हैं जिस के कारण पार्टीबन्दी खत्म नहीं होने पाती और यह और भी दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे लोगों का पंजाब के आर्य समाजों में रसूख है।

मधु का ऋग्वेद भाष्य

(६) प्रयाग में पता चला कि श्री मध्वाचार्य का ऋग्वेद पर झल्लार्य्य भाष्य है और आर्य भाषा बुकडिपो, कुम्भकोनम (मद्रास) से मिल सकता है परन्तु पत्र लिखने से उत्तर कुछ नहीं प्राप्त हुआ।

संन्यास की दीक्षा

(७) अनूपशहर में श्री भजनानन्द बानप्रस्थ ने ५ दिन पूर्ण यजुर्वेद से यज्ञ कराके संन्यास आश्रम में प्रवेश किया।

आत्म दर्शन का तीसरा संस्करण

(८) आत्मदर्शन का संशोधन करके तीसरा संस्करण छापने के लिये म० गजराजसिंह-आर्य-पुस्तकालय जौनपुर के पास भेजा गया।

१३ वां पुस्तक

(९) स्वर्गवासी पं० घासीराम के आग्रह से एक पुस्तक "वैदिक धर्म क्यों ग्रहण करना चाहिये?" लिखकर छापने के लिये उनकी सेवा में भेजा गया। वे यू० पी० सभा के प्रकाशन विभाग के उस समय अधिष्ठाता थे। यह १३ वां पुस्तक था, जो आर्य साहित्य की वृद्धि के लिये लिखा गया।

आँखों की चिकित्सार्थ मोगा जाना

(१०) अगस्त १९२९ ई० में आँखों में रोहे हो जाने के कारण, चिकित्सार्थ मोगा गया। डाक्टर मथुरादास ही के यहां ठहरा। डाक्टर साहिब के आग्रह से एक सप्ताह वहां ठहरना पड़ा और प्रतिदिन सायंकाल उपनिषद् और वेदों की कथा करता रहा। आँखों के लिये डाक्टर साहिब ने दो ऐनकें मंगाकर दीं एक प्रति समय लगाने के लिये और दूसरी पढ़ने के लिये और एक सुरमा रात्रि में लगाने के लिये दिया।

डाक्टर साहिब ने मोगा में कौलिज, हाई स्कूल और आर्य कन्या पाठशाला खोल रखी है। डाक्टर साहिब की विनय शीलता अनुकरणीय है।

ऐबटाबाद की यात्रा

(११) लाला ज्ञानचन्द ठेकेदार देहली सच्चे आर्य धर्म भाव पूर्ण और अच्छे स्वाध्यायशील व्यक्ति हैं। उनके एक मात्र सुयोग्य पुत्र श्री विद्याधर का जिन्होंने समस्त घर का काम सम्भाल लिया और क्रियात्मक रूप से उन्हें घर के कामों से निश्चिन्त कर दिया था, संक्षिप्त सी बीमारी के बाद ऐबटाबाद में देहावसान हो गया। मैं उस समय रामगढ़ था। ला० ज्ञानचन्द जी ने एक बड़ा दुख से भरा हुआ मर्म भेदी पत्र लिखा और इच्छा प्रकट की कि मैं कुछ दिनों के लिये ऐबटाबाद आऊँ। इन हालात में मुझे ऐबटाबाद जाना पड़ा। मैं ६-९-२९ को ऐबटाबाद पहुंचा और १९ को वहां से वापिस चल दिया। ऐबटाबाद पहुंचने में बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा, अतिवृष्टि ने रेल की सड़क और अन्य रास्तों के पुल तोड़ दिये थे, दो जगह की घटना उल्लेख करने योग्य है :—

(क) रावलपिंडी से हवेलियन की रेल बन्द होने के कारण हसन अबदाल जाना पड़ा। वहां से हवेलियन पहुंचने के लिये हरिपुर जाना पड़ा, हसन अबदाल से थोड़ी ही दूर पर एक पहाड़ी नदी बड़े वेग से बह रही थी, सड़क का पुल टूट चुका था। हम एक और मुसाफिर भाई के साथ तांगे पर जा रहे थे। नदी

पार करने के लिये तांगे वाले ने तांगे को नदी में डाला। पानी के वेग से घोड़ा और तांगा दोनों बहने लगे। तांगे वाले ने बड़ी मुश्किल से तांगे को रोका। साथी मुसाफिर का कुछ असबाब बह गया और हाथ नहीं आया। मेरा बिस्तरा भी बह चला था परन्तु मैंने उसे पकड़ कर फिर तांगे में रख लिया। बड़ी कठिनता से नदी को पार करके हरिपुर पहुंचे।

(ख) हरिपुर से एक बस में सवार होकर हवेलियन पहुंचे। हवेलियन से ऐबटाबाद जाने वाली सड़क का पुल भी बीच में टूट गया था, इधर उधर के हिस्से बाकी थे। यह पुल नदी से ५० फीट से कुछ अधिक ही ऊँचा था, नदी पार नहीं की जा सकती थी। इसलिये एक झूला बनाया गया था जो पुल के एक टूटे किनारे से दूसरे टूटे किनारे तक पहुंचने का साधन था। झूला ऊपर की ओर रस्सी से बंधा था और रस्सी को ढील देने से झूला बीच के टूटे भाग को पार करके दूसरे टूटे किनारे पर पहुंच जाता था। झूले को चलाने के लिये उसे धक्का देना पड़ता था। जब इस झूले पर बैठने की हमारी बारी आई तो रस्सी को ढीला करने वालों और झूले को धक्का देने वालों ने कुछ ऐसी ग़लती की कि झूला पुल के टूटे भाग से बल पूर्वक टकरा के १०-१२ फीट पीछे की ओर हट आया। उस समय हमारी अवस्था शोचनीय थी, परन्तु इंजीनियर ने बड़ी सावधानी से झूले को, और कई आदमी लगाकर अपनी ओर खिंचवा लिया। वह दूसरे टूटे किनारे पर था, इस प्रकार हम उस पुल को पार करके नदी के

दूसरे किनारे पर पहुंचे और वहां से एक बस में सवार होकर ऐबटाबाद पहुंच गये।

ऐबटाबाद में निवास और गीता की कथा

लाला ज्ञानचन्द के निवास स्थान पर पहुंचने पर उन्हें और सारे परिवार को दुखी पाया। उसी रात्रि से गीता की कथा प्रारंभ की और देवियों को समझा कर उनसे सियापा बन्द कराया। कथा के प्रसंग से प्रत्येक परिवार के सदस्य को धैर्य दिलाने की कोशिश की फल ख़ातिरख़्वाह निकला। कथा से सभी को शान्ति मिली। ऐबटाबाद के पास "काकूल" एक जगह है, जहां का पानी बहुत अच्छा है परन्तु वह नगर निवासियों को नहीं मिलता केवल फ़ौज के काम में आता है।

सरदार हरिसिंह नलुआ का हरिपुर

१४ दिन ऐबटाबाद रहने और समस्त परिवार को शान्त करने के बाद मैं ऐबटाबाद से चला। अब रेल का रास्ता ठीक हो गया था। इस लिये हवेलियन तक मोटर में आकर वहां से तक्षशिला के लिये रेल में सवार होकर चल दिये। ला० ज्ञानचन्द जी हरिपुर तक साथ आये। वहां से उन्हें रुख़सत होना पड़ा। हरिपुर ऐबटाबाद से १७-१८ मील की दूरी पर. अच्छा हरा भरा नगर है। यहां एक नहर है जिसे सरदार हरिसिंह नलुआ ने निकाला था। यह नहर नगरके बीच मे होकर गुजरती है। उसकी आबपाशी माफ़ है। अब तक किसी से कर नहीं लियाजाता। क्या ब्रिटिश सरकार भी, इक प्रकार की बिना कर वाली नहर निकाल सक्ती है?

नवांशहर का स्रोत

ऐबटाबाद से ३, ४ मील के फ़ासले पर नवांशहर एक छोटा सा क़सबा है। यहां का स्रोत विशाल और दर्शनीय है। उसे देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

तक्षशिला की सैर

तक्षशिला पाणिनि मुनि प्रसिद्ध वय्याकरण का गुरुस्थान है। यहीं के विश्व विद्यालय में उन्हों ने शिक्षा पाई थी। इस जगह की खुदाई कुछ हो चुकी है और कहा गया कि कुछ और होने वाली है। उस समय काम बन्द था, जहां और जितनी खुदाई हुई है वे सब स्थान देखे गये, वहां से लौट कर वहां का अद्भुतालय (अजायबखाना) भी देखा गया। यह स्टेशन के पास ही है। =) देने पर उसे कोई देख सकता है। इस =) की न कोई रसीद मिलती है न टिकट। मालूम यह होता है कि इस धन का अधिकांश अजायबखाने के छोटे कर्मचारियों ही के हिस्से में चला जाता है। तक्षशिला से हम रामगढ़ जाने के लिये पंजाब ऐक्स प्रेस से बरेली चल दिये।

उपनिषदों की टीका आदि

प्रारम्भ में यह इरादा किया गया था, कि समस्त उपनिषदों के सम्बन्ध में केवल एक पुस्तक लिखा जावे और उसमें उपनिषदों के कठिन स्थलों के स्पष्ट करने का यत्न किया जावे। परन्तु इसी दृष्टि से जब ईशोपनिषद् और उसकी लगभग ४० टीकाओं को देखा गया जिन में एक अंग्रेजी की टीका लगभग

२५० पृष्ठ के विस्तृत थी तो प्रकट हुआ कि किसी टीकाकार ने भी, इस उपनिषद् की उस प्रकार की व्याख्या नहीं की जिस प्रकार का मैंने उसे समझा था इस लिये निश्चय किया गया कि पृथक् ही उपनिषदों की टीका लिखनी चाहिये। इस निश्चय के अनुसार जब ईशोपनिषद् की टीका प्रकाशित की गई तो विद्वानों ने उसका इतना स्वागत किया कि जिस का मैं अनुमान भी नहीं कर सकता था। उस के बाद केनोपनिषद् की टीका का भी उपनिषद् के विद्यार्थियों में बड़ा मान हुआ। उसके बाद कठ, प्रश्न मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, एतरेय उपनिषदों की टीका क्रमश: समय समय पर प्रकाशित होती रही और ये अधिक से अधिक कम मूल्य पर प्रकाशित हों इस लिये इन के प्रकाशन का भार सार्वदेशिक सभा ने अपने जिम्मे ले लिया। मै यहां सेट वैजनाथ जी भारती को धन्यवाद देता हूँ कि वे अपने साहित्य प्रेम से, इन उपनिषदों तथा मेरे अन्य ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ प्रशंसित सभा को धन पेशगी के तौर पर देते रहे।

*छान्दोग्योपनिषद् की टीका लिखने का समय मुझे गुलबर्गा जेल में मिल गया था इसलिये वह भी शीघ्र ही आशा है कि प्रकाशित हो जावेगी। मेरे लिखे ग्रन्थों में इन टीकाओं का चौदहवां नम्बर है। इसी बीच में देहली की आर्य साहित्य प्रचारिणी सभा के मन्त्री म० हरिश्चन्द्र ने प्रकट किया कि

* यह पुस्तक अब सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रकाशित हो गई है।

लाहौर कांग्रेस के अवसर पर बांटने के लिये, आर्य समाज से सम्बन्धित एक ट्रेक्ट की जरूरत है उसे लिख देवें। मैंने उनकी बात स्वीकार करके "ऋषि दयानन्द और आर्य समाज" इस नाम की एक लघुपुस्तिका लिख दी जिसे प्रशंसित सभा ने बहु संख्या में छपवाकर वितरण किया। यह पन्द्रहवां पुस्तक था।

आर्य समाज मन्दिर, अलमोड़े का उद्घाटन

अक्टूबर १६२६ ई० में आर्य समाज मन्दिर का उद्घाटन किया गया। इस मामूली सी बात को यहां क्यों लिखा गया इसका कारण यह है कि यह मन्दिर ७०००) व्यय करके अकेले ला० मथुरादास ठेकेदार रईस रुड़की ने बनवा दिया था अन्यथा मन्दिर प्रायः चन्दे ही से बना करते हैं।

ठाकुर माधवसिंह जी का देहावसान

२६-११-२६ को प्रोफ़ेसर महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम. ए. देहरादून से देहली आये। उनका अत्यन्त उदास चेहरा देखकर, कारण जानने की उत्सुकता हुई। उन्होंने प्रकट किया कि उनके पिता ठाकुर माधवसिंह का देहावसान हो गया और उनका शव रोहतक में है। इस लिये मैं और और भी एक दो आर्य भाई महेन्द्रप्रताप जी के साथ रोहतक गये और महेन्द्र जी तथा उनकी माता की इच्छानुसार प्रबन्ध कर दिया गया कि शव यथा संभव शीघ्र आगरा पहुँच जावे। और निश्चय किया गया कि हम सब देहली होकर आगरा पहुंचें। तदनुसार सब ३०नवंबर सन्१६२६ई० को प्रातःकाल ही आगरा पहुंच गये। शव हम से पहले आगरा

पहुंच चुका था। उसी दिन बड़े समारोह के साथ शव का जुलूस निकाला गया और श्मशान में पुष्कल घृत और सामग्री आदि से अन्त्येष्टी संस्कार किया गया। ठाकुर माधवसिंह सच्चे आर्य, अनथक काम करने वाले और आर्य समाज और उसके कार्यों से बेहद प्रेम रखने वाले सज्जन थे। शुद्धि के कार्यों के तो मानो वे प्राण ही थे। उनकी मृत्यु से आर्य समाज की बड़ी हानि हुई।

विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति तथा सहायता

मेरे लिये प्रारम्भ से लेकर अब तक यह काम बड़ी प्रसन्नता का रहा है कि विद्यार्थियों की प्रत्येक सम्भव रीति से सहायता की जावे। अनेक विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी और दिलाई गई। बहुतों की और तरह से सहायता कराई गई। इनमें से दो विद्यार्थियों से सम्बन्धित कुछेक बातें उल्लेखनीय हैं :—

(१) **रामचन्द्र विद्यार्थी**—यह विद्यार्थी आजमगढ़ के मिशन स्कूल में पढ़ता था. पादरी जे० एच० एलन वहां के हैड मास्टर थे। पादरी साहिब ने इस विद्यार्थी को विश्वास की दृष्टि से ईसाई बना लिया था। अभी खुले तौर से वह ईसाई हुआ नहीं था, परन्तु उसने अपने माता पिता से कह दिया था कि वह ईसाई हो जावेगाः क्योंकि उसका विश्वास ईसा में है। उसके पिता साधारण हिन्दू मनोवृत्ति के आदमी थे। आर्य समाज फ़ैजाबाद का वार्षिकोत्सव था। वहां कुछेक उपदेशक एकत्र हुये थे, मैं भी गया था। उन उपदेशकों में से एक थे जो रामचन्द्र को आजमगढ़ से फैजाबाद ले आये थे। वे उपदेशक महाशय अंग्रेजी न

जानने की वजह से रामचन्द्र की शंकाओं का समाधान नहीं कर सकते थे। वहां उत्सव में उपस्थित उपदेशकों ने सलाह की, उनकी सलाह का फल यह था कि वे रामचन्द्र को मेरे पास लाये कि मैं उसे अपने पास रखकर समझाऊँ। पादरी एलन को रामचन्द्र के पक्के ईसाई होने का इतना विश्वास था कि मुझे उन उपदेशकों ने बतलाया कि उसने आज़मगढ़ में घोषणा करदी थी कि यदि कोई रामचन्द्र को ईसाइयत से हटा देगा तो वह मिशन का काम करना छोड़ देंगे। मैं रामचन्द्र को अपने साथ ले आया और कुछ दिनों उसे गुरुकुल वृन्दावन में अपने साथ रक्खा। मैं मथुरा शताब्दी के काम की वजह से उन दिनों गुरुकुल में ठहरा हुआ था। रामचन्द्र से मैंने एक दिन सायंकाल दो घंटे बात चीत करके उसको ईसाई और वैदिक धर्म का अन्तर बतलाया और वैदिक धर्म की विशेषतायें उसके हृदयांकित कर दी। नतीजा यह निकला कि अब वह ईसाइपन से कोसों दूर हो गया। पादरी एलन को जब मालूम हुआ कि रामचन्द्र मेरे पास वृन्दावन में है, और यह कि उसके विचार बदल गये हैं तब उन्हों ने मुझे लिखा कि "क्या आप रामचन्द्र को मुझे मिलने की, यदि मैं वृन्दावन आऊं, तो इजाज़त देंगे ?।" मैंने हां में उत्तर दे दिया। यह बात रामचन्द्र को भी बतला दी गई। पादरी एलन वृन्द्रावन आये। मैं कहीं बाहर गया हुआ था। वे गुरुकुल आकर रामचन्द्र से मिले, और अपने साथ उसे मिशन में भी ले गये। उन्हों ने उसे सब कुछ

समझाया परन्तु वह सब निष्फल हुआ। रामचन्द्र को मैंने संस्कृत पढ़ने के लिये मुरादाबाद की आर्य्य पाठशाला में भेज दिया, पादरी एलन वहाँ भी पहुँचे परन्तु उसे न समझा सके। वे हैरान थे कि रामचन्द्र को क्या हो गया जो अब वह उनकी बात समझाने से भी नहीं समझता। इस के बाद रामचन्द्र को मुलतान भेज दिया जहां उसने प्राज्ञ और विशारद् परीक्षायें पास कीं और परीक्षायें पास करके वहां से लौट आया। उसे तीन साल मुलतान रहना पड़ा। उसे बराबर छात्र वृत्ति मिलती रही अब वह गृहस्थ है और अच्छी हालत में है।

(२) मनुदत्त विद्यार्थी

यह विद्यार्थी जिस की आयु १५, १६ वर्ष की आयु होगी, देहली की एक सनातनी पाठशाला में संस्कृत पढ़ता था। एक दिन वह मेरे पास आया। उससे पहले मैं उसे कुछ नहीं जानता था। उसने आकर कहा कि मैं तो पढ़ना चाहता हूँ परन्तु मेरा पिता मेरा विवाह करना चाहता है"। मैंने उत्तर दिया कि विवाह करले गौना छः सात वर्ष के बाद कर लेना। उसने उत्तर दिया कि गौना विवाह के साथ ही होगा। क्यों साथ होगा? पूछने पर विद्यार्थी ने उत्तर दिया कि लड़की जवान है और १६ वर्ष की उसकी आयु है इसलिये गौना और विवाह साथ ही होंगे। मैंने पूछा कि अब तू मुझसे क्या चाहता है? उसने उत्तर दिया कि मुझे कहीं बाहर पढ़ने के लिये भेज दें। विद्यार्थी का पक्ष धर्मानुकूल था इस लिये विद्यार्थी को लाहौर भेज दिया गया, और तीन साल तक उसे बराबर वज़ीफा दिया गया। जब यह शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तब वज़ीफा बन्द किया गया था।

उनतालीसवाँ अध्याय

पैरों में सूजन और उपवास से लाभ

१६३० ई० के प्रारम्भ में किसी अज्ञात कारण से, दोनों पैरों में कुछ सूजन आगई थी, देहली के एक डाक्टर ने बतलाया कि मूत्र में यूरिकएसिड (Uric acid) की मात्रा बढ़ जाने से सूजन आ जाया करती है। मूत्र परीक्षण से यह बात नहीं निकली कि यूरिकएसिड बढ़ा हुआ हो। डाक्टर ने औषधि तजवीज करनी चाही, मैंने कह दिया कि "जब तक सूजन का हेतु आप न बतलावें मैं औषधि सेवन न करूँगा"। इस के बाद निश्चय किया गया कि एक सप्ताह उपवास करना चाहिये। इस से पहले अनेक बार तीन तीन चार चार दिन तक उपवास करके मैं उससे लाभ उठा चुका था इसीलिये अब भी उपवास करना निश्चय किया गया। १ जनवरी से ७वीं जनवरी तक उपवास रक्खा गया। जल अनेक बार पीता रहा, एक बार दिन में जल के साथ नीबू का रस मिला कर लेता रहा, ऐनीमा प्रतिदिन लिया गया। तीसरे दिन ही पैरों की सूजन जाती रही परन्तु एक सप्ताह उपवास रखना निश्चय कर लिया था इसलिये वह पूरा किया गया। इस बीच में सब काम यथा पूर्व करता रहा। भ्रमणार्थ भी लगभग ५ मील प्रति दिन जाता रहा। आठवें दिन केवल नारंगी का रस, ९वें दिन पानी मिला हुआ दूध और १०वें

दिन मूंग की पतली खिचड़ी ली गई। इसी उपवास के बीच में एक मदरासी साधू मिलने आये और उनसे दो घन्टे तक धर्मों के एकत्व (Unity of religion) पर विचार विनिमय होता रहा।

कर्म स्वातंत्र्य विषय पर गंभीर विचार

इच्छा स्वातंत्र्य के विषय में अनेक ग्रन्थ देखे गये। हिन्दू कालिज देहली के प्रोफ़ेसर डा० इन्द्रसेन जी से, इस विषय से सम्बन्धित पुस्तकों के संग्रह करने में बड़ी सहायता मिली। पूर्वी और पश्चिमी दोनों ओर के ग्रन्थों के देखने से अनेक विद्वानों के, अनेक प्रकार के दृष्टि कौण, सामने आये और उनसे विषय के मनन में बड़ी सहायता मिली।

रात्रि में विद्यार्थियों के लिये दो घन्टा समय

जब मैं देहली रहा करता था तो वहां प्रायः एक नियम सा हो गया था कि रात्रि में सात से नौ बजे तक का समय, विद्यार्थियों को देना पड़ता था। स्कूल और कालिजों के विद्यार्थी ही प्रायः आया करते थे। अनेक धर्म सम्बन्धी सन्देहों की निवृत्ति करते थे कई सन्ध्या की उपयोगिता पर बातचीत करते थे। और अकसर विद्यार्थी सन्ध्या प्राणायाम और आसन सीखने आया करते थे। लगभग १७ विद्यार्थियों ने ३ मास के भीतर ही नियम से ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत लिया था।

भवाली से रामगढ़ बर्फ़ पड़ते में आना

बर्फ़ पड़ने के दिनों में, मैं रामगढ़ आकर प्रायः १५ दिन तक रहा करता था। यह एक नियम सा बन गया था। अब की बार फ़रवरी के दूसरे सप्ताह में जब मैं भवाली से रामगढ़ के लिये पैदल ही चला तो एक मील चलने के बाद ही बर्फ़ पड़ने लगा। रास्ता चलने वालों ने सलाहदी कि मैं भवाली लौट जाऊँ अन्यथा बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। परन्तु मैं रामगढ़ पहुंचने का निश्चय करके चल दिया था अब पीछे लौटना, मेरे नियम के विरुद्ध था इस लिये मैंने उन्हें उत्तर दे दिया कि जो कुछ भी हो अब तो रामगढ़ चलना ही है; रामगढ़ तक बराबर ८½ मील तक बर्फ़ पड़ती रही और मैं उसी बर्फ़ में चलता हुआ रामगढ़ पहुँच गया। गांगर आकर लगभग बर्फ़ के ऊपर दो मील तक चलना पड़ा जबकि ऊपर से भी बर्फ़ पड़ रही थी।

पानीपत का संकीर्तन

श्री महयानन्द सप्ताह के प्रसंग में वर्षों से पानीपत में संकीर्तन हुआ करता था। इस बार स्थानिक हाकिमों ने उसे बन्द करने की आज्ञा देदी थी। इस पर आर्य समाज की ओर से सत्याग्रह करना निश्चय कर लिया गया। इसकी सूचना मिलने पर, मैं ला० देशबन्धु जी और स्वामी रामानन्द के साथ पानीपत पहुँच गया, सत्याग्रह के लिए आर्य समाज पानीपत ने १०००) जमा कर रक्खे थे और २०० स्वयं सेवक

भी। देहली और सहारनपुर से तार देने पर, उत्तर मिला कि सत्याग्रह के लिये बहुसंख्या में स्वयं सेवक तय्यार हैं। डिपुटी कमिश्नर और कमिश्नर ने जब देखा कि आर्य समाज सत्याग्रह करने पर तुला हुआ है तो उन्होंने संकीर्तन करने की इजाज़त देदी और मामला ख़त्म हो गया।

आर्य समाज फ़रीदाबाद ने भी पानीपत का अनुकरण किया

देहली के पास ही आर्य समाज फ़रीदाबाद के नगर कीर्तन में भी स्थानिक हाकिमों ने कुछ पाबन्दियां लगादी थीं इससे पहले इस प्रकार की पाबन्दी वहां कभी नहीं लगती थी। वहां के आर्य समाज ने भी सत्याग्रह करने का निश्चय करके, सूचना दी। मैं वहां भी स्वामी रामानन्द के साथ गया। वहां भी सत्याग्रह का सब सामान तय्यार था। आर्य समाज की तय्यारी देखकर वहां भी जिले के हाकिमों को झुकना पड़ा और उन्होंने बिना किसी शर्त के ४ बजे से ६ बजे रात तक, नगर कीर्तन करने की इजाज़त देदी। तदनुसार नगर कीर्तन बड़े उत्साह और धूमधाम के साथ किया गया।

व्रत भंग करना असम्भव होगया

यह बात अनेक बार अनुभव में आ चुकी है कि जब कभी मैं किसी मजबूरी से अपने किये निश्चय को अनिश्चय करना चाहा करता हूँ तो उसमें ऐसे विघ्न उपस्थित हो जाते हैं जिससे उसका अनिश्चय करना प्रायः असम्भव हो जाता है।

इसके उदाहरण के रूप में हाल में एक घटित घटना का उल्लेख किया जाता है। आर्य समाज जौनपुर ने वायदा किया था कि वे अपना २३, २४ मार्च ३० को होने वाला उत्सव, सुधरे हुये ढंग से करेंगे इसीलिये मैंने वहां जाना स्वीकार कर लिया था। वहां जब मैं पहुँचा तो मालूम हुआ कि उत्सव उन्हीं पुरानी रूढ़ियों के साथ हो रहा है। मैंने २३ मार्च को, प्रोटेस्ट के तौर पर व्याख्यान नहीं दिया और २४ को भी व्याख्यान देने का इरादा नहीं था। अनेक विद्वानों और नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों के आग्रह से मैंने २४ को व्याख्यान देने का इरादा कर लिया परन्तु घटना यह घटित हुई कि जब मै व्याख्यान देने के लिये वेदी पर गया तो मेरा गला इस बुरी तरह से खराब हो गया कि मेरे लिये व्याख्यान देना असम्भव हो गया।

रचना कार्य्य

सोलहवां ग्रंथ कर्तव्य दर्पण म० वेद मित्र जिज्ञासु के आग्रह से तय्यार करके आर्य साहित्य मंडल अजमेर को प्रकाशनार्थ दिया गया और सतरहवां "सन्यासी कर्तव्य दर्पण" नामक ट्रैक्ट, संन्यास मंडल की प्रेरणा से तय्यार करके प्रकाशनार्थ उसी मंडल को दे दिया गया।

आर्य्य साहित्य मंडल अजमेर का उद्घाटन

मंडल के अधिकारियों की प्रेरणा से अजमेर जाकर आर्य साहित्य मंडल का उद्घाटन किया गया। मंडल ने चारों वेदों

का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर के एक अत्यन्त आवश्यक कार्य्य की पूर्ति की है। और भी अनेक प्राचीन उपयोगी ग्रंथों का अनुवाद करके उन्हें प्रकाशित किया है।

रामगढ़ के आश्रम में समय विभाग

इस आश्रम में इन दिनों में लग भग, मई से सितम्बर मास तक रहने का अवसर मिला करता है। यहां का अपना समय विभाग इस प्रकार रहा करता है:—

४ बजे से ७ बजे प्रातः काल तक—शौच, स्नान, सन्ध्या तथा भ्रमण

७	,,	११	,, दिन तक	—स्वाध्याय तथा रचना कार्य
११	,,	१	,,	—भोजन, विश्राम तथा समाचार पत्रों का पढ़ना।
१	,,	२	,,	—सत्संघ जिस में उपनिषद् आदि ग्रन्थों की कथा होती है।
२	,,	४	,,	—स्वाध्याय तथा औषधि वितरण
४	,,	५	,,	—वाटिका संबंधी आवश्यक कार्य्य
५	,,	६	सायंकाल तक	—भ्रमण
६	,,	७	,,	—संध्या+ईश्वर चिन्तन
७	,,	६	रात्रि तक	—दुग्धपान, पत्रों के उत्तर और हल्का स्वाध्याय
६	,,	२½	,,	—शयन
२½	,,	४	,,	—अभ्यास (प्राणायाम तथा प्रत्याहार आदि का)

हाथ में चोट आ जाना

आश्रम तथा वाटिका का काम करते हुए, एक बड़े पत्थर के गिर पड़ने से, बांये हाथ में चोट आगई, और तीन उँगलियाँ कुचल गईं चिकित्सा करने से दो उँगलियाँ तो ठीक हो गईं परन्तु सबसे छोटी उँगली के पास की उँगली ग़लत जुड़ गई। चिकित्सक गण उसे जान नहीं सके। अब उस का ठीक होना ला इलाज होगया।

एक इंगलिश लेडी का आश्रम में आना

४-१०-१९३० ई० को दक्षिण अफ्रीका से एक अंगरेज़ महिला आश्रम में, भेंट करने आई। वे एक रात्रि महिला विभाग में एक गृहस्थ के घर में रहीं। तीन बार मिलने आईं, अनेक बातें पूछती रहीं। अन्त में भारतीय संस्कृति और आतिथ्य की बड़ी प्रशंसा करते हुए चली गईं। उन्हें जाते समय आर्य्य समाज का कुछ अंगरेज़ी साहित्य भेंट किया गया।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा

जयपुर में एक सप्ताह रहने से पता लगा कि शेखावटी के इलाक़े में हज़ारों कायम ख़ानी हैं, जो नाम मात्र के विधर्मी हैं और शुद्ध हो सक्ते हैं और वहां की उनकी बिरादरी उन्हें मिलाने के लिये तय्यार है परन्तु अच्छे कार्य्य कर्ताओं के वहां न पहुँचने से काम रुका हुआ है। शुद्धि सभा की ओर से एक उपदेशक वहां नियुक्त है परन्तु वह दिन काटने के सिवा, काम कुछ नहीं या नाम मात्र करता है अथवा जो काम वहां है उसके

करने के वह अयोग्य है। शुद्धि सभा की अवस्था इस समय शोचनीय है उसके अधिकारी जितनी चिन्ता अपनी पार्टीबन्दी को दृढ़ करने की करते हैं, उतनी काम की नहीं, उसी का फल यह है कि व्यर्थ का झगड़ा तो बढ़ रहा है परन्तु काम कुछ नहीं होरहा है। बहुत समझाने की चेष्टा की; परन्तु पार्टी के चढ़े हुये नशे से कोई भी अच्छी बात इन पार्टी बन्दों के समझ में नहीं आती। निश्चय किया गया कि कुछ दिनों और देखना चाहिये, यदि सुधार न हो तो फिर इस सभा से संबंध विच्छेद कर लेना ही श्रेयस्कर है।

चालीसवां अध्याय

आर्य समाज के उद्देश्य समझने में गलती

आर्य समाज चावड़ी बाज़ार देहली के १६३० ई० के श्रीमद्दयानन्द निर्वाणोत्सव दीपमालिका के अवसर पर जो वक्तृतायें, उत्सव में भाग लेने वालों ने दीं; उनसे प्रकट होता था कि ऐसे लोगों ने आर्य्य समाज के उद्देश्य समझने में गलती की है। कोई आर्य्य समाज को समष्टि रूप से कांग्रेस के साथ मिलकर काम करने की सलाह देता है तो दूसरा कहता है कि आर्य्य-समाज अपनी राजनीति पृथक रक्खे और अपने प्रतिनिधि असेम्बली आदि में पृथक में रक्खे इत्यादि। ऐसा कहने वाले यह भूल जाते हैं कि आर्य समाज का उद्देश्य ही नहीं अपितु मुख्योद्देश्य, जैसा कि उसके नियमों में वर्णित है "संसार का, शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिकोन्नति द्वारा, कल्याण करना है। इन तीनों प्रकार की उन्नतियों के कर लेने से, मनुष्य उत्तम कोटि का मनुष्य बन जाया करता है। इसलिये यदि दूसरे शब्दों में कहा जाय तो आर्य समाज का उद्देश्य मनुष्य को उत्तम कोटि का मनुष्य बना देना है। इतना उच्च उद्देश्य रखते हुये, किस प्रकार आर्य्य समाज अपना लेबिल नीचा करके, किसी देश विशेष के समुदाय विशेष में अपने आप को समाविष्ट कर सकता है? मनुष्य को उत्तम कोटिका मनुष्य बना देने के बाद आर्य्य

समाज उसे पूरी स्वतंत्रता देता है कि वह अपनी इच्छानुसार अपने पुरुषार्थ को व्यय करे। यदि वह राजनीति की ओर जाना चाहता है तो वह अपनी इच्छानुसार चाहे कांग्रेस में काम करे, चाहे नरमदल वालों का साथ देवे चाहे गवर्नमेन्ट का साथी बने। यदि वह धर्म प्रचार या अन्य कोई व्यवसाय करना चाहता है तो अपनी इच्छानुसार वह करे। आर्य समाज उस के किसी कार्य्य के करने में बाधा नहीं उपस्थित करता। कांग्रेस में यदि कोई क्रान्तिकारी आना चाहे तो नहीं आसकता, क्योंकि कांग्रेस ने अपनी प्रचलित नीति के अनुसार, उसके लिये अपना द्वार बन्द कर रक्खा है। परन्तु आर्यसमाज का द्वार उसके लिये भी कभी बन्द न होगा—वह जब भी चाहे, अपने आत्मा को शांत, और बलवान बनाने के लिये, आर्यसमाज का आश्रय ले सकता है। उपर्युक्त उत्सव में, प्रधान की हैसियत से अपनी अन्तिम वक्तृता में, उपर्युक्त भांति, आर्य समाज की स्थिति को, असंदिग्ध शब्दों में स्पष्ट कर दिया। मुझे प्रसन्नता है कि इस स्पष्टीकरण से, उत्सव में उपस्थित अधिकतर मनुष्य प्रसन्न हुये।

संन्यासी मंडल का ढोंग

१६२७ई० में देहली में आर्य कांग्रेस का (सार्वदेशिक) आर्य सम्मेलन का पहला अधिवेशन हुआ था। दाखिला उसमें टिकट द्वारा था, कुछ फ्री टिकट साधुओं को दिये गये थे। जिन साधुओं को टिकट नहीं मिले उन्होंने, असन्तुष्ट होकर एक मंडल बनाया। इसी का नाम साधू मंडल हुआ। उसकी एक बैठक,

विरक्ताय (वानप्रस्थ) आश्रम ज्वालापुर में, मंडल के कार्य कर्त्ताओं की इच्छानुसार, उन्हें कर लेने की इज्जाजत दी गई। मंडल हो रहा था। स्वामी ब्रह्मानन्द आचार्य गुरुकुल भैंसवाल (रोहतक) ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि मंडल घोषणा करे कि संन्यासी के लिये मद्य और मांस त्याज्य हैं। स्वामी शंकरानन्द ने जो मंडल के सभापति थे, इस प्रस्ताव के उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी। इस से मंडल के संन्यासियों में असन्तोष फैला। फल उस का यह हुआ कि मंडल प्रायः वहीं समाप्त सा हो गया। स्वामी आनन्द भिक्षु ने, जो मंडल के मंत्री थे और जिन के पास मंडल के लग भग सौ सवासौ रुपये थे, घोषणा की कि चोरी हो जाने से मंडल का धन भी चोरी होगया। स्वामी शंकरानन्द का हाल स्वामी श्रद्धानन्द जी, टंकारा शताब्दी के अवसर पर खुले तौर से प्रकट कर चुके थे। स्वामी श्रद्धानन्दजी, मौर बी राज्य की एक इमारत में ठहरे थे। उन्होंने प्रकट किया कि कल से उन्हें यह इमारत छोड़ देनी पड़ेगी कारण यह बतलाया कि स्वामी शंकरानन्द यहां आवेंगे और उनके लिये कल ही से मुर्गी कटने लगेगी। मुर्गी वहां लाकर उन्होंने प्रकट किया कि जमा कर ली गई हैं। जिस मंडल के सभापति ऐसे हों उस मंडल का, संन्यासी मंडल की जगह कुछ और ही नाम रखना अच्छा होता। मंडल के सभापति को इस रूप में प्रकट होने, उसके धन के चोरी चले जाने से, मंडल की रही सही हस्ती भी खतम हो गई।

पांव के एक अंगूठे का कुचल जाना

२० नवम्बर १९३० को आश्रम का काम करते हुये, एक पत्थर के गिर जाने से, बायें पांव का अँगूठा कुचल गया, उसकी वजह से तमाम पंजा सूज गया। २३-११-३० को देहली में सार्व० सभा की अन्तरंग सभा में शरीक होना था। -- २२ को घोड़े पर सवार होकर भवाली और वहाँ से काठगोदाम मेल बस से पहुंचा। आवश्यक समान हल्द्वानी था और हल्द्वानी पहुँचने के लिये, काठगोदाम से कोई सवारी नहीं मिली इसलिये मजबूरन बुरी तरह से पांव को घसीटते घसीटते ४ मील चल कर हल्द्वानी पहुंचा। यद्यपि यह कष्ट हुआ; परन्तु मैं देहली समय पर पहुंच गया। देहली में डाक्टर कुन्तल कुमारी, और डाक्टर ब्रह्मचारी ने औपरेशन करके अंगूठे के नाखून को निकाल दिया तब कहीं १०—१२ दिन में पांव अच्छा हुआ।

योग दर्शन की टीका

योग के संबन्ध में एक पैम्फलेट लिखने की सामग्री मैंने जमा करके उसे पुस्तक का रूप देने वाला था कि इसी बीच में अनेक विद्वानों ने सम्मति दी कि इसके साथ ही अर्थ सहित योग सूत्रों को भी शामिल कर देने से, ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ जावेगी। सम्मति मानली गई और पैम्फलेट की सामग्री को भूमिका का रूप दे दिया गया। इस प्रकार योग दर्शन की टीका समाप्त करके इसे सार्व० सभा के भेंटकर दिया गया। सभा ने उसे

प्रकाशित कर दिया। इस ग्रन्थ का मेरे लिखे ग्रन्थों में अठारहवां (१८) नम्बर था।

देहली के आर्यों का पारस्परिक झगड़ा

देहली में आर्य समाज चावड़ी बाज़ार का एक स्कूल दयानन्द नैशनल हाई स्कूल के नाम से था। उसके हेड मास्टर ला० मेलाराम एक व्यक्ति थे। हेड मास्टर के विरुद्ध अनेक पुरुषों ने शिकायतें कीं परन्तु ला० नारायणदत्त जी ने, जो स्कूल के मैंनेजर थे, उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। कुछ काल व्यतीत होने के बाद स्वयं ला० नारायण दत्त जी को, हेड मास्टर के विरुद्ध शिकायतें हो गईं। उस समय वे लोग, जिन की शिकायतों पर, ला० नारायणदत्त जी ने ध्यान नहीं दिया था, बदला लेने की भावना से ला० नारायणदत्त जी के विरुद्ध होकर हेड मास्टर के साथी बन गये। झगड़ा इस प्रकार बढ़ता गया। अंत में उसके निर्णय कर देने के लिये, आर्य समाज चावड़ी बाज़ार की अन्तरंग सभा और स्कूल कमेटी दोनों ने मेरे सिवा स्वामी आनन्द भिक्षु, ला० ज्ञानचन्द और ला० गंगाराम को पंच नियत किया। दोनों ओर की गवाहियों के लेने और दोनों फ़रीक़ के बयान सुनने के बाद पंचों ने फ़ैसला कर दिया कि ला० मेलाराम हेड मास्टर को एक अवसर दिया जावे कि वह अपने विरुद्ध शिकायतें दूर करके अपने को अच्छा सिद्ध करे परन्तु वह आर्य समाज चावड़ी बाज़ार का आर्य सभासद न रक्खा जावे क्यों कि आर्य सभासद

होने के लिये न केवल कदाचार रहित होने की जरूरत है अपितु सदाचार सहित होने की भी जरूरत है। इस फ़ैसले को पूर्णतया दोनों फ़रीक़ में से किसी ने भी नहीं माना जिस फ़रीक़ के जितना अनुकूल था उसे तो उसने मान लिया परन्तु जितना विरुद्ध था, उसे नहीं माना। इसलिये झगड़ा बढ़ता ही गया। एक ने दूसरे के विरुद्ध, शहर में पोस्टर लगवाये, अख़बारों में एक दूसरे के विरुद्ध लेख छपवाये। कचहरियों के दरवाज़े भी खटखटाये गये। मामला इतना खराब हो गया कि सारे शहर में आर्य समाज की बदनामी हुई और अख़बारों द्वारा, यह विष दूर दूर तक फैला।

इस अवस्था के हो जाने से चित्त बहुत दुखी रहने लगा परन्तु उपाय क्या करना चाहिये, यह बात समझ में नहीं आती थी। कई रोज़ बराबर ईश्वर से पथ प्रदर्शकता की प्रार्थना की गई। एक दिन जब मैं आर्य समाज चावड़ी बाज़ार के साप्ताहिक सत्संग में उपदेश दे रहा था तो भीतरी प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने दोनों फ़रीक़ों को मेल करने की शिक्षा दी और झगड़े से जो हानि हो रही थी

झगड़ा खत्म न होने तक अनशन करने की घोषणा

उसको प्रकट करते हुये घोषणा करदी गई कि जब तक झगड़ा ख़त्म न होगा मैं अन्न न ग्रहण करूंगा और झगड़े के तै करने का तरीक़ा यह बतला दिया गया कि एक ओर से ला० नारायणदत्त जी तथा आर्य समाज चावड़ी बाज़ार के

तत्कालीन प्रधान और दूसरी ओर से ला० गंगाराम और मेलाराम अपने अपने पदों से त्याग पत्र लिखकर किसी ऐसे व्यक्ति को दे देवें जिस पर दोनों फ़रीक़ विश्वास रखते हों और वह व्यक्ति जिस जिस का त्याग पत्र स्वीकार करे वह वह अपने काम से पृथक हो जावें।

इस घोषणा का अच्छा प्रभाव पड़ा और उपर्युक्त चारों व्यक्तियों ने अपने अपने पदों से त्याग पत्र लिखकर, मुझी को पंच बनाकर वे त्याग पत्र मुझी को दे दिये कि जैसा मैं उचित समझूँ फैसला करदूं।

झगड़े का निवटारा

मैंने फ़ैसला देने से पहले दोनों फ़रीक़ से मतालिवा किया कि (१) जिस जिस फ़रीक ने, कोर्ट में, एक दूसरे के विरुद्ध मुक़दमे दायर कर रक्खे हैं, उन्हें ख़ारिज करा देवें (२) स्कूल की जो रजिस्ट्री सुसाइटी के कानून द्वारा कराली गई है वह कैन्सिल करादी जावें। प्रसन्नता की बात है कि ला० मेलाराम ने दूसरे ही दिन, जो मुकदमात उसने दायर कर रक्खे थे, ख़ारिज करा दिये, और स्कूल कमेटी ने अपने $\frac{2}{3}$ कौरम से निश्चय कर दिया कि रजिस्ट्री कैन्सिल करादी जावे।

ला० गंगाराम का अनुचित कार्य्य

स्कूल कमेटी के सेक्रेट्री ला० गंगाराम थे, उन्होंने, रजिस्ट्रार को चिट्ठी तो लिख दी कि रजिस्ट्री कैन्सिल करदी जावे परन्तु उसके साथ कमेटी के प्रस्ताव की लिपि, मुझ से यह कहकर कि

भेज दी गई, नहीं भेजी। रजिस्ट्रार के दफ़्तर से दो रिमान्डर (ताकीदी पत्र) आये परन्तु उन्हें भी, उन्होंने छिपा लिया। इस बात के प्रकट होने पर कि प्रस्ताव की लिपि नहीं भेजी गई, मैंने अपने सामने प्रस्ताव की लिपि कराके एक विशेष व्यक्ति द्वारा रजिट्रार के दफ़्तर में भिजवादी। जब गंगाराम ने देखा कि उनकी यह चाल तो चूक गई तब उन्होंने रजिस्ट्रार को एक चिट्ठी अपने हस्ताक्षर से भेजी कि कमेटी के कुछेक मेम्बर रजिस्ट्री कैंसिल कराना नहीं चाहते, इस लिये रजिस्ट्री कैन्सिल न की जावे। जब इस पत्र की सूचना मिली और गंगाराम से पूछा गया तो उन्होंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। जब रजिस्ट्रार के दफ़तर में लेजा कर उन्हें वह चिट्ठी दिखलवाई गई तो उन्होंने साफ़ तौर से कह दिया कि उन्हों ने यह चिट्ठी नहीं भेजी है। चिट्ठी पर अपने हस्ताक्षर होने का कारण यह बतलाया कि उनका लड़का, उनके से हस्ताक्षर कर लिया करता है, शायद उसी से किसी ने हस्ताक्षर कराके यह चिट्ठी भेज दी है। इस प्रकार की सफ़ाई देते हुए ला० गंगाराम ने यह नहीं सोचा कि रजिस्ट्री के कैन्सिल न होने में तो स्वार्थान्वित (Interested) उन्हीं की पार्टी थी, दूसरी पार्टी का लाभ तो रजिस्ट्री के कैन्सिल होने ही में था। इस लिये यदि उन की बात मान भी लीजावे तो उन्हीं के किसी पार्टी वाले ने, उन के लड़के से यह काम कराया होगा। अस्तु रजिस्ट्री कैन्सिल होगई और फ़ैसला मैंने यह दिया कि चारों

त्याग पत्र स्वीकार कर लिये जावें, और चारों व्यक्ति अपने अपने पद का काम छोड़ देवें। ऐसा ही हुआ औरमामला खतम होगया परन्तु मैंने एक घोषणा के द्वारा ला० गंगाराम के इस अनार्यत्व को पब्लिक पर प्रगट कर दिया।

इकतालीसवां अध्याय

सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन की दूसरी बैठक बरेली में

सम्मेलन की दूसरी बैठक १९३२ ई० में बरेली में हुई जिसमें ३०० प्रतिनिधि और २०० दर्शक शरीक हुये थे। स्वागत कारिणी सभा के इसरार से, इस सम्मेलन का प्रधान पद मुझे स्वीकार करना पड़ा था। सम्मेलन में अनेक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुये। सम्मेलन के साथ एक प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया था।

भारतीय शुद्धि सभा का झगड़ा

जैसा कि इस से पहले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान के बाद मुझे शुद्धि सभा के प्रधान पद को ग्रहण करने के लिये बाधित होना पड़ा था। उस समय (१९२७ ई०) से मैं बराबर शुद्धि सभा का प्रधान चला आता था। और सभा का काम भी साधारण रीति से चला आ रहा था १९३१ ई० में सभा के प्रधान मंत्री स्वामी चिदानन्द की शिकायतें होने लगीं कि वे सभा के धन का दुरुपयोग करते हैं इत्यादि। उन्होंने छुट्टी लेकर मंत्री पद का काम छोड़ दिया। उनकी जगह राय साहिब गंगाराम प्रधान मंत्री नियत हुये। राय साहिब ने कुछ दिनों काम करने के बाद, स्वामी

चिदानन्द के विरुद्ध जो शिकायतें उन्हें थीं, सभा के मासिक पत्र (शुद्धिसमाचार) में अपने नाम से छाप दिया। इसमें सभा की बदनामी भी हुई और असन्तोष भी बढ़ा। स्वामी चिदानन्द ने ला० गङ्गाराम की शिकायतें किसी व्यक्ति के नाम से छपा कर प्रकाशित करा दीं। दोनों लेख गन्दगी से भरे हुये थे। जब शुद्धि का काम करने की जगह शुद्धि सभा में गन्दगी फैलाने का काम होने लगा और समझाना बुझाना सब निरर्थक होगया तब मैंने आवश्यक समझा कि सभा से अपना संबन्ध तोड़ लूँ। नवीन निर्वाचन में जब सभाने फिर मुझे प्रधान बनाया तो मैंने उसे स्वीकार नहीं किया।

समय का दुरुपयोग

१९३० से १९३२ तक लग भग तीन वर्ष देहली के आर्यों और शुद्धि सभा के झगड़ों में बीते। इनमें न कोई साहित्यिक कार्य ही हो सका न आत्म-सुधार सम्बन्धी ही कुछ काम किया जा सका। दिनरात बराबर अशान्ति रहने के कारण स्वाध्याय भी न हो सका। थोड़ा बहुत प्रचार कार्य, जो किया जा सकता था, अवश्य होता रहा।

गुरुकुल कमीशन

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने गुरुकुल कांगड़ी की जांच और उस को अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से एक कमीशन नियत किया। प्रशंसित सभा के आग्रह से मैंने उसका प्रधान होना

स्वीकार कर लिया था। गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति, अनेक समझदार व्यक्तियों की दृष्टि में, जिनमें अनेक आर्य विद्वान् भी शामिल हैं, जितना उसमें धन व्यय हुआ उतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। इसका कारण और एक मात्र मुख्य कारण यह था कि गुरुकुल के आदर्श के अनुकूल अध्यापक नहीं मिल सके। उनमें अधिकतर, सरकारी स्कूल और .कालिजों के समान, खाने कमाने वाले ही थे। गुरुकुल का आदर्श पूरा हो या न हो, इसकी उन्हें रत्तीभर भी चिन्ता न थी। अन्यथा गुरुकुल की उपयोगिता को, क्रियात्मक रूप में, देश भर ने स्वीकार कर लिया और न केवल स्वीकार किया किन्तु गुरुकुल की निम्न बातों का समावेश सरकारी यूनिवर्सिटियों में हो गया:—

(१) सरकार ने अनेक विश्व विद्यालय इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, आदि में वैसे खोले जिनमें शिक्षा के साथ अध्यापकों के सपर्क में रहना आवश्यक है।

(२) देशी भाषाओं के माध्यम से, एम० ए० तक की शिक्षा देने के सिद्धान्त को, स्वीकार करके, अनेक विश्व विद्यालयों ने एक सीमा तक, इस पर आचरण करना शुरू कर दिया।

(३) ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त को मानते हुये अनेक हाई स्कूलों में विवाहित विद्यार्थियों का लिया जाना निषिद्ध ठहराया गया।

(४) पाठय पुस्तकों में सुधार हुआ।

(५) देशी लोगों के लिखे इतिहास पढ़ाई में शामिल किये जाने लगे। इत्यादि

अस्तु; यह कमीशन भी इसी असंतोष का फल था। कमीशन के सदस्योंने प्रायः देश भर का भ्रमण किया। कोई कहीं गया कोई कहीं गया। देश भर में फैले हुये, अनेक पद्धतियों पर चलने वाले विद्यालयों और विश्व विद्यालयों में जाकर वहां की पढ़ाई और रहन-सहन के ढंगों को देखा। अनेक विद्वानों की गवाहियां लीं। सात आठ मास का समय व्यतीत करके कमीशन ने अपना काम समाप्त किया और एक उपयोगी रिपोर्ट तैयार करके आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवामें भेज दी। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि सभा में, उस समय की पार्टी-बन्दियों के कारण, रिपोर्ट पर जैसा विचार होना चाहिये था नहीं हुआ और न उससे जितना लाभ उठाया जा सकता था, उठाया गया।

प्रयाग महिला विद्यापीठ

कन्याओं की शिक्षा और दीक्षा देशी ढंग से देने के लिये प्रयाग के अनेक विद्वानों ने इस संस्था को खोला था। प्रसन्नता की बात है कि इसका कार्य सफलता के साथ चल रहा है। १९३२ ई० में, उपाधि वितरणोत्सव (Convocation) के अवसर पर, वहां के संचालकों ने, व्याख्यान देने के लिये, मुझे निमन्त्रण दिया था। मैंने वहां जाकर व्याख्यान दिया। उस

व्याख्यान को पीठ के संचालकों ने, छपवाकर प्रकाशित भी किया था। व्याख्यान में, इस बात को वेदादि के प्रमाणों से, भली भाँति सिद्ध किया गया था कि पुरुष और स्त्री के अधिकार समान हैं और कोई भी लोक, और परलोक सम्बन्धी काम ऐसा नहीं है जिससे वेदादि शास्त्रों ने स्त्रियों को वंचित किया हो।

शिक्षा केन्द्रों में प्रचार

१९३२ ई० में किसी समय वहां के प्रिंसिपल की इच्छानुसार श्रीमद्दयानन्द कौलिज जलंधर और उसके बोर्डिङ्ग हाउस का निरीक्षण किया गया और कोलिज के विद्यार्थियों को उपदेश दिया गया।

(२) एक सप्ताह पटना में रहकर, पटना, बांकीपुर और मीठापुर आदि पटने के मुहल्लों में प्रचार किया गया। पटना खास में तीन व्याख्यान दिये गये जिनमें वहां की यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर और विद्यार्थी बहु संख्या में शरीक होते रहे। हाईकोर्ट के दो जज भी ३ दिन तक बराबर आते रहे। इन व्याख्यानों में से एक व्याख्यान "विद्या और अविद्या" विषय पर था। पटना यूनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफेसर एक बंगाली विद्वान, एक दिन मेरे पास आये और प्रकट किया कि उन्होंने अभी हाल में (१९३३ ई० में किसी समय) संस्कृतज्ञों की एक कान्फ्रेन्स विद्या और अविद्या विषय पर विचार करने के

लिये की थी, परन्तु अविद्या की गुत्थी नहीं सुलझी। इसीलिये मैंने विद्या और अविद्या विषय पर व्याख्यान देते हुये जब प्रकट किया कि विद्या और अविद्या दोनों जीवात्मा के स्वाभाविक गुण, ज्ञान और कर्म के लिये, ईशोपनिषद् में, प्रयुक्त हुये हैं। विद्या ज्ञान को कहते ही हैं। अविद्या के अर्थ (न विद्या अविद्या) ज्ञानेतर अर्थात् ज्ञान से भिन्न (कर्म) के हैं तो व्याख्यान के बाद प्रोफेसर महोदय फिर मेरे पास आये और विद्या और अविद्या के जो अर्थ मैंने किये थे उससे, उन्होंने प्रकट किया कि वे बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट हुये। उन्होंने इन अर्थों को स्वीकार करते हुये प्रकट किया कि इनसे मेरी चिर कालीन शंका की निवृत्ति होगई।

(३) डी. ए. वी. हाई स्कूल दानापुर के वार्षिकोत्सव में शरीक होकर विद्यार्थियों को, इनाम बांटने के बाद उपदेश दिया गया। प्रसन्नता की बात है कि दानापुर के आर्य्यों में जो कुछ पारस्परिक मनोमालिन्य था, वह समझाने से दूर हो गया।

(४) डी. ए. वी. हाई स्कूल प्रयाग के वार्षिक अधिवेशन में विद्यार्थियों को इनाम बांटा गया और विद्यार्थियों को उपदेश देते हुये समझाया गया कि पुरुषार्थ रूपी संपत्ति के लाभार्थ विनियोग का नाम ही चरित्र है (Character as an investment)

(५) आर्य्य समाज कटरा प्रयाग के अधिकारियों ने प्रवंध किया था कि यूनिवर्सिटी इलाहाबाद के विद्यार्थियों को एक स्थान

में जमा किया जावे और मैं उन्हें उपदेश दूं। पं० श्रीरामजी वाजपेयी की प्रसिद्ध सेवा समिति के स्काउट भी, शरीक थे बल्कि यह कहना चाहिये कि प्रबन्ध उन्हीं का किया हुआ था। प्रयाग हाईकोर्ट के रिटायर्ड जज पं० कन्हैयालाल उस सभा के सभापति थे। मैंने व्याख्यान देते हुये ब्रह्मचर्य, तप और स्वाध्याय की, जिसमें आत्माध्ययन अर्थात् आत्म-निरीक्षण (Self Introspection) भी शामिल है व्याख्या करते हुये बतलाया कि ये चरित्र निर्माण के साधन हैं और यह चरित्र निर्माण ही, मनुष्यत्व का दूसरा नाम है। इस के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं कहा जा सका तो व्याख्यान के बाद सभापति महोदय ने कहा कि विद्यार्थियों के लिये, ऐसी ही शिक्षा मिलने की जरूरत है, उन्होंने खुली सभा में यह भी स्वीकार किया कि उनकी जिन्दगी में यह पहला ही अवसर है जो उन्होंने इस प्रकार का व्याख्यान सुना।

एक घटना

मैं कोटा राज्यान्तर्गत बारानगर से प्रचार करते हुये जब कोटा आ रहा था तो बारां के एक मुसलमान वकील, जो बारां में भी मेरे व्याख्यान सुनते रहे थे, मेरे कमरे में आकर मेरे सामने बैठ गये और उन्होंने कुछेक धार्मिकता से सम्बन्धित प्रश्न किये। उत्तर पाकर वे इतने सन्तुष्ट हुये कि जब देहली के लिये गाड़ी बदलने को मै कोटा स्टेशन पर उतरा तो उन्होंने दूसरे प्लेट फ़ार्म तक मेरा बिस्तरा कुली को नहीं उठाने दिया

बल्कि स्वयं उठाकर ले गये और मुझे दूसरी गाड़ी में बिठाकर तब गये। मैं उनके इस शिष्टाचार से बहुत प्रभावित हुआ। अच्छे बुरे व्यक्ति प्रत्येक समाज में हुआ करते हैं।

कर्तव्य दर्पण

कर्तव्य दर्पण को संशोधित करके, नया संस्करण छापने के लिये, आर्य साहित्य मंडल अजमेर में भेजा गया।

रामगढ़ की एक घटना

आर्य समाज रामगढ़ के तत्कालीन मन्त्री दीवानसिंह का विवाह, लहीरक निवासी श्री उम्मेदसिंह की पुत्री से होना निश्चित होकर बरात रामगढ़ से लहीरक गई। दोनों फ़रीक़ के आग्रह से मैं भी विवाह में शरीक़ होने के किये लहीरक गया। विवाह रात को १२ बजे होना था। इस लिये मैं ६ बजे रात को चलकर १० बजे लहीरक पहुंच गया। वहां एक घटना घटित हुई। वर की पार्टी के लोग, हवन के लिये घृत ले जाना भूल गये थे और उम्मेदसिंह ने कुछ अदूरदर्शी लोगों के कहने से घी देने से इन्कार कर दिया। जब मुझे इस घटना की जानकारी हुई तो अनायास मेरे हृदय में यह विचार पैदा हुआ कि यज्ञ में विघ्न कारक, इस घर का अनिष्ट हुये बिना नहीं रहेगा। घृत रामगढ़ से आ गया और विवाह कुछ वैदिक कुछ पौराणिक रीति से हो गया। एक बजे रात को विवाह समाप्त हुआ। वर वधू को आशीर्वाद दिया गया। मुझे वहां

ठहरने अथवा वहां का पानी पीने तक से इतनी ग्लानि हो गई थी कि मैं उसी समय रात्रि ही में एक दो सज्जनों के साथ अपने आश्रम में वापिस आ गया। कुछ समय बीतने पर उम्मेदसिंह जी की मृत्यु हो गई और उसके कुछ दिन बाद ही उस घर में आग लगी और घर उजड़ गया अब भी वह उसी प्रकार उजड़ा पड़ा है।

बयालीसवां अध्याय

श्री मद्दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दी अजमेर

शाहपुरा दरबार तथा दीवान बहादुर हरविलास शारदा मन्त्री परोपकारिणी सभा अजमेर की मथुरा शताब्दी महोत्सव देखने के बाद ही से उत्कट इच्छा थी कि इसी प्रकार का कोई बड़ा उत्सव अजमेर में मनाया जावे। जनवरी ३३ के प्रारम्भ में दीवान बहादुर देहली में मेरे पास आये और आग्रह किया कि मैं पूरा सहयोग देने और प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लेने का वचन दूं जिससे अजमेर में निर्वाणोत्सव सफलता के साथ मनाया जासके। अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों की इच्छा, उत्सव मनाने के पक्ष में देखकर, मैंने अपेक्षित वचन दे दिया। निर्वाणोत्सव के लिये जो प्रबन्ध कर्त्री सभा बनाई गई उसके प्रधान शाहपुराधीश कार्यकर्ता प्रधान मैं और मन्त्री दीवान बहादुर हरविलास शारदा नियुक्त हुये थे। इस कार्य की पूर्ति के लिये १४ अगस्त से २३$\frac{१०}{३३}$ तक मुझे अजमेर रहना पड़ा। महोत्सव बड़ी सफलता के साथ १४ से २० अक्टूबर १९३३ ई० तक मनाया गया। अनेक सम्मेलन हुये, नगर कीर्तन बड़ी शान से निकाला गया। उपस्थिति अच्छी खासी थी। आर्य सम्मेलन में अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास हुये। इस प्रकरण में महाराजा उदयपुर से भेंट करना पड़ा। उन्होंने २०००) सहायतार्थ दिये थे।

दयानन्द नगर अछोरा और ग्राम सुधार कार्य

महाशय देवकलीप्रसाद जी आर्य समाज के बड़े उत्साही, पुरुषार्थी और स्वाध्यायशील कार्यकर्ता हैं। जब वे बहरांयच और नानपारा आदि स्थानों में रहे तब भी आर्य समाज की सेवा बड़े लग्न से करते थे और अब जब से पेन्शिन लेकर घर आये हैं तब से तो सारा समय आर्य समाज के अर्पण कर रक्खा है। अछोरा उनका जन्म स्थान है, वहां उनकी ज़िमींदारी भी है। उन्होंने अपनी ज़िमींदारी में से एक बड़ा भाग देकर उसमें दयानन्द नगर नाम से एक ग्राम बसाया है। सप्ताह में दो बार वहां पैंठ लगा करती है। दूर दूर से दूकानदार और व्यापारी जाकर पैंठ में शरीक़ होकर स्वयं भी लाभ उठाते तथा अन्यों को भी लाभ पहुंचाया करते हैं। इस बाज़ार के सिवा, नगर में आर्य समाज मन्दिर, जिसका नाम उन्होंने "नारायण निवास" रक्खा है बनाया है। मन्दिर के साथ ही "सर्वदानन्द पुस्तकालय तथा श्रद्धानन्द औषधालय" भी स्थापित किये गये हैं। औषधालय में प्रायः एक सहस्र रोगी प्रति वर्ष चिकित्सा के लिये आते और औषधालय से लाभ उठाया करते हैं। दयानन्द नगर में एक वार्षिक मेला भी हुआ करता है जिसमें शिक्षा प्रद व्याख्यानों के साथ, कुश्ती, घुड़दौड़ आदि भी हुआ करते हैं। इन सब का उद्घाटन, उनकी इच्छानुसार मैंने किया था। इसके बाद में कई मेलों में भी शरीक़ हुआ और देखा कि आस पास के ग्रामनिवासी भाई-बहनें, उनमें बड़ी

दिलचस्पी से भाग लेते हैं और उन्हें इन सब से बड़ा लाभ पहुँचा है। ग्राम-सुधार का यह बड़ा उत्तम ढंग है और इस योग्य है कि अनेक जगह इसका अनुकरण किया जावे।

वायुयान द्वारा देहली की सैर

पं० मूलचन्द शर्मा रिटायर्ड इनजीनियर के भतीजे जो हवाई जहाज़ों के चलाने का व्यवसाय किया करते हैं, मेरे पास आये और कहा कि आज मैं उनके साथ चलकर वायुयान के द्वारा नई देहली की सैर करूं। मैंने स्वीकार कर लिया और उनके साथ जाकर एक ही बैठक वाले वायुयान पर बैठकर, लगभग १५ मिनट तक देहली की सैर की। भूमि से ऊपर होने पर कुछ असाधारणता सी मालूम होती है उसके बाद कुछ नहीं। इस सैर से बड़ा मनोरंजन हुआ।

ईस्ट अफ़रीका जाने का विचार

आर्य्यसमाज नैराबी के निमंत्रण पर मैंने ईस्ट अफ़रीका जाना स्वीकार कर लिया था, पासपोर्ट की दरख्वास्त भी देदी थी परन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण यात्रा मुलतवी करनी पड़ी।

कृष्णानन्द

स्वामी कृष्णानन्द ने संन्यास की दीक्षा मुझसे ली थी। उन्होंने संस्कृत और आयुर्वेद की औसत दर्जे की योग्यता प्राप्त करके

प्रचार-कार्य्य शुरू किया और प्रशंसा के योग्य कार्य किया। इन्होंने अपना हेडकार्टर नारायण आश्रम को बना रक्खा था इस लिये इनके वास्ते एक छोटी सी कुटी आश्रम में बनवादी गई।

रौबिन चटरजी प्रसिद्ध तैराक

एक बंगाली युवक ने, जिनका नाम रौबिन चटरजी था, पानी के भीतर देर तक रहने में संसार का रिकार्ड बीट कर रक्खा था। अलीगढ़ के निवासियों में कुछ एक प्रतिष्ठित पुरुषों की इच्छानुसार, इस युवक ने अलीगढ़ के प्रसिद्ध तालाब "अचल" में तैरते हुये रहना स्वीकार कर रक्खा था। मैं उस समय कार्य्य वश अलीगढ़ में था। वहां के प्रबन्धकों की इच्छानुसार मैं भी इस कला को देखने अचल पर चला गया। एक नाव पर बिठलाकर मुझे उस युवक के पास पहुँचाया गया जो लगभग ४६ घण्टे से पानी में था। युवक के सम्बन्धियों की इच्छानुसार और स्वयं युवक की चाहना पर, उसे आशीर्वाद दिया गया कि उसका व्रत सफल हो।

सार्वदेशिक विद्वत् आर्य्य सम्मेलन

वेद तथा आर्ष ग्रन्थों के अन्वेषण करने का विद्वानों को अवसर प्राप्त हो और इस अन्वेषण के परिणाम स्वरूप, नई नई बातें आर्य्य जनता को मालूम हो तथा विद्वानों की "स्वाध्याय" से उत्पन्न हुई शंकाओं का भी समाधान हो सके, इन और ऐसी ही अनेक उपयोगी बातों को लक्ष्य में रखते हुये, सार्वदेशिक सभा

की अनुमति से, मैंने इस सम्मेलन का करना निश्चय किया था पहला सम्मेलन १६ से २३ अक्तूबर १६३२ ई० तक हुआ। इस सम्मेलन का कुल व्यय ला० ज्ञानचंद जी, देहली के प्रसिद्ध ठेकेदार ने दिया था। सम्मेलन का कार्य्य बड़ी शान्ति और सफलता के साथ समाप्त हुआ। अनेक विद्वानों ने गम्भीर विषयों पर निबन्ध पढ़े थे जो छपकर 'पुस्तक के रूप में' प्रशंसित सभा द्वारा प्रकाशित होचुके हैं। पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और पं० ब्रह्मानन्द जी स्नातक गुरुकुल वृन्दावन के निबन्धों को विद्वानों ने बहुत पसन्द किया था।

कन्या गुरुकुल देहरादून की आधार शिला

देहली से हटाकर जब कन्या गुरुकुल देहरादून ले जाया गया और उसका स्थिर स्थान देहरादून ही जब ठहर गया तब आवश्यक था कि उसकी स्थिर इमारत वहां बनाई जावे इसी उद्देश्य से राजपुर रोड पर भूमि ली गई और निश्चय हुआ कि उसी पर गुरुकुल की इमारतें बनाई जावें। कुल के संचालक और कार्य कर्ताओं की इच्छानुसार उसकी आधार शिला मैंने रक्खी थी। प्रसन्नता की बात है कि इमारतों का बड़ा भाग तय्यार हो चुका है।

इन्डियन लीग डेलीगेशन, लंडन

लंदन की इन्डियन लीग की ओर से दो इंगलिश मैन और एक इंगलिश महिला, डेलीगेट के तौर पर देहली आये थे। उनके

प्रोग्राम में आर्य समाज के हालात जानना भी था। १९३२ ई० के मध्य में आकर वे स्विस होटल में ठहरे थे। मैं, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० देवशर्मा और ला० ज्ञानचन्द जी ठेकेदार आर्यसमाज के प्रतिनिधि के रूप में, उनकी इच्छानुसार उनसे मिले। आर्यसमाज के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी कराने के बाद, उन्हें आर्यसमाज की संस्थाओं कालिज, स्कूल, गुरुकुल और अनाथालय आदि की एक विस्तृत सूची, जो पहले से बना रक्खी थी दी गई। उसे देखकर वे आश्चर्य में पड़ गये कि आर्यसमाज इतना प्रभावशाली समाज है और उसका इतना विस्तृत काम है।

सन्ध्या में भेद

ऋषि दयानन्द के ग्रंथों सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि और पंच महायज्ञ विधि में संध्या की न केवल विधि में किंतु मंत्रों का भी भेद है। सब आर्य किस प्रकार से एक ही संध्या कर सकें इस गुत्थी को सुलझाने के लिये धर्मार्य सभा से, विद्वानों की सलाह और भलीभाँति सोचने और विचारने के बाद व्यवस्था दिलवाई गई कि संध्या के विषय में पंचमहायज्ञ विधि ही प्रामाणिक ग्रन्थ है। उसी के अनुकूल सबको संध्या करनी चाहिये।

आत्मदर्शन का चौथा संस्करण

ग्रंथ के देखने और इस संस्करण की नवीन भूमिका लिखने के बाद, १८ अक्टूबर १९३३ ई० को ग्रंथ छापने के लिये "राजपाल एण्ड सन्स", लाहौर को दिया गया।

जामये मिल्लिया देहली

गुरुकुल कांगड़ी के कमीशन के सम्बन्ध में. इस संस्था को भी देखने का अवसर मिला। डाक्टर जाकिर हुसेन प्रिन्सिपल ने, हमलोगों को, तीन घण्टा समय खर्च करके संस्था के सभी विभागों को, प्रत्येक को अपना अपना काम करते हुये दिखलाया। इस संस्था को कुछ विशेषतायें हैं :—

(१) शिक्षा "प्रोजेक्ट सिस्टम" (Project System) से दी जाती है। अध्यापक ट्रेन होने के लिये मोगा के एक मिशन स्कूल में भेजे जाया करते हैं।

(२) अलिफ, 'बे' आदि के उच्चारण, हिन्दी वर्णों के अनुसार अ, ब, त, आदि कराये जाते हैं।

(३) बच्चों के बैंकों (Child Banking System) की काय प्रणाली डाकखानों के सेविंग्स बैंकों की भांति है। दो दो चार चार पैसों के लिये प्रत्येक बालक अपना हिसाब खोल लेता है। उसे एक पास बुक मिल जाती है और कुछ वापसी धन के (With Drawal) फार्म। उसे जब एक पैसा भी लेना होता है दो फार्म भर कर देने से मिला करता है। इस प्रणाली का क्रियात्मक फल यह होता है कि बच्चों को बैंक से लेन-देन करने की योग्यता बचपन से ही आ जाती है।

तेतालीसवां अध्याय

आर्य्य अनाथालय देहली का निरीक्षण

आर्य्य समाज चावड़ी बाजार देहली के अनाथालय को जो पाटोदी हाउस, देहली में है, वहाँ के अधिकारियों की इच्छानुसार देखा गया। २०० संख्या यहां के अनाथों की है। अनाथों की मौखिक तथा कला कौशल सम्बन्धी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। अनेक देहली में दरजी का काम करने लगे हैं। अनेक दूसरे प्रकार के कामों (दरी बुनने आदि) के योग्य बन गये हैं। आर्य्य समाज ने इन अनाथालयों के खोलने के द्वारा सहस्रों हिन्दु बच्चों की रक्षा का प्रबन्ध करके उन्हें अपने पांवों पर खड़े होने योग्य बना दिया है।

एक मनोरंजक वार्तालाप

एक बार आर्य्य समाज के अनाथालयों के सम्बन्ध में एक अंग्रेज़ यात्री ने प्रकट किया है कि किसी भी अनाथालय में ३०० से अधिक संख्या अनाथों की नहीं है परन्तु उसने प्रकट किया कि इंगलैंड के अनाथालयों में अनाथों की संख्या हज़ारों से कम नहीं होती। उदाहरणार्थ उन्होंने दो अनाथालयों का जिक्र किया :—

(१) Doctor Bornard's Home (डाक्टर बौरनार्ड अनाथालय) अनाथों की संख्या ८००० और

(२) इङ्गलैंड के चर्च के अनाथालय Church of England's Home में ३३००० अनाथ हैं।

मैंने उन्हें उत्तर दिया कि हमारे अनाथालयों में संख्या की कमी के मुख्य हेतु दो हैं:—

(१) यहां व्यभिचार की सन्तान उतनी नहीं होती जितनी इङ्गलैंड में हुआ करती है।

(२) इङ्गलैंड में आमतौर से व्यभिचार की सन्तान की परवरिश अनाथालयों में हुआ करती है। परन्तु हिन्दुस्तान में, ऐसी सन्तान तीन भागों में विभक्त हो जाया करती हैं :—

(१) कुछ तो मार दी जाया करतीं हैं, (२) कुछ की परवरिश घरों में हो जाया करती है ! (३) कुछ बचे हुये बच्चे अनाथालयों में जाया करते हैं।

इंगलैंड में व्यभिचार और व्यभिचार की सन्तान बुरी दृष्टि से नहीं देखी जाया करती इसलिये वहां उनके मार डालने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई।

जन्म दिवस पर आत्म-निरीक्षण

१६३२ ई० के बसन्त पंचमी, अपने जन्म दिवस, पर आत्म निरीक्षण करने से प्रकट हुआ कि (१) यत्न करने पर भी क्रोध पूर्णतया दूर नहीं हुआ। कभी कभी उसका प्रभाव प्रकट होजाता है, (२) कभी कभी आलस्य के प्रभाव से कुछ समय नष्ट होजाता है (३) यह सन्तोष की बात है कि गत वर्ष के निश्चयानुसार, ऋग्वेद मूल का पाठ प्रारम्भ करके वर्ष समाप्त होने से पहले

समाप्त कर दिया। पहले बार की अपेक्षा अब की बार वह बहुत कुछ समझ में आने लगा।

विरक्ताश्रम ज्वालापुर में संस्कार

म० दीवानसिंह पैन्शिनर तहसीलदार ने संन्यासाश्रम की दीक्षा ली। उनके साथ ही दो देवी और पाँच पुरुष वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए। ये सब संस्कार विरक्ताश्रम ज्वालापुर में हुए। यह आश्रम जैसी कि आशा थी गृहस्थाश्रम से रिटायर्ड हुये पुरुष, स्त्रियों के लिये ईश्वरी देन सिद्ध हुआ।

वान प्रस्थाश्रम टांडा (फैजाबाद)

टांडा आर्यसमाज के एक धनी पुरुष ने सरजू नदी के किनारे टाँडा शहर से दो-ढाई मील के फ़ासिले पर वानप्रस्थाश्रम की स्थापना की। इस आश्रम के लिये उन्होंने अच्छी खासी बड़ी इमारत बनवादी और आश्रम में रहने वाले संन्यासी और वानप्रस्थों के भोजन का भी प्रबन्ध करा दिया। आश्रम के निर्माता की इच्छानुसार मैंने टांडा जाकर इस आश्रम का उद्घाटन कया। आश्रम में प्रत्येक प्रकार का सुभीता होते हुये भी, आश्रम लोगों के आकर्षण का कारण नहीं बन सका। जब वह प्रायः खाली रहने लगा तो उसमें गुरुकुल अयोध्या की एक शाखा खोल दी गई है और यह आश्रम अब गुरुकुल के रूप में परिणत होकर चल रहा है।

बहादुराबाद की दुर्घटना

सहारनपुर के जिले में ज्वालापुर के क़रीब ही एक ग्राम

बहादराबाद गंगा की नहर के किनारे पर है। २२ नवम्बर १९३० की घटना है कि कप्तान गफ़ के सामने उसके सिपाहियों ने आर्य्य समाज मन्दिर में जाकर ओ३म् की पताका उतार दी, कुछ कागज़ात जला डाले और समाज के उपमन्त्री म० रामलाल को बुरी तरह से पीटा। इस दुर्घटना की सूचना मुझे देहली में मिली, इसका उचित प्रकार से नोटिस लिया गया। अच्छा ख़ासा आन्दोलन होजाने पर फौजी ऑफ़िसर को झुकना पड़ा। यू० पी० सरकार ने स्वर्गवासी ठाकुर मशालसिंह जी के द्वारा मुझे पं० रासबिहारी तिवारी लखनऊ, राय साहब गंगाराम देहली और उपर्युक्त पं० रामलाल को १४ अगस्त १९३१ ई० को नैनीताल में आमन्त्रित किया। हम लोग वहां गये। मशालसिंह जी भी मौजूद थे। कमान्डरिनचीफ़ के प्रतिनिधि के रूप में करनेल ग्रेटन भी वहां आये हुये थे। कैप्टेन गफ़ ने, सरजगदीश प्रसाद चीफ़ सेक्रेट्री के आफ़िस में जहां हम सब मौजूद थे २२११३० को आर्य्य समाज बहादराबाद के प्रति किये हुये दुर्व्यवहार के लिये क्षमा-याचना की और लिखित क्षमापत्र पं० रामलाल को जाकर दिया। इसके सिवा २००) बतौर मुआवज़े के, कप्तान गफ़ ने पं० रामलाल को दिये। कप्तान गफ़ ने हम सब लोगों में से एक एक के पास जाकर हाथ मिलाया और प्रत्येक के सन्मुख हाथ मिलाते हुये घटित घटना के लिये खेद प्रकट किया। इस सब के बाद करनल ग्रेटन ने, हिज़ ऐक्सी लैन्सी कमान्डर, इनचीफ़ की ओर से आर्य समाज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि इस मामले को

निपटाने और कप्तान गफ़ की क्षमा प्रार्थना स्वीकार करने में उसने बड़ी उदारता से काम लिया है। इसके बाद चीफ़ सैक्रेटरी ने, सरकार की ओर से, मुझे खद्दर का एक थैला भेट किया। इस थैले में, आर्य्य समाज बहादराबाद में फिर से लगाने के लिये शुद्ध खादी का ओम् का झंडा था। इसके लिये सरकार को धन्यवाद देकर हम सब सैक्रेट्री के कमरे से रुख़सत हुये। १८ अक्तूबर १६३१ ई० को बहादराबाद में एक विशेष उत्सव करके मैंने इस झंडे को वहां के समाज मन्दिर में लगा दिया।

ला० बनारसीदास और विधवाश्रम

देहली के प्रसिद्ध धनीमानी सज्जन ला० बनारसीदास, लोहिये ने, जिन्हें फ़ालिज ने मारा था और जो क्रियात्मक रूप में मृत्यु शय्या पर थे मुझे बुलाकर कहा कि वे एक लाख रुपये देने की वसीयत करते हैं उससे देहली में एक विधवाश्रम बनवाकर चलाया जावे। उनके पुत्रादि सम्बन्धियों ने भी पूछने पर अनुमति दी। इसके बाद ला० बनारसीदास की हालत ख़राब होने लगी और उन्हें वसीयतनामे पर हस्ताक्षर करने आदि का होश नहीं रहा। यह देखकर उनके लड़कों ने झट आंख बदल लीं और वसीयतनामे की तकमील आदि में ज़रा भी सहयोग नहीं दिया। यदि उनके लड़के उनकी मौखिक वसीयत पर कायम रहते तो मौखिक वसीयत ही कार्य्य में परिणत होसकती थी। पिता के आंख बन्द होते ही पुत्र आंख बदल लिया करते हैं इसको प्रत्यक्ष रीति से, मैंने यहां देख

लिया। इस घटना से उन लोगों को शिक्षा लेनी चाहिये जो आज करने के काम को कल पर टाला करते हैं।

बारहबङ्की में धर्मशाला की बुनियाद

बारहबङ्की के आर्य्य पुरुषों में से एक सज्जन ने वहां एक धर्मशाला बनाना निश्चय किया और आग्रह किया कि वहां जाकर मैं उसकी बुनियाद रखदूं। तदनुसार उस धर्म. शाला की बुनियाद, बारहबङ्की जाकर रखदी गई।

१६३३ ई० का जन्म दिवस—बसन्त

ऋषि दयानन्द को परलोक सिधारे हुये १६३३ की दिवाली को पूरे पचास वर्ष होंगे। इसी के उपलक्ष्य में, ऋषि दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दी का महोत्सव अजमेर में होना नियत हो चुका था। इस लिये निश्चय किया गया कि यह जन्म दिवस विशेष रीति से मनाया जावे। वह विशेष प्रकार, गीता की शिक्षानुसार "या निशा सर्वभूतांना तस्यां जागृति संयमी" यह था कि रात्रि के अधिक भाग में किये गये अभ्यासों को दुहराया जावे। तदनुकूल रात्रि में पांच घंटे (१२ से ५ बजे तक) प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यास दुहराये गये। सब से अधिक समय, ध्यान के अभ्यासों में लगाना पड़ा। कुछ काल से, इन अभ्यासों के छुटे हुये होने के कारण इनके दुहराने तिहराने में अनेक प्रकार की कठिनता अनुभव हुई परन्तु अन्त में सभी अभ्यास ठीक होगये। इन अभ्यासों के करने में, प्रायः चार घंटे से अधिक समय लग गया जिससे शरीर में अच्छा

ख़ासा थकान होगया इसलिये शरीर को शिथिल करने का अभ्यास किया गया। इस अभ्यास में यद्यपि आधा घंटा समय बीत गया परन्तु शरीर को आराम मिल जाने से, सब थकान जाता रहा। प्रारंभ की रात्रि में सो लेने से सोने की तकलीफ़ भी कुछ नहीं रही थी।

सार्वदेशिक सभा के काम छोड़ने का निश्चय

सार्वदेशिक सभा के लिये, सन् १९२३ ई० में, उस (प्रधान पद) का काम लेते हुये, निश्चय किया गया था कि इस सभा को पूरा यत्न करके जिस दरजे में पहुँचने की वह हक़दार है, उसी दरजे में उसे पहुँचा देना चाहिये। प्रसन्नता की बात है कि इन दश वर्षों में (१९२३ ई० से १९३३ ई० तक) यत्न करने पर सभा ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया और अब प्रायः किसी सभा या समाज के लिये, उसकी अवहेलना करना असंभव सा हो गया, इसलिये इसी जन्म दिवस के अवसर पर निश्चय किया गया कि प्रादेशिक सभा के दाख़िले के लिये, सार्वदेशिक सभा का द्वार खोल कर, सार्व० सभा का काम छोड़ देना चाहिये।

भेंट अस्वीकार

एक सज्जन ने, एक हज़ार रुपये का चैक भेजते हुये लिखा कि "आप के हाथों से सैकड़ों परोपकार के काम होते रहते हैं। १०००) का चैक आपकी भेंट है। आप उसे जैसे उचित समझें वैसे व्यय करें। मैं इस के सिवा सद्व्यय का इस

से अच्छा उपाय नहीं देखता"। चूंकि मुझे धन की जरूरत नहीं थी इसलिये, २७ मार्च १९३३ ई० को धन्यवादपूर्वक चैक वापिस कर दिया गया।

श्रद्धानन्द नगरी में आर्य मन्दिर का उद्घाटन

देहली में दलित भाइयों के लिये, सरकार से पुष्कल भूमि लेकर, श्रद्धानन्द नगरी के नाम से एक नगरी बसाई गई है। उसमें एक आर्य मन्दिर भी बनाया गया था। पहली अप्रेल १९३३ ई० को, नगरी के संचालकों की इच्छानुसार, उस मन्दिर का उद्घाटन किया।

नारायण आश्रम का मार्ग

रामगढ़ (नैनीताल) में नदी के पुल से लगभग एक फ़रलांग की दूरी पर नारायण आश्रम है जहां मैं रहा करता हूँ। कोई रास्ता न होने से, ख़ास कर वर्षा ऋतु में बड़ी तकलीफ आश्रम तक पहुँचने वालों को उठानी पड़ती थी। इसलिए इस वर्ष (१९३३ ई० में) रास्ता बनवाया गया और आश्रम के क़रीब एक पुल की जरूरत थी वह भी बनवा दिया गया।

नारायण आश्रम की वृद्धि

आश्रम के पुस्तकालय की पुस्तकों के रखने की जगह बाक़ी न रहने से आश्रम के उत्तर और पूर्व दोनों ओर दुमंजिला बरामदे बनवाये गये और उनकी दीवारों में बड़ी बड़ी अलमारियां पुस्तकों के रखने के लिये, बनवाई गईं।

एक संन्यासी को गृहस्थाश्रम में लौटने की सलाह दी गई

एक संन्यासी जो कई वर्ष तक आर्य समाज के प्रचलित, सुधार कार्यों में भाग लेते रहे थे मेरे पास आये और उन्होंने असंदिग्ध शब्दों में प्रकट किया कि वे संन्यास धर्म का यथार्थ रीति से पालन नहीं कर सकते इसलिये नीचे के आश्रम में लौट जाना चाहते हैं। मैंने उनको, उनकी सत्य प्रियता के लिये साधुवाद दिया और उन्हें गृहस्थाश्रम के पुनः ग्रहण कर लेने की सलाह दी। वे अब अच्छे गृहस्थ हैं।

विद्यार्थी जीवन रहस्य १६ वां ग्रंथ

२४ वर्ष तक की आयु नव-युवकों और विद्यार्थियों को किस प्रकार बितानी चाहिये जिससे उनका शरीर मस्तिष्क और आत्मा सभी बलवान् बनें? इसी उद्देश्य से "विद्यार्थी जीवन रहस्य" नामक पुस्तक की रचना की गई थी। वह पुस्तक प्रकाशन के लिये प्रोफ़ेसर सुधाकर के स्थापित किये हुये शारदा मन्दिर को दिया गया।

दक्षिणा का दान

रामगढ़ में, एक बालक का यज्ञोपवीत संस्कार कराने में भिक्षा के १५।=)। तथा एक थाल और एक और दूसरे संस्कार कराने में २३) दक्षिणा में मिले थे। ये सब आर्य समाज रामगढ़ के भेंट करा दिये गये।

विद्यार्थियों की सहायता

(१) एक शुद्ध हुये विद्यार्थी को दो मास रामगढ़ में रखकर

हिन्दू यूनिवर्सिटी के खुलने पर २५) मार्ग व्ययादि के लिये देकर उसे २२$_{३}^{६}{}_{३}$ को बनारस भेज दिया गया। वह वहां एफ़. ए. में पढ़ता था।

(२) रामगढ़ के एक विद्यार्थी को २२) सहायतार्थ दिये गये।

(३) झल्ला मल्ला खोली (अलमोड़ा) के एक होनहार तथा ग़रीब विद्यार्थी को ३ मास तक १०) मासिक के हिसाब से सहायता दी गई।

कर्तव्य दर्पण का तीसरा संस्करण

तीसरे संस्करण की भूमिका लिखकर छपने भेजी गई। इस ग्रंथ की आशा से अधिक मांग हुई। इस संस्करण के बाद ही जल्द जल्द इस के दस संस्करण और निकल गये।

भूमिका लेखन

निम्न ग्रन्थों की भूमिका ग्रंथ लेखकों के आग्रह पर लिखी गई—

(१) निबंध संग्रह सार्व० सभा द्वारा प्रकाशित।

(२) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर।

(३) श्रम पितृ परिचय।

(४) पं० प्रिय रत्न के दो ग्रन्थ।

(५) प्रिंसिपल राजेन्द्र कृष्ण कुमार मोगा के अंग्रेजी ग्रंथ की (अंग्रेजी में)।

एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त रूप में

लखीमपुर से लखनऊ आकर बाबू सीताराम वकील के साथ

उनके पुत्र के घर लखनऊ ठहरा। प्रातः काल जब वहां से स्टेशन पर चले तो तांगे पर सामान रखने वाले नौकर ने भूल से मेरा पढ़ने लिखने का बक्स तांगे पर नहीं रक्खा। स्टेशन पर जाकर इस भूल का पता चला। बाबू सीताराम जो मुझे स्टेशन पर पहुँचाने आये थे, उन्हें घर जाकर वह बक्स लाना पड़ा। इसमें सबसे अधिक मेरी असावधानी थी। मुझे अपना सामान स्वयं देख लेना चाहिये था। इसके लिये प्रायश्चित्त रूप में एक दिन का उपवास किया गया। यह नवम्बर सन् १९३३ ई० की बात है।

प्रयाग के एक होस्टल में व्याख्यान

प्रयाग के विश्व विद्यालय से संबंधित सर सुन्दरलाल (हिन्दू) होस्टल में समदृष्टि बाद और सांप्रदायिकता (Communism and Communalism) पर व्याख्यान दिया गया। व्याख्यान के अन्त में होस्टल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने इच्छा प्रकट की कि मैं उस होस्टल में एक सिलसिला व्याख्यानों का दूं। प्रस्ताव अच्छा था और मेरे लिये भी रुचिकर काम था, परंतु पहले से बने प्रोग्राम के कारण, मैं प्रयाग न ठहर सका और प्रस्ताव कार्य्य में परिणत न हो सका।

डी० ए० वी० हाई स्कूल न्यू देहली में व्याख्यान

दिसम्बर में ३ दिन तक व्याख्यान डी० ए० वी० हाई स्कूल न्यू देहली में दिये गये। विषय विद्यार्थी जीवन और चरित्र निर्माण व्यवस्था था। व्याख्यानों के सुनने के बाद अनेक

नवयुवक मेरे स्थान पर आये और ब्रह्मचर्य्य आदि अनेक विषयों के समझने का प्रयत्न करते रहे।

आर्य्य समाज मन्दिर हनुमान रोड नई देहली का उद्घाटन

नई देहली का यह मन्दिर, जो नई देहली के अनुरूप ही है, स्वर्गीय ला० दीवानचदं जी की धर्म पत्नी ने ५५०००) की लागत से बनवाया था। मन्दिर का हाल विशाल है और भी कई मकान उपदेशकों के ठहरने आदि के लिये मन्दिर के साथ ही बनवाये गये थे। उस मन्दिर का नियमपूर्वक उद्घाटन देवी जी तथा इनके कार्य्य संचालकों की इच्छानुसार १० वीं दिसम्बर १६३३ ई० को मैंने किया और ६ दिन तक उसमें, उद्घाटन के बाद, कथा की गई।

चवालीसवां अध्याय

विश्व प्रेम मंड़ल मथुरा

मथुरा के कुछेक सज्जनों ने एक संस्था विश्व प्रेम मंडल के नाम से खोल रक्खी थी। संस्था का उद्देश्य बिना लिहाज़ रंग, नस्ल, और देश के, सभी विचार के मनुष्यों में पारस्परिक प्रेम पैदा करना बतलाया गया था। जब मैं, १६३३ ई० के अंत में, गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव में गया था तो वहां उपर्युक्त संस्था के संचालकगण मेरे पास आये और इच्छा प्रकट की कि मैं उनके एक विशेष अधिवेशन में शरीक़ होकर "ब्रह्मज्ञान" विषय पर व्याख्यान दूं। मैंने इस निमन्त्रण को स्वीकार करके २८ दिसम्बर, १६३३ ई० को उनके मंडल में शरीक़ होकर अपेक्षित व्याख्यान दे दिया। उस अधिवेशन में बहाई, ईसाई मुसलमान आदि अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि मौजूद थे।

पं० घासीराम का रुग्ण होना

पं० घासीराम एम. ए. आर्य समाज के गिनेचुने विद्वानों में से एक थे। संस्कृत, अँगरेज़ी, फ़ारसी आदि अनेक भाषाओं में उनका अच्छा ख़ासा दख़ल था। वे रोगी हो गये थे और ख़बर यह आई कि उनका रोग असाधारण है। इस लिये मैं देहली से उनके देखने के लिये गया और भी कतिपय सज्जन साथ थे। यद्यपि वे हम सब से हंस हंस कर बात करते रहे

परन्तु उनके शरीर की अवस्था से प्रकट यह होता था कि उनका अंत समय समीप आ चुका है। हम लोग उन्हें देखकर लौटे ही थे कि उसके कुछ ही दिनों बाद, उनका देहावसान होगया। उनके वियोग को आर्य समाज से प्रत्येक प्रेम रखनेवाले ने बड़े दुःख के साथ सहन किया।

पांव और हाथ में चोट आगई

१९३४ के प्रारम्भ में, जब रामगढ़ में बर्फ़ पड़ने का समय था, मैं सदा के नियमानुसार, रामगढ़ अपने (नारायण) आश्रम में आया और १० दिन तक ठहरा। ग्यारहवें, दिन, रामगढ़ से देहली जाना था। परन्तु उससे पहली रात सीढ़ी से पांव फिसल जाने से सीधे पैर के घुटने और सीधे ही हाथ के पंजे में गहरी चोट आगई। घोड़े पर सवार होकर बड़ी कठिनता से भवाली पहुंचा। वहां से सीधा बरेली जाकर डाक्टर श्यामस्वरूपजी से इलाज कराना शुरू किया। सभी बातों को आराम होगया सिर्फ़ इतनी तकलीफ़ बाक़ी रह गई कि सीधे हाथ के अँगूठे के नाख़ून की जड़ से मवाद निकलना बन्द नहीं हुआ। देहली में कुछेक आवश्यक काम थे, कई पत्र और तार आ चुके थे इसलिये यह ख़याल करके कि इसका देहली में इलाज हो जावेगा देहली चला आया; परन्तु २ मास तक चिकित्सा होने पर भी मवाद निकलना बन्द नहीं हुआ। अंत में देहली के प्रसिद्ध सरजन डाक्टर एन. सी. जोशी के केवल ५ दिन ड्रेसिंग करने से मवाद निकलना बन्द हो गया। डाक्टर जोशी ने पट्टी बांधने

से पहले भीगे हुये लिन्ट पर एक औषधि के प्रयोग से बनाया हुआ कपड़ा रख दिया, उसके बाद पट्टी बांधी गई। फल इसका यह हुआ कि लिन्ट जितना भीगा हुआ था उस कपड़े के रखने से वह उतना ही भीगा हुआ २४ घण्टे के बाद भी बाक़ी रहा। इस प्रकार के ड्रेसिंग से अगूठा बिल्कुल अच्छा होगया।

आर्य्य समाज में प्रविष्ट होने के लिये १० नियमों के सिवा क्या अन्य सिद्धान्तों का मानना आवश्यक है ?

पं० विश्वबन्धु शास्त्री आचार्य ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर का आर्य्य समाज से मतभेद तथा रायमूलराज के १० प्रश्नी नाम का एक ट्रैक्ट लिखने से, यद्यपि उस ट्रैक्ट का उत्तर म० हंसराज ने, आर्य्य गज़ट द्वारा दे दिया था, आर्य्य विद्वानों के सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित होगया कि आर्य्य समाज में प्रविष्ट होने के लिये केवल १० नियमों का पालना काफ़ी है अथवा उन सिद्धान्तों का मानना भी आवश्यक है जो वेदों के आधार पर स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में लिखे हैं। इस बात के निर्णय के लिये, सार्वदेशिक सभा के नेतृत्व में देश भर के आर्य्य विद्वानों की एक सभा २७ वीं मार्च १६३३ ई० को आर्य समाज मन्दिर चावड़ी बाज़ार में बुलाई गई। इस सभा में कालिज पार्टी लाहौर की प्रादेशिक सभा की ओर से भी सात विद्वान् शरीक हुये थे और पं० विश्वबन्धु जी शास्त्री तथा उनकी ओर के भी कुछ विद्वानों को उस सभा में भाग लेने का अवसर दिया गया था। प्रधान का आसन सब की सम्मति से मुझे ग्रहण

करना पड़ा था। विद्वानों ने पक्ष और विपक्ष के विचार करने में अच्छी दिलचस्पी ली। तीन घण्टे तक वादानुवाद के बाद अन्त में पं० विश्वबन्धु जी की पार्टी के चार विद्वानों को छोड़कर सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि आर्य्य समाज में प्रविष्ट होने के लिये दस नियमों के साथ उन सिद्धान्तों का मानना भी आवश्यक है जिन्हें ऋषि दयानन्द ने वेदों के आधार पर अपने ग्रन्थों में लिखा है। यह निश्चय आर्य्य समाज के संशोधित उपनियमों में सम्मिलित हो चुका है।

सार्वदेशिक सभा का प्रधान पद

इस वर्ष इरादा कर लिया गया था कि सार्वदेशिक सभा के प्रधानपद को छोड़ देना चाहिये। परन्तु ला० खुशालचन्द प्रधान प्रादेशिक सभा ने इसरार किया कि प्रादेशिक सभा को सार्वदेशिक सभा में प्रविष्ट करा के तब मैं सार्व० सभा का काम छोड़ूं; उन्होंने यह भी प्रकट किया कि वे यत्न कर रहे हैं प्रादेशिक सभा सार्व० सभा में दाखिले की शर्त को पूरा करके, यथा सम्भव शीघ्र, उसमें दाखिल होजावे। इस लिये $२७\frac{३}{३४}$ के सार्व० सभा के वार्षिक अधिवेशन में, फिर मुझे प्रधान पद के न छोड़ने के लिये बाधित होना पड़ा।

बिहार का भूकंप

इस वर्ष बिहार में भूकम्प से बड़ा अनिष्ट होगया। १५ जनवरी १९३४ को जब मैं आर्य्य मन्दिर बरेली में, हाथ पांव की चिकित्सार्थ ठहरा था दिन के तीसरे पहर एक साथ मेरा

पलंग, मन्दिर के किवाड़ आदि सब हिलने लगे। कुछ सैकिंड ही यह हालत रही। इसी भूकम्प ने विहार के अनेक नगरों को बरबाद कर दिया। हज़ारों जानें गईं, करोड़ों रुपये की सम्पत्ति ग़ारत होगई। इच्छा हुई कि मैं विहार पहुंचकर दुखित परिवारों को सान्त्वना देने का यत्न करूं; परन्तु डाक्टरों ने हाथ और पांव दोनों ख़राब होने के कारण, वहां जाने की अनुमति नहीं दी।

३ मास के बाद जब मेरे हाथ पांव अच्छे होगये तब मैं अप्रेल मास में विहार जा सका। १५ दिन मैंने वहां खर्चे किये, और सभी पीड़ित स्थानों को तथा जहां जहां आर्य्य समाज की ओर से सहायता केम्प स्थापित थे उन सब को देखा। मुंगेर सीतामढ़ी तथा मोतीहारी की तो ऐसी हालत होगई मानो इन नगरों को, शत्रुओं ने गोलावारी करके, ईंट और पत्थरों का ढेर कर दिया है।

सीतामढ़ी, मोतीहारी और मुजफ्फरपुर आदि की तो भूमि भी ख़राब होगई है। कहीं फट गई है, कहीं रेत के ढेर निकल आये हैं, कहीं पानी के नाले बहने लगे हैं। रेत निकल आने से कुंए खराब होगये। उनका पानी पीने योग्य नहीं रहा। कहीं भूमि बहुत ऊंची होगई है, कहीं अनेक मकान, भूमि फटजाने से नीचे चले गये हैं। मोतीहारी में एक नया कुआं, जो पता नहीं कब से ज़मीन के भीतर था, निकल आया है। उसका पानी भी अच्छा और पीने योग्य बतलाया गया। इन स्थानों के निवासियों की दयनीय दशा देखकर आँखें भर आती हैं।

आर्य्य समाज का काम

आर्य्यसमाज की ओर से प्रायः सभी पीड़ित स्थानों पर सहायता पहुँचाने के लिये केम्प खुले हुये थे। अन्न बांटा गया, वस्त्र दिये गये, छप्पर बनवाये गये, कुंए साफ़ कराये गये। अनाथों को आर्य्य समाज के अनाथालयों में स्थान दिया गया। दो उच्च घराने के बालकों को जो अनाथालय नहीं जाना चाहते थे, मोगा कालिज में, शिक्षार्थ तथा भरण पोषणार्थ भी, भिजवाया गया, एक दो जगह पीड़ित स्थानों पर भी अनाथालय खोल दिये गये।

कुछ लोगों की चालाकी

जहां इस आपत्ति काल में आर्य्य समाज तथा अन्य संस्थाओं की ओर से पीड़ितों को अन्नादि बांटा जाता था, वहां कुछेक चालाक और अनधिकारी लोगों को देखा गया कि वे पीड़ितों का भेष बनाकर अन्नादि लेने का यत्न करते थे, कहीं कहीं वे अपनी इस चालाकी में कामयाब भी होजाते थे।

इस भ्रमण से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। आर्य्य और आर्य्यसमाजें जो कुछ कर सकते थे उन में कुछ भी कमी नहीं पाई गई।

प्रायश्चित्त

फ़रवरी तथा मार्च में, प्रचारार्थ अनेक स्थानों पर जानेकी प्रतिज्ञायें की गई थी परन्तु हाथ पांव में तकलीफ़ होजाने से कहीं

भी नहीं जा सका। चोट लगने में, असावधानी तो मैंने ही की थी इसलिये अन्तरात्मा ने मुझे प्रतिज्ञा भंग करने का दोषी ठहराया, इसी अपराध का प्रायश्चित्त ४ से ६-४-३४ तक तीन दिन के अनशन के रूप में किया गया।

विहार के भ्रमण से संबन्धित कुछ फुटकर बातें

मेहसी ग्राम में, एक देवी ने आर्य्य समाज के भूकम्प सम्बन्धी काम से प्रभावित होकर, आर्य्य समाज के मन्दिर बनाने के लिये मुफ़्त में भूमि दी थी, आर्य्य समाज के अधिकारियों की इच्छानुसार, भूमि पर मन्दिर की बुनियाद रक्खी गई।

(२) सीतामढ़ी में मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहां के समाज के मंत्री पद का काम एक देवी करती थी, देवीजी बड़ी बुद्धिमत्ता और पुरुषार्थ के साथ काम कर रही थीं।

(३) दरभंगा के आर्य कुमार बड़े उत्साही हैं। वे बड़ी तत्परता से समाज का काम करते हुये मिले। उन्होंने अपने ही पुरुषार्थ से वहां आर्य समाज का मन्दिर बना दिया।

(४) मुजफ़्फ़रपुर में प्रयाग की सेवा समिति ने, एक बस्ती भूकंप पीड़ितों के लिये बनाई थी। उसका उद्घाटन म० गांधी करने वाले थे। मुझे भी उन्होंने, आग्रह के साथ निमन्त्रण दिया था। नियत समय पर मैं वहाँ गया परन्तु इतना कुप्रबंध था कि कोई स्त्री पुरुष २०, २५ मिनट तक धक्का मुक्की किये बिना भीतर नहीं जा सकता था। मैंने ऐसी सभा के भीतर जाना और रहना

उचित न समझकर, प्रवेश नहीं किया। पीछे से कुछ लोग बुलाने भी आये परन्तु मैंने जाने से इन्कार कर दिया।

(५) महात्मा गांधी ने भूकंप के प्रसंग में बिहार में भ्रमण करते हुये, अनेक जगह भाषण दिये और प्रत्येक जगह यह घोषणा की कि इस भूकंप का कारण वे अत्याचार हैं जो सवर्णों ने अछूतों पर किये थे। म० गांधी का यह कथन, कि भूकंप बिहार के लोगों के कर्मों का फल है, न्याय, तर्क और शास्त्र सबके विरुद्ध था। तीन प्रकार के दुःखों, अध्यात्मिक, आधि भौतिक और आधि दैविक में से, केवल अध्यात्मिक दुःख मनुष्य के कर्मों का फल हुआ करते हैं। बाक़ी दो प्राकृतिक नियमों की गति-विधि से हुआ करते हैं; उनमें मनुष्य के कर्मों का कुछ भी अमल दख़्ल नहीं। यदि क्लिष्ट कल्पना के तौर पर यह मान भी लिया जावे कि भूकंप बिहार के उच्च जाति के कर्मों के फल से हुआ तो फिर नीच जातियों (अछूतों) को जो कष्ट हुये वे क्यों? क्या प्राकृतिक नियमों ने भी अछूतों पर अत्याचार करने में उच्च जातियों का हाथ बटाया? मुझे भी प्रांत भर के भ्रमण करने में प्रत्येक जगह व्याख्यान देने पड़े। मैंने प्रत्येक जगह, उपर्युक्त भांति म० गांधी के इस कथन का खंडन किया कि भूकंप बिहार के लोगों का कर्म-फल है। मेरे इन व्याख्यानों को बिहार और बंगाल के अनेक पत्रों ने पूरा पूरा छापा और इस प्रकार मेरा किया प्रतिवाद छाप कर उन्होंने विचार शीलों के सम्मुख, विचारार्थ दूसरा पक्ष भी उपस्थित कर दिया। बिहार के लोगों के लिये तो स्वाभाविक ही था कि मेरे व्याख्यानों से सन्तुष्ट होते और इसीलिये हुये भी।

साहित्य संबंधी काम

योग रहस्य और मृत्यु और परलोक नामक ग्रंथों को सार्वदेशिक सभा ने प्रकाशित करना चाहा था, इसलिये दोनों ग्रंथों का संशोधन करके उन्हें सभा की भेंट किया गया। सभा ने कृपा करके इन दोनों ग्रंथों के मूल्य, लागत मात्र, केवल पांच पांच आने रक्खे। जिससे प्रत्येक श्रेणी के लोगों को उनसे लाभ उठाने का अवसर मिला।

राजा साहिब अवागढ़

राजा साहिब अवागढ़ के कई पत्र आये जिनमें आग्रह किया गया था कि मैं एक बार अवागढ़ आऊँ। एटे के स्वामी शान्तिप्रकाश जी ने भी उसकी पुष्टि की इसलिये मैंने अवागढ़ जाना स्वीकार कर लिया था। मैंने मिरजापुर से देहली के लिये लौटते हुये राजा साहिब को तार दे दिया था कि मैं अमुक समय जलेसर स्टेशन पर पहुंचूंगा वहां सवारी मिलने पर मैं अवागढ़ एक दिन के लिये चला आऊँगा। मैं प्रतिज्ञापित समय पर जलेसर पहुँचा परन्तु राजासाहिब की न कोई सवारी मिली न कोई आदमी मिला, इसलिये मैं सीधा देहली चला गया और राजासाहिब को इसकी सूचना देहली पहुचने पर पत्र द्वारा देदी। उत्तर में राजासाहिब का क्षमा याचना का पत्र आया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनके आदमियों ने ग़लती यह की कि मिरजापुर से देहली जाने वाली गाड़ी की जगह उस गाड़ी में मुझे ढूंढ़ा जो देहली से मिरजापुर की ओर जा रही थी। मुझे

यह जानकर दुःख हुआ कि ग़लती करने वाले कर्मचारी का वेतन ६ मास के लिये राजा साहिब ने कम कर दिया।

(२) २४ से २७ जून १६३५ ई० तक मुझे नैनीताल के इंडियन क्लब में कथा करनी थी। स्वामी शान्ति प्रकाश जी को, राजा साहिब अवागढ़ ने, जो उन दिनों नैनीताल ही थे, मेरे आश्रम (रामगढ़) पर इसलिये भेजा कि मैं इन दिनों नैनीताल उन्हीं की कोठी में ठहरूं। मैं इसे स्वीकार करके शान्तिप्रकाश जी के साथ नैनीताल जाकर राजा साहिब के यहां ठहर गया। दो दिन राजा साहिब के महल में उपदेश दिया गया। वहां (उनकी कोठी पर) ठहरने से मालूम यह हुआ था कि राजा साहिब, अपने मुसाहिबों और दक्षिणार्थी पंडितों के साथ, रात्रि में दो दो तीन तीन बजे तक जगते हैं और दिन में उसकी कसर निकाल लिया करते हैं। परन्तु मेरे लिये यह सम्भव नहीं था कि मैं इस रतजगे में उनका साथी बनूं। एक रात ६½ बजे, मेरे पास राजा साहिब का आदमी आया कि उपदेश देने के लिये महल में बुलाया है, मैंने कहला भेजा कि मैं दस बजे सो जाया करता हूँ इस लिये केवल १५ मिनट कुछ उपदेश कर दूंगा। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया मैं तदनुसार उनके महल में १५ मिनट उपदेश देकर चला आया। इन राजाओं और बड़े आदमियों के ख़राब करने वाले प्रायः इनके मुसाहिब हुआ करते हैं। यदि इन्हें अच्छे नियमित जीवन रखने वाले आदमी मिलें तो इनकी दुर्दशा न हों।

(३) इसके कुछ काल व्यतीत होने के बाद मेरे पास एक तार केवल 'राजा' के नाम से अवागढ़ से आया जिसमें अवागढ़ बुलाया गया था। मैं नैनीताल में राजा साहिब का कार्य्य-क्रम देख चुका था इस लिये मैंने अवागढ़ जाना बिल्कुल फ़जूल समझा, और उत्तर दे दिया कि मैं न आ सकूंगा।

पैंतालीसवाँ अध्याय

शीतकालीन पहाड़ी यात्रा

जनवरी १९३५ ई० के प्रारम्भ में यह यात्रा शुरू की गई। मैं काठगोदाम से मोटर में भुवाली पहुंचा और भुवाली से रामगढ़, फिर एक बार बर्फ़ पड़ती हुई में चलना पड़ा। गांगर की राह में लगभग २½ मील बर्फ़ के ऊपर चलना पड़ा जब कि आसमान से भी बर्फ़ गिर रही थी। यद्यपि कुछ शारीरिक कष्ट हुआ परन्तु चित्त बड़ा प्रसन्न रहा। मैंने रामगढ़ लगभग दो सप्ताह ठहरकर पहाड़ी सरदी का आनन्द लिया। पहाड़ की सरदी यद्यपि मात्रा में अधिक होती है परन्तु उसमें ठिठरन नहीं होती, इसी लिये बड़ी सुहावनी मालूम होती है।

एक विधवा विवाह

रामगढ़ के अल्प निवास काल ही में, एक विधवा विवाह कराना पड़ा। बर एक विधुर था और स्त्री विधवा थी ही। विवाह हो जाने पर दोनों बड़े आनन्द से रामगढ़ में रहते हैं और अपनी खेती आदि का काम करते हैं।

मऊनाथ भंजन की यात्रा

आर्य्य समाज मऊ के मन्दिर की स्वच्छता देख कर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। वहां के समाज में कोई चपरासी नहीं है परन्तु मन्दिर ही नहीं उसका अहाता भी इतना साफ़ था कि

देखने से प्रसन्नता होती थी कारण पूछने पर पता चला कि आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य, बारी बारी से, इस सफाई के काम को किया करते हैं। यहां के आर्य्यों में बड़ा मेल है. इसके दो कारण मालूम हुये, एक तो यहां कोई संस्था नहीं है दूसरे सेठ रामगोपाल जैसे आर्य का संपर्क।

सुलतानपुर (अवध) की यात्रा

मैं निश्चित प्रोग्राम के अनुसार सुलतानपुर पहुँचा। श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु वहां मिले। पं० ब्रह्मदत्त को शुद्धि के काम से बड़ा प्रेम है। आगरे के मलकानों की शुद्धि में इनका बड़ा हाथ था। इस जिले में भी, आगरे के मलकानों की तरह लाखों नौ मुसलिम हैं, जिनके सभी रस्मोरिवाज हिन्दुओं जैसे है। नाम मात्र के लिये मुसलमान कहे जाते हैं। इस जिले में इन्हें मलकाना नहीं अपितु खान जादा कहते हैं। वे चाहते हैं कि अपनी असली हिन्दू बिरादरी में शामिल हो जावें परन्तु इनकी बिरादरी वाले इतने बेसमझ और अदूरदर्शी हैं कि उन्हें शामिल नहीं करते। एक कमेटी स्थानिक सज्जनों की, इसलिये बना दी गई कि वह, इनकी हिन्दू बिरादरी में काम करके उन्हें तैयार करें कि वे इन खानजादों को बिरादरी में मिला लेवें परन्तु इन कट्टर पंथियों में यदि कुछ काम हो जावे तो उसे आश्चर्य्य की बात ही समझनी चाहिये।

आर्य समाजों के उपनियम

आर्यसमाज के उपनियमों में यद्यपि बर्ष बर्ष के बाद

संशोधन करने का अधिकार दिया गया था परन्तु हुआ यह कि वे कभी संशोधित ही नहीं हुये यद्यपि संशोधन योग्य अनेक बातें सम्मुख आ चुकी थीं। इसलिये सा० दे० सभा का ध्यान इस ओर दिलाया गया और संशोधन कार्य प्रारंभ किया गया। इस संशोधन की कार्यप्रणाली में चार वर्ष अवश्य लग गये परन्तु उपनियम वर्तमान की आवश्यकतानुसार बन गये। सार्वदेशिक सभा की विशेष साधारण सभा में वे २५ जनवरी १९३५ को और आर्यों की सभा में २६ जनवरी ३५ को कुछ संशोधन के साथ स्वीकार हो गये।

सा० दे० सभा के प्रधान पद त्यागने का विषय

इस वर्ष सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद को छोड़ना था परन्तु प्रो० रामदेव जो गुरुकुल कांगड़ी ने इसरार किया कि इस वर्ष मैं प्रधान पद न छोड़ूँगा अगले वर्ष वे मुझे सुबक दोष कर देंगे इसलिये इस वर्ष भी यह विषय खटाई में पड़ा रहा।

पोलैंड के एक डाक्टर से भेंट

बलिदान भवन, देहली में पोलैंड के एक डाक्टर भेंट करने आये। वे होमियोपैथी चिकित्सा करते थे परन्तु योग सीखने के इच्छुक थे। उन्हें उनकी इच्छानुसार कुछ प्रारंभिक अभ्यास बतलाये गये। वे बराबर आठ दिन तक आते और अभ्यास करते रहे। इसके बाद चले गये।

वेद कुसमांजलि

मुझे कई व्यक्तियों ने बतलाया कि श्री उदयनाचार्य कृतन्याय

कुसमांजलि के सिवा एक वेद कुसमांजलि भी है और यह भी पता चला कि उसकी एक कापी श्री सय्यदअली बिलग्रामी के पुस्तकालय में है। मैं इस पुस्तक की खोज करने बिलग्राम गया। सय्यदअली की मृत्यु हो चुकी थी उनके वारिसों से बात चीत की गई। कुछ पुस्तकें उन्होंने दिखलाई भी परन्तु उनमें न अपेक्षित पुस्तक थी और न अन्य ही कोई मेरे लिये उपयोगी थी। इसलिये वहां से असफल ही लौटना पड़ा।

पडी-जेहलम में शफ़ाखाने का उद्घाटन

ला० ज्ञानचन्द देहली के प्रसिद्ध ठेकेदार और एक स्वाध्याय शील आर्य हैं। उन्होंने अपने स्वर्गवासी पुत्र, श्री विद्याधर की स्मृति में अपने वतन के ग्राम "पडी दरवेज़ा" में जो जेहलम के ज़िले में जेहलम से ४० मील है ग्राम वासी तथा आस पास के अन्य ग्रामीणों के लाभार्थ, एक शफ़ाखाना बनाया और उसके चलाने के लिये धन देकर एक ट्रस्ट बना दिया उनकी इच्छानुसार मैं उनके उपर्युक्त ग्राम में गया और उस शफ़ाखाने का उद्घाटन कर दिया। ग्राम वासियों की वहां की सभा में एक व्याख्यान भी दिया गया।

बड़ौदा की यात्रा

आर्य्य कुमार सभा बड़ौदा के निमन्त्रण पर, सभा द्वारा स्थापित आर्य्य कन्या महाविद्यालय के उत्सव में शरीक हुआ। उत्सव में बड़ौदा के दीवान आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति शरीक थे। मैं उनके उत्सव में पहली वार ही गया था इसलिये

वहां के कार्य्य कर्ताओं ने, शिष्टाचार प्रदर्शन करने के लिये, अभिनन्दन पत्र पढ़ा और उसे डाक्टर मुंजे ने मेरी भेंट किया। समुचित उत्तर देने के बाद, वहां की कन्याओं के व्यायाम संबंधी कृत्यों को देखा। बड़ौदा प्रोफ़ेसर माणिकराव की व्यायाम शाला की वजह से दूर दूर प्रसिद्ध है। यह कन्या विद्यालय भी बड़ौदा की प्रसिद्धि का कम कारण नहीं है। कन्यायें भाले लेकर घोड़ों पर, वीरांगना क्षत्राणियों की तरह, सवार होती हैं और अपूर्वकृत्यों का प्रदर्शन करती हैं। मास्टर आत्माराम जी से भी, जो आर्य्य समाज के पुराने कार्य्य कर्ता थे, यहां भेंट हुई। उनसे यह अन्तिम भेंट ही थी। इसके बाद दुःख है कि उनका देहावसान होगया।

सेठ जमुनालाल बजाज का नारायण अश्रम में आगमन

१२ जून १९३५ ई० को सेठ जमुनालाल बजाज अपने परिवार सहित नारायण आश्रम में आये। उन दिनों आश्रम के सत्संघ में योगदर्शन के आधार पर मेरे प्रवचन हुआ करते थे। उन्होंने सत्संघ में शरीक़ होकर ध्यान पूर्वक उस प्रवचन को सुना और सत्संघ का कार्य समाप्त होने पर वे भवाली जहां से आये थे लौट गये।

भवाली में वेदों की कथा

बाबू शंभूनाथ सीतापुर निवासीः भवाली में अनेक, मकान बनवाकर रहने लगे हैं। उन्होंने भवाली में आर्य समाज की स्थापना की और उसके साप्ताहिक सत्संघों के लिये शंभूनाथ

रामेश्वरीदेवी पुस्तकालय भवन को स्थिर रीति से दे रक्खा है। उनके प्रेम पूर्ण निमन्त्रण से मैं कई बार आते जाते भवाली ठहर जाया करता था। एक दिन जब मैं वहां कथा कर रहा था, सेठ जमुनालाल बजाज ने जो सब परिवार सहित प्रतिदिन कथा सुनने आया करते थे, विनय पूर्वक मुझ से कहा कि मैं अगले दिन उनके घर चलकर भोजन करूं। मैंने इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। भोजनोपरान्त उन्होंने अपने परिवार की सभी देवियों को मेरे पास लाकर बिठला दिया, यह कहकर कि जिस की जो इच्छा हो स्वामी जी से पूछो। उनकी एक पुत्री ने जिसने उस समय (१९३५ ई०) एम. बी. बी. एस. की डाक्टरी परीक्षा दी थी, अन्य देवियों के साथ अनेक बातें पूछीं और उनके उत्तर प्राप्त करती रहीं। उनमें से एक प्रश्न का यहां उल्लेख करना जरूरी है। उसी पुत्री ने प्रश्न किया कि सुख दुःख क्या है? उसे उत्तर दे दिया गया कि प्रश्न का उत्तर इन्हीं शब्दों के भीतर मौजूद है। सुख शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है:—"सु"+"ख" इनमें से "सु" अच्छे को कहते हैं और "ख" नाम इन्द्रियों का है। इसलिये इन्द्रियों का अच्छा बना लेना सुख और बुरा बना देना दुख है।

दयानन्द मेडिकल मिशन

कैप्टेन रामचन्द्र रिटायर्ड सिविल सरजन, जब मैं टांडा के वानप्रस्थाश्रम का उद्घाटन करने टांडा (फ़ैज़ाबाद) गया था, फ़ैज़ाबाद में सिविल सरजन थे। मुझ से उनका पहले से परिचय

था इसलिये वे टांडा मुझ से मिलने तथा उद्घाटन समारोह में भाग लेने के लिये चले आये थे। मिलने पर उन्होंने मुझ से पूछा कि क्या रिटायर होने पर उन्हें भी, इस या ऐसे ही किसी अन्य वानप्रस्थाश्रम में रखना होगा। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि जिस कार्य (चिकित्सा शास्त्र) में उन्होंने योग्यता प्राप्त की और उसे करते करते अब उसमें निपुणता भी प्राप्त करली है, रिटायर होने पर उन्हें, उसीसे जनता को लाभ पहुंचाना चाहिये। डाक्टर साहिब ने मेरे इस उत्तर को गांठ बांध लिया और रिटायर होने पर उन्होंने "दयानन्द मेडिकल मिशन" स्थापित करने का निश्चय कर लिया। सार्वदेशिक सभा ने उस (मिशन) की संरक्षकता स्वीकार करली। वह मिशन मंसूरी में स्थापित हो गया। उसीके नियमानुसार उद्घाटन करने के लिये मैं भवाली से मंसूरी गया और १६ जून १६३५ को उसका उदघाटन किया गया। मंसूरी का शिक्षित समुदाय, उस समारोह में भाग लेने के लिये वहां उपस्थित था और सभी ने डाक्टर साहिब की इस परोपकार भावना के लिये, साधुवाद कहा। इस समय इस मिशन से हजारों नर नारियों को लाभ पहुंच रहा है।

अलमोड़ा में धर्म प्रचार और अनाथालय

कुमायूं डिवीज़न के पहाड़ी इलाके में अलमोड़ा सबसे अधिक शिक्षित समुदाय रखने के लिये प्रसिद्ध है। नैनीताल के साथ साथ ही १०-११ वर्ष से लगातार मैंने अलमोड़ा में

प्रति वर्ष सात सात, आठ आठ दिन प्रचार किया। उसका फल यह है कि शिक्षित समाज में आर्य्य समाज और वैदिक धर्म के लिये प्रेम उत्पन्न होने लगा। यह अच्छा समझा गया कि यहां हिन्दू बच्चों और स्त्रियों की रक्षा के लिये एक अनाथालय खोला जावे। अनाथालय खुल गया। डाक्टर केदारनाथ को वानप्रस्थ की दीक्षा देकर अनाथालय का प्रबन्ध उनके आधीन किया गया। डाक्टर केदारनाथ ने लगातार कई वर्ष तक इतनी सावधानी से काम किया कि शिक्षित समाज की आमतौर से सहानुभूति अनाथालय के साथ होगई। अब प्रति वर्ष अनाथालय आर्य्य समाज और कन्या पाठशाला के, जो आर्य्य मन्दिर ही में खोल दी गई थी, सम्मिलित उत्सव होंने लगे। आर्य्य मन्दिर, विस्तार के साथ बन गया, जिस के उद्घाटन का इससे पहले कहीं जिक्र आचुका है। उसी की एक मंजिल में अनाथालय और दूसरी मंजिल में कन्या पाठशाला को आश्रय मिल गया। डाक्टर केदारनाथ यदि जीवित रहते तो और भी कई उपयोगी काम अलमोड़ा में हो सकते थे परन्तु दुर्भाग्य से सन् १९३४ ई० में उनकी मृत्यु होगई। उनके स्थान पर काम चलाने के लिये स्वामी कृष्णानन्द को भेज दियागया। आयु की कमी और अनुभव के अभाव से वह इस काम के योग्य न थे परन्तु और कुछ इलाज न था इसलिये अन्य किसी उपयोगी आदमी के अभाव में, उन्हीं को इस काम पर नियुक्त करना पड़ा। नारायण आश्रम का जो विस्तार हुआ था उसमें १००) कीमत की लकडी, म०

अंबाप्रसाद जी बरेली निवासी ने, अपने लकड़ी के स्टाक में से देदी थी। इसलिये वे १००) खर्च होने से बच गये थे यह अच्छा समझा गया कि उन्हें इस अनाथालय को दे दिया जावे तदनुसार दे दिये गये।

आर्य्य बनने से निकाह रद्द हो जाता है

जनवरी १९३६ ई० में जब मैं देहली में था तब वहां के एक मुसलमान डाक्टर अपने साथ एक २० वर्ष की आयु वाली मुसलमान स्त्री को बलिदान भवन में लाये और इच्छा प्रकट की कि इसे आर्य्य बनाकर, इसका विवाह एक हिन्दू युवक से जिसे लड़की की इच्छानुसार, उन्होंने तजवीज़ कर लिया है, करा दिया जावे मालूम यह हुआ कि लड़की का विवाह एक मुसलमान युवक से हो चुका था। परन्तु लड़की न उसे पसन्द करती थी न उसके साथ रहना चाहती थी, इस निकाह के रद्द कराने का तरीक़ा यही था कि वह अपना मजहब बदल लेवे क्योंकि इसलामी शरै के अनुसार मुसलमान स्त्री के मजहब बदल लेने से निकाह 'फ़िस्ख' हो जाया करता है। जिस हिन्दु युवक के साथ विवाह होना तजवीज़ हुआ था, वह उनके साथ नहीं था इसलिये उन्हें उत्तर दे दिया गया कि उसके साथ ही उन्हें आना चाहिये।

एक पढ़ा लिखा गुँडा

आर्य्य समाज कानपुर के वार्षिकोत्सव के प्रसंग में कदाचित धर्म चर्चा के समय, एक पढ़े लिखे गुन्डे को उसकी इच्छानुसार

प्रश्न करने का समय नहीं दिया गया था। इसका बदला लेने के लिये, उसने चाहा कि उत्सव न होने देवें। २२ फरवरी १९३६ ई० की रात्रि में जब एक व्याख्यान होने लगा तो उस गुन्डे के सिखाये पढ़ाये कुछ छोकरों ने, शोरोगुल करना शुरू ही किया था कि उनके किसी पारिस्परिक संकेत से वह बन्द होगया। उसके बाद जब मैंने व्याख्यान देना शुरू किया तो फिर उससे कहीं बढ़कर शोर होना शुरू होगया। कदाचित इन लोगों ने समझा होगा कि यदि मेरे व्याख्यान में विघ्न डालने में यह कामयाव होगये तो मानो उत्सव में विघ्न डालने ही में ये कामयाव हुये समझे जावेंगे। शोरोगुल होते रहने पर मैंने अपना व्याख्यान जारी रक्खा और आवाज कुछ ऊँची करके कुछ बातें श्रोताओं से ऐसी कहीं जिससे उनमें इन छोकरों के लिये रोष पैदा होगया और ऐसी अवस्था होगई कि यदि इनकी रक्षा का विशेष प्रवन्ध न किया गया होता तो इनमें से एक भी साबित हाथ पैर लेकर उत्सव क्षेत्र से बाहर न जाने पाता। उसके बाद शान्ति होगई। छोकरे अपनी जान बचाकर चले गये और मेरा व्याख्यान निर्विघ्न समाप्त होगया।

छयालीसवां अध्याय

साहित्यिक कार्य

वैदिक साहित्य प्रचारिणी सभा की इच्छानुसार एक ट्रेक्ट "वैदिक साम्यवाद" पर लिखकर प्रकाशनार्थ उन्हें दिया गया। ट्रेक्ट में प्राचीन और अर्वाचीन साम्यवाद की तुलना करते हुये, प्राचीन साम्यवाद की उपयोगिता प्रदर्शित की गई थी। मेरे ग्रन्थों में यह पुस्तक बीसवां था।

ग्वालियर की यात्रा

ग्वालियर चिरकाल से, देशी राज्यों में अपना स्थान उच्च रखता है। यहाँ के वर्तमान महाराज शिक्षित और सुधार प्रेमी हैं। मुझे यहां अनेक कार्य करने थे जिनको यथा संभव पूरा किया गया। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

(१) यहाँ के विक्टोरिया कौलिज में जाकर छात्रों को उपदेश दिया गया।

(२) झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई का स्मारक देखा गया। इस स्मारक के देखते ही आंखों के सामने एक चित्र खिंच गया कि महारानी घोड़े पर सवार है, दोनों हाथों में तलवार है, लगाम मुँह से पकड़े हुए है और दोनों हाथों से शत्रुओं पर वार करते हुये, उन्हें गाजर मूली की तरह से काटती हुई चली जा रही हैं। धन्य है भारत वीरांगने; धन्य है।

(३) आ० स० चित्र गुप्तगंज ग्वालियर में प्रातः आठ युवकों के यज्ञोपवीत कराये और उन्हें ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया गया और दोपहर बाद ग्वालियर के टौन हाल में सर्व धर्म सम्मेलन में शरीक होकर सभापति का पद ग्रहण किया गया। सम्मेलन में एक मनोरंजक वाद उपस्थित होगया। ईसाइयों के प्रतिनिधि एक अँगरेज़ पादरी ने हिन्दुओं में प्रचलित जन्म की जात-पांत की चर्चा करते हुये उसे अनुपयोगी ठहराया। जब अंत में प्रधान के समाप्ति सूचक वक्तृता का समय आया तो मैंने अन्य बातों के अतिरिक्त जन्म की जात पांत की चर्चा करते हुये कहा कि हिन्दुओं में प्रचलित जन्म की जातियों से कहीं अधिक भयानक वह जात पांत है जिसे पश्चिमी देशों में राष्ट्र वाद (Nationalism) ने जन्म दिया है। अँगरेज़, फ्रैंच, इटैलियन, जरमन आदि जन्म की जातियां ही हैं। इनमें और हिन्दुओं की जन्म की जातियों में अँतर केवल इतना है कि हिन्दुजाति किसी परिवार विशेष में जन्म लेने से बनती है और ये राष्ट्रवाद की जाति, किसी स्थान विशेष में जन्म लेने से बना करती हैं। हिन्दू जातियां अप्रेम पैदा करती हैं परन्तु राष्ट्र वाद की जातियां शत्रुता वर्धक और एक दूसरे की प्राण लेवा हैं। परन्तु है दोनों खराब इसलिये दोनों को नष्ट करना होगा तब कहीं सार्वत्रिक भ्रातृ भाव का उदय होगा।

(४) रात्रि में आर्य मन्दिर में उपनिषद् की कथा की गई।

(५) आर्य समाज गूना, ग्वालियर राज्य में, उन्नतशील

समाज है। यहां के सभासद् और अधिकारी बड़ी तत्परता से अपना काम करते हैं और प्रचार वृद्धि में अनुपम भाग लेते हैं।

योग की आड़ में ठगी

मार्च १९३६ ई० में मैं देहली बलिदान भवन में ठहरा था। मुरादाबाद के एक साहिब मेरे पास आये और प्रकट किया कि एक व्यक्ति ने, जो अपने को डाक्टर और योगी कहता है, उनके दामाद को (दामाद के पिता भी उनके साथ थे) ठगकर १५००) ले लिये हैं और अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ता; कुछ और ठगने की चिन्ता में है। इस प्रकार के अनेक धूर्त हैं जो लोगों को इसी प्रकार से ठगा करते हैं।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अर्द्ध शताब्दी

सन् १८९३ या १८९४ ई० की बात है, जब मैं लाहौर था तो एक रात्रि में आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था। ला० मुन्शीराम उसके प्रधान थे। मैंने प्रधानकी अनुमति ले रक्खी थी कि मैं उस अधिवेशन में दर्शक की तौर से शरीक होसकूं। अधिवेशन ९ बजे रात्रि से कुछ पहले प्रारंभ हुआ था और लगभग दो बजे रात के समाप्त हुआ था। परन्तु अधिवेशन में जिस तरह से बैठे थे लोग उसी तरह से, नाम मात्र के लिये थी कोई निश्चय किये बिना, उठे। उस समय दोनों पार्टियों की एक ही सभा थी। एक पार्टी जो अल्प पक्ष में थी चाहती थी कि कोई काम न हो इसलिये उसने उचित अनुचित इतने आक्षेप किये कि २ बजे

रात तक वेही समाप्त न होपाये। प्रारम्भ के दो घंटे तो इसी बात के निर्णय में लग गये कि यह अधिवेशन नियमित है या नहीं। आज इस घटना के तेंतालीस या चवांलीस वर्ष के बाद प्रशंसित सभा की स्वर्ण जयन्ती (अर्ध शताब्दी) मनाई जा रही है। इस समय धन, जन या प्रभाव सभी दृष्टियों से यह सभा प्रान्तिक सभाओं की सरमौर सभा है।" इन शब्दों के साथ, सभा के जयन्ती महोत्सव में ओ३म् की ध्वजा फहराते हुये महोत्सव का उद्घाटन किया गया। एक बात जो उत्सव के उद्घाटन करते हुये मुझे अखर रही थी यह थी कि उस समय सभा के वर्तमान कार्य्यकर्ताओं में कुछ मतभेद होचला था। यदि यह मतभेद न होता तो यह जयन्ती महोत्सव और भी अधिक शान के साथ मनाया जाता और केवल बाह्य दिखावट की दृष्टि ही से नहीं; बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी सफल होता। अस्तुः उत्सव की पहली रात्रि ही में मेरा व्याख्यान था। व्याख्यान दे चुकने के बाद मुझे उत्सव से छुट्टी मिल गई थी। इसलिये दूसरे दिन १० वीं अप्रैल १९३६ ई० को प्रातः काल, श्री नगर (कशमीर) के श्रीमान् चिरंजीलाल जी प्रधान आर्य्यसमाज श्रीनगर को वानप्रस्थ की दीक्षा देकर सायंकाल लाहौर से चल दिया।

नई देहली की बाल आर्य्य कुमार सभा

इस कुमार सभा का उत्सव था। इसकी विशेषता यह थी कि इस सभामें छोटे छोटे बालक ही शामिल थे। इन्होंने अपने

उत्सव के प्रसङ्ग में एक प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया था। उनकी इच्छानुसार १५ वीं अप्रैल १९३६ ई० को मैंने प्रारम्भिक वक्तृता और उपदेश देने के बाद प्रदर्शिनी का उद्‌घाटन किया। प्रदर्शिनी में कुछेक बातें प्रशंसनीय थीं:—

(१) समुद्री जहाज़ जो पानी में स्वयमेव चलता हुआ दिखलाया गया था (२) हवाई जहाज़ (३) प्रकाश स्तंभ (Light House बालकों की आयु की दृष्टि से, ये और इस प्रकार की अन्य कुछेक बातें आश्चर्यजनक थीं। इस प्रदर्शिनी के देखने से यह बात साफ़ समझ में आसक्ती थी कि यदि देशवासियों को कला-कौशल की शिक्षा दी जावे और उन्हें निश्चिन्तता के साथ अन्वेषण और गवेषण करने का अवसर मिले तो हमारे देशवासी, पृथिवी की किसी जाति से भी नई नई वस्तुओं के आविष्कार करने में, पीछे नहीं रह सकते। अस्तु: इस सफल प्रदर्शिनी के लिये इस सभा के मंत्री विजय कुमार और इन बालकों के गुरु पं० राजेन्द्रनाथ शास्त्री को बधाई दी गई।

डी. ए. वी. हाई स्कूल गोरखपुर का पारितोषिक वितरणोत्सव

गोरखपुर के इस स्कूल के संचालकों ने ३, ४ दिन बराबर उपदेश देने के लिये मुझे गोरखपुर बुलाया था १३ दिन उपदेश हो चुकने के बाद, एक दिन स्कूल के विद्यार्थियों को पारितोषिक देने के लिये नियत था। उस दिन भी मुझे विद्यार्थियों को उपदेश देना था। मैंने विद्यार्थियों को उपदेश देते हुये बतलाया कि राष्ट्रवाद (Nationalism) ने किस प्रकार संकुचित जातियां पैदा

करके दुनिया में अशान्ति फैला रक्खी है इसलिये उन्हें अपना अन्तिमध्येय सार्वत्रिक भ्रातृ भाव को बनाना चाहिये। विद्यार्थियों को पारितोषिक देने के लिये उसी ज़िले के, एक अँगरेज आई. सी. ऐस, बुलाये गये थे। उन्होंने अपना अन्तिम भाषण देने के बाद रुख़सत होते हुये मुझसे कहा कि "मैं तो धर्म शास्त्र की कुछ बात सुनना चाहता था परन्तु स्वामीजी ने (अर्थात् मैंने) तो पोलिटिकल बातें सुनादीं। मैंने उन्हें उत्तर दे दिया कि पौलिटिक्स भी हमारे धर्म का एक अंग है इसलिये मैंने तो धर्म शास्त्र की बात सुनाई है। इसे सुनते और मुसकराते हुए वे चल दिये।

स्टैनली जौन्स और सप्तताल का उनका आश्रम

क्रिश्चियन ट्रेनिंग कालिज लखनऊ के विद्यार्थी ग्रीष्म ऋतु में, भवाली के पास सप्त ताल नामक स्थान में आजाया करते हैं जहाँ स्टैनली जौंस ने, ईसाइत के प्रचार के लिये अपना एक आश्रम बनाया हुआ है। ३० मई १९३६ई० की बात है कि जब वहां के लगभग २० विद्यार्थी प्रो० रामचरन विद्यार्थी एम० ए० प्रोफेसर ट्रेनिंग कौलिज लखनऊ के साथ रामगढ़ आये। उन सब की इच्छानुसार दूसरे दिन प्रातःकाल, मैंने उन्हें यह शिक्षा दी कि वैदिक सन्ध्या क्यों करनी चाहिये और उसके करने का उद्देश्य क्या है! कुछ विद्यार्थियों ने प्रश्न किये, उनके उन्हें उत्तर दिये गये। इस प्रकार सब सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर, नारायण आश्रम से सप्तताल चले गये। कदाचित उन्होंने इसका जिक्र

स्टैनली जौंस महोदय से किया होगा। जौंस महोदय का मेरे पास एक पत्र आया जिसमें उन्होंने मुझे निमन्त्रण दिया था कि मैं सप्तताल आकर वहां के विद्यार्थियों को एक सिलसिला व्याख्यानों का दूं। मैं बड़ी प्रसन्नता से इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लेता परन्तु पत्र में एक शर्त थी जो बाधक हुई। पादरी जौंस ने उसमें लिखा कि वे २० जून ३६ को एमरीका जाने वाले हैं इस लिये पहले ही वहां आऊं। यह मेरे लिये सम्भव नहीं था क्योंकि मेरा जून मास का सारा प्रोग्राम बन और प्रकाशित होचुका था इस लिये मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सका।

नारायणआश्रम में विद्यार्थियों और अध्यापकों का आवागमन

जब से रामगढ़ में आश्रम बना है तभी से प्रतिवर्ष यहां छुट्टियों में कभी गुरुकुल कांगड़ी कभी गुरुकुल वृन्दावन कभी अन्य कौलिजों और स्कूलों के विद्यार्थी और अध्यापक आया करते हैं। इस वर्ष (१६३६ ई० में फ़ैज़ाबाद और गोंडा की स्काउट पार्टी गोंडा के कुछ अध्यापकों की संरक्षकता में आई। उन्होंने अपने कैंपफायर के कृत्य भी दिखलाये जो बड़े मनोरंजक थे और अध्यापकों की इच्छानुसार उन्हें उपदेश भी दिया गया। इसी समय काशी के पंडित राम नारायण मिश्र कतिपय ऐफ्रीकन भाइयों के साथ आये और दो सप्ताह तक आश्रम में ठहरे।

रामगढ़ निवासियों में पारस्परिक सहायता के भाव पैदा करना

कुछ एक सफ़रमैना के सरहद्दी सिपाही अलमोड़ा की ओर से आते हुये गुज़रे उन्हें डाक बंगला जाना था। रास्ते में दूकानदारों

से जो लेते थे उसके पैसे नहीं देते थे। जब उस दूकान पर पहुंचे जहां से डाक बंगले की चढ़ाई शुरू होती है तो वहां भी कुछ चीजें मांगी परन्तु दूकानदार ने बिना दाम लिये देने से इन्कार कर दिया। तब वे सिपाही यह कहते हुये चले गये कि रात में उसकी ख़बर लेंगे। वे इससे पहले एक हलवाई के साथ, यहीं रामगढ़ में शरारत भी कर चुके थे परन्तु वह हलवाई बड़ा लठैत था इस लिये उसने उन सिपाहियों को ख़ूब मारा। उसके भी अच्छी ख़ासी चोट आई थी। उस दूकानदार ने आकर आश्रम के निकट वाले दूकानदारों को ख़बर की। मैंने उन्हें सलाह दी कि सब मिलकर रात में उस दूकानदार के यहां जाकर रहो और कोई उस दूकानदार को रात में तकलीफ़ देना चाहे तो उसका वीरता के साथ मुक़ाबला करो। अगुआ कौन बने इसके लिये उनमें कानाफूसी होने लगी। साथ चलने के लिये सब तय्यार होगये परन्तु आगे चलने के लिये कोई तय्यार नहीं होता था। तब मैंने कहा कि मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। इस प्रकार हम सब उस दूकान के पास वाली पशुशाला में रात के दो बजे तक रहकर उस दूकान का पहरा देते रहे। जब कोई लूट-मार करनेवाला संगठन के भय से नहीं आया तब हम सब प्रसन्न चित्त अपने अपने स्थानों पर लौट आये। इससे यहां (रामगढ़) के लोगों ने संगठन की कुछ महिमा अनुभव की।

म० देवीदास जी गांधी का नारायण आश्रम में आना

महाशय देवीदास एक दिन यहां आश्रम में आये, दिन भर

रहे। रात्रि में यहीं शयन किया और दूसरे दिन प्रातःकाल चले गये।;आने का उद्देश्य आश्रम को देखना और मिलने मिलाने के सिवा और कुछ नहीं था।

पारिवारिक झगड़े की शान्ति

ठाकुर कृष्ण सिंह प्रधान रामगढ़ और उनकी विधवा पुत्र बधू में जायदाद के लिये कुछ झगड़ा था। वह झगड़ा बढ़ा ही जाता था। इस लिये यह निश्चय करके कि इस झगड़े को शान्त करा देना चाहिये ठाकुर कृष्ण सिंह, उनकी पुत्र बधू और कुछ एक ग्राम के प्रतिष्ठित सज्जनों को जमा करके दोनों फ़रीक़ की बातें सुनकर उनका फ़ैसला करा दिया गया। फ़ैसला होजाने पर उनका आपस में मेल होगया।

पोस्ट मास्टर लखनऊ नारायण आश्रम में

१९३६ ई० में एक बार म० शीतलचन्द्र प्रचारक के साथ लखनऊ के पोस्ट मास्टर आश्रम में आये और शिकायत की कि उनका पेट ठीक नहीं रहता है। अनेक औषधियों के करने से भी कुछ लाभ नहीं होता। उन्हें पेट ठीक करने की तीन क्रियायें बतलाई गईं जिन्हें तीन दिन आश्रम में रहकर उन्होंने किया। उससे उन्हें जब लाभ प्रतीत होने लगा तो वे नियमपूर्वक अभ्यास जारी रखने कीप्रतिज्ञा कर के चले गये।

नारायण आश्रम के लिये और भूमि ली गई

नदी के पुल से जो रास्ता नारायणाश्रम को आता है उसके और पहाड़ के बीच की समस्त भूमि आश्रम के लिये लेकर

उसका अहाता बनवा लिया गया। इस भूमि के ले लेने के बाद आश्रम के समीप कोई भूमि ऐसी बाकी नहीं रही जिसे कोई अनपेक्षित पुरुष ले सके।

बाबू बालकृष्ण दास वानप्रस्थ का देहावसान

बाबू बालकृष्ण दास मेरे गृहस्थ काल के साथी थे। जब मैंने यह (नारायण) आश्रम बनाया और ज्वालापुर के वानप्रस्थाश्रम की बुनियाद रक्खी तभी से उन्होंने निश्चय कर रक्खा था कि वे दोनों जगह मेरे साथ रहा करेंगे। उन्होंने सर्विस से रिटायर होने के बाद रहना भी शुरू कर दिया और रामगढ़ में एक कुटी भी आश्रम के नियमानुकूल बनाली। वे लगभग अपनी बनाई कुटी में दो ही वर्ष रहने पाये थे कि मृत्यु ने कूच का नक्कारा बजा दिया। मार्च १९३६ ई० में वे ज्वालापुर आश्रम से रुखसत होकर रामगढ़ के लिये चल दिये। रास्ते में 'मुरादाबाद' अपने घर ठहरे थे। वहीं अचानक उन्हें फालिज का दौरा होगया और उसी रोग से एक सप्ताह के भीतर भीतर ही उनका देहावसान होगया। उनके घरवालों की इच्छानुसार उनके वस्त्र यहां (रामगढ़ में) गरीबों में बँटवा दिये गये और बरतन घर भिजवा दिए गए। बालकृष्णदासजी बड़े स्वाध्यायशील और ऐसे व्यक्ति थे जिनमें मनुष्यत्व की मात्रा बहुत अधिक थी।

दीवान हाल की बुनियाद रखना

ला० दीवानचन्द्र देहली के बहुत बड़े ठेकेदार थे। उनके अनेक प्रकार के व्यवसाय थे। उन्होंने एक वसीयत कर

रक्खी थी। उस वसीयत के अनुसार, लगभग दो लाख रुपये इस (दीवान) हाल की तय्यारी के लिये रक्खे गये थे। लाला नारायणदत्त जी ठेकेदार ने उनकी वसीयत का अक्षरशः पालन किया और इस हाल की तय्यारी का काम भी अब जारी करने वाले थे। उनकी इच्छानुसार देहली के एक बहुत बड़े समारोह में, जिसमें देहली के गण्यमान्य पुरुष बहुसंख्या में उपस्थित थे मैंने उस हाल की बुनियाद रक्खी। प्रसन्नता की बात है कि यह हाल अब तय्यार होकर आर्य्यसमाज दीवान हाल के मन्दिर के रूप में काम आ रहा है।

सैंतालीसवाँ अध्याय

नहटौर वालों के बटवारे का मामला

बिजनौर के जिले में नहटौर एक कस्बा है। यहां के रईस चौ० चुन्नीसिंह जी और चौ० अनूपसिंहजी आर्यसमाज के अच्छे सहायक थे। जब मैंने १८९६ ई० में संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा के सुधार और रजिस्ट्री कराने आदि का आन्दोलन किया था तो इन सज्जनों ने उस कार्य में बड़ी सहायता की थी। इन दोनों के देहावसान के बाद चौ० चुन्नीसिंह के पुत्रों तथा भाई भतीजों में मकानों तथा चलसंपत्ति के बटवारे का प्रश्न उठा तो इन सबने निश्चय किया कि कुरे तो ये सब मिलकर स्वयं बना लेवेंगे। मैं कुरे बरदारी कराके यह फैसला लिख दूँगा कि कौन कुरा किसके हिस्से में आया। इसके लिए इन सब ने पंचायत का इकरारनामा लिखकर रजिस्ट्री करा दिया। कुरा बरदारी होगई। इस कुरे बरदारी से चौ० चुन्नीसिंह के दोनों पुत्र असन्तुष्ट रहे। कुरों को लेकर फैसला लिखने के लिए मैं रामगढ़ चला आया। अभी मैं पूरा फ़ैसला नहीं लिखने पाया था कि मेरे आश्रम के मकान के ताले, भ्रमण से लौटने पर मुझे टूटे मिले और कुरे आदि सब गायब थे। मेरे आश्रम में, इस घटना से पहली रात, एक फरीक अपने एक पक्ष पोषक के साथ आए थे। पक्ष पोषक आश्रम में मौजूद थे परन्तु असली

फरीक गायब थे। पक्ष पोषक ने मुझे सब हाल बतला दिया। मैंने इन कागजात की चोरी की रिपोर्ट पुलिस में लिखवा कर पुलिस को सूचना दे दी कि मैं तहकीकात नहीं चाहता। अपनी ओर से इस प्रकार इस मामले को खत्म करके निश्चय कर लिया कि अब इस मामले में भविष्य में कुछ नहीं करना है।

सरगोधा की यात्रा

सरगोधा जाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहां आर्य मन्दिर में प्रतिदिन प्रातःकाल हवन और सत्संग हुआ करता है और सत्संग में उपस्थिति सत्तर अस्सी नर-नारियों की हुआ करती है। अन्य आर्यसमाजों को भी इसका अनुकरण करना चाहिए।

क्वेटा (विलोचिस्तान) की यात्रा

क्वेटा के उत्सवों में, जाने का अनेक बार अवसर प्राप्त होता रहा है। इस बार (१५-१६ अक्टूबर १६३६ ई०) भूकम्प के बाद जाने का यह पहला अवसर था। देखने से मालूम हुआ कि तमाम शहर ईंट, पत्थर और मिट्टी का ढेर बना हुआ है। आर्यसमाज के दो विशाल मन्दिर, कन्या पाठशाला भवन, डी. ए. वी. हाईस्कूल भवन सभी भूकम्प के भेंट होचुके थे। आर्य्य-समाज मन्दिर जिसका उत्सव था उसकी यज्ञशाला के फ़र्श आदि कुछ बाकी थे। वहीं एक शामियाना लगाकर उत्सव किया गया था। हम लोग एक किराये के लकड़ी के मकान में ठहरे थे। क्वेटा के अनेक आर्य्य तब्दील होकर बाहर चले गये थे और बाहर से अनेक भाई यहाँ आ चुके थे। बाहर से आये

हुये भाइयों ने समाज के कामों को संभालना शुरू कर दिया है। इनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। ये प्रायः सभी तीन तीन चार चार मील से, समाज के साप्ताहिक सत्संघों में शरीक होने के लिये आया करते हैं। फिर से आर्य्य मन्दिर बनाने की तजवीज़ हो रही है। सरकार से इजाज़त मिलते ही काम शुरू हो जावेगा। कन्या पाठशाला भवन तो तय्यार हो ही चुका है। उत्सव के साथ ही एक आर्य्य-सम्मेलन मेरे प्रधानत्व में किया गया था। इसमें भूकम्प से मरे हुये व्यक्तियों के हालात पढ़कर सुनाये गये थे। उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुये, ईश्वर, से उनकी सद्गति की प्रार्थना की गई।

क्वेटा की एक विशेष घटना

भूकम्प से पहले, क्वेटा से एक देवी का पत्र, देहली मेरे पास पहुँचा था। देवीने अपनी आयु २३ वर्ष की उस पत्र में लिखी थी, उनके पति क्वेटा में कुछ काम करते थे। दोनों क्वेटा ही में रहते थे। देवी को एक फलित ज्योतिषी ने बतला दिया था कि उसका एक वर्ष के भीतर शरीर पात हो जायगा। देवीने पत्रमें मुझसे पूछा था कि क्या वास्तव में वह मर जायगी? पत्र के देखते ही मेरे भीतर एक प्रेरणासी उत्पन्न हुई कि मैं लिखदूं कि ज्योतिषी की बात झूठ है और यह कि वह कदापि न मरेगी। मैंने इसी के अनुकूल उसे उत्तर दे दिया। इसके बाद भूकम्प से पहले ही जब मैं क्वेटा गया था तो ये दोनों स्त्री

पुरुष मुझे मिले। अभी वह अवधी जो ज्योतिषी ने मरने की बतला रक्खी थी, पूरी नहीं हुई थी इस लिये स्वभावतः देवी ने फिर वही प्रश्न. अपने इससे पहले भेजे हुये पत्र का हवाला देते हुये किया कि क्या वह सचमुच न मरेगी? फिर भी मेरे भीतर वैसे ही भाव उत्पन्न होगये जो पत्र का उत्तर देते समय हुये थे और मैंने यत्नपूर्वक देवी के प्रश्न का उत्तर दे दिया कि हां वह कदापि न मरेगी। मेरे उत्तर से देवी को बड़ी सान्त्वना मिली और उसका मुरझाया हुआ सा चेहरा, प्रफुल्लित हो उठा। अब भूकम्प के बाद, जिससे पहले ही ज्योतिषी की बतलाई अवधी भी समाप्त हो चुकी थी, देवीजी का मेरे पास देहली पत्र पहुंचा जिसमें इन्होंने लिखा था कि उसकी मृत्यु उस अवधी के भीतर तो हुई ही नहीं अपितु भूकम्प के प्रहार से भी वह बच गई जिसमें हज़ारों आदमी कीट-पतङ्ग की तरह मर गये थे। ये ज्योतिषी लोग इसी प्रकार की अनर्गल बातें बतला कर लोगों को ठगा करते हैं। मैंने देवीजी को इस ज्योतिषी के प्रहार से बचने पर बधाई दी और ईश्वर को अनेक धन्यवाद दिये, जिसकी कृपा से, मेरे अन्तःकरण ने मुझे शुद्ध प्रेरणा की।

आर्य्य समाज उन्नाव का मन्दिर

आर्य्य समाज उन्नाव के निमन्त्रण पर मैं कुछेक दिन कथा करने के लिये उन्नाव गया था। वहां जाकर मालूम हुआ कि समाज के सदस्यों ने समस्त मन्दिर, कन्या पाठशाला के लिये, चुङ्गी को किराये दे रक्खा है। उन्हें सलाह दीगई कि २ कमरे

और बनाकर म्युनिसिपेलिटी को दे देवें और मन्दिर का सत्संग भवन (हाल) किराये से छुड़ा लेवें। उन्हें यह भी भली भांति समझा दिया गया कि सत्संग भवनको न कभी अन्य काम में लाना चाहिये और न किराये पर देना चाहिये। जब सत्संग भवन केवल कथा उपदेश आदि के काम में आया करते हैं तभी उनका वायु मंडल ठीक रहा करता है।

विहार प्रान्त का भ्रमण

श्री पं० वेद व्रत जी वानप्रस्थ तत्कालीन प्रधान आर्य्य प्रतिनिधि सभा विहार तथा सभा के अन्य कतिपय प्रतिष्ठित सज्जनों की प्रेरणा से, मैंने १५ दिन (६ से २१ दिसम्बर ३६ तक) बिहार प्रान्त में प्रचारार्थ भ्रमण के लिये दिये थे।। इन दिनों में पटना, दानापुर, गया, डाल्टनगंज, राँची, जमशेदपुर, तातानगर, झरिया, मुंगेर, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, मोतीहारी. छपरा, पटना, और आरा में प्रचार किया। पं० बेदब्रतजी वानप्रस्थ बराबर साथ रहे। इन सभी स्थानों में दो प्रकार की सभायें की गईं। एकमें केवल आर्य्यों को एकत्र करके उन्हें उपनियमानुकूल सदाचारी बनने की शिक्षा दीगई, दूसरी सभा सर्व साधारण को उपदेश के लिये थी। आम तौर से आर्य्यों ने, उपनियमाकूल सदाचार में जो त्रुटि थी उसके दूर करने की प्रतिज्ञा की इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। इस भ्रमण में जो बातें नोट करने योग्य प्रतीत हुईं, उनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) मैंने प्रचार कार्य दानापुर से प्रारम्भ किया था। दानापुर

के केवल आर्यों के समुदाय में, 'उन्हें' उपनियमों में अंकित सदाचार की बातें समझाकर उनसे अपील की गई कि जो अपने को आर्य सभासद बनने के योग्य समझते हों अपना नाम लिखवा देवें। उनकी बात की तसदीक़ किसी से न की जावेगी अपितु उनकी बात ही विश्वास के योग्य समझी जावेगी। इस अपील के उत्तर में सब से पहले आर्य समाज (दिसम्बर १९३६ ई०) के प्रधान ने कहा मैं आर्य सभासदों में नाम लिखवाने योग्य नहीं हूँ। ये सज्जन नियम से सन्ध्या और हवन किया करते और बड़े सदाचारी समझे जाते हैं। कारण पूछने पर प्रकट किया कि उनके परिवार में, पितरपक्ष में (मृतक श्राद्ध के रूप में) कभी कभी ब्राह्मणों को भोजन करा दिया जाता है इस लिये जब तक इस त्रुटि को मैं दूर न करलूं उस समय तक केवल आर्य रहूँगा। यह भाई बड़े सम्पन्न और कई मिलों के मालिक हैं। इनकी इस घोषणा ने उस सभा में जादू का काम किया और केवल उन्हीं लोगों ने अपने को आर्य सभासद लिखवाया जिनका लिखवाना प्रायः ठीक था। इस उत्तम और अनुकरणीय उदाहरण का प्रान्त भर में प्रभाव पड़ा और सभी जगह के आर्यों ने आर्योचित ही व्यवहार किया।

(२) विहार प्रान्त में मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि ग्रामीण भाइयों में आर्य समाज के लिये बड़ी श्रद्धा है। हमारा प्रोग्राम जिले के हेड क्वार्टरों ही में जाने का था परन्तु सूचना मिलने पर जिले भर के समाजों के सदस्य, बड़ी श्रद्धा से मुख्य स्थान पर एकत्र हो जाया करते थे।

(३) डाल्टन गंज के जिले में उराओं आदि जंगली जातियों के उत्थान का कार्य आर्य समाज और श्रद्धानन्द ट्रस्ट देहली की ओर से हो रहा है। रांची में इसी उद्देश्य से एक अनाथालय खोला गया है और एक अस्थिर उपदेशक विद्यालय भी जिसमें उराओं आदि जातियों के पढ़े लिखे युवक उपदेशक पद के काम के लिये ट्रेन्ड किये जाते हैं, जिस से वे स्वयं अपनी अपनी जातियों में प्रचार कर सकें।

(४) डाल्टन गंज से रांची १०० मील सेअधिक, था। बस के द्वारा जाने से थकान हो गया। रांची में कुछ देर विश्राम लेने के बाद ही काम हो सका।

(५) जमशेदपुर में टाटा का लोहे का कारखाना दर्शनीय और देश में अद्वितीय है। कारखाने के एमरीकन मैनेजर ने, कारखाना देखने के लिये, जाने पर बड़ा शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार किया। उन्होंने कारखाने की एक कार, कारखाना देखने के लिये, हमारे साथ कर दी और दिखलाने के लिये एक इंजीनियर भी दिया। चार घंटे तक हम कार और इंजीनियर महोदय की सहायता से मीलों लम्बे कारखाने की मोटी मोटी बात देख सके।. खान से निकले हुये लोहे का साफ़ होना, उसके पिघल कर पानी सा हो जाने और उसके स्वयमेव ६½ फ़ोट लम्बे और ३½ फ़ीट चौड़े और इतने ही मोटे स्लीपरों के सांचे में उलट जाने और सैकड़ों स्लीपर बन कर निकलने, और उनसे १००-१०० फ़ीट से अधिक लम्बे गाडरों और रेलों की पटरी

तय्यार होने और फिर स्वयमेव कटकर २५-२५ अथवा ३०-३० फ़ीट लम्बे गार्डर या पटरियों के तय्यार हो जाने में कुल ३ घंटा समय लगता है। ये सब कार्य देखते देखते हमारे सामने हो गये। इस कारखाने से, वास्तव में, देशकी बड़ी ख्याति हो गई और करोड़ों रुपये का व्यापार देश के भीतर ही होने लगा। टाटा कम्पनी का वाटर वर्कस, बिजली, डैरी आदि सब अपनी हैं। डैरी में, पशुओं को शिक्षा दिये जाने का एक उदाहरण देखकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। गायें चरने चली जाती हैं उनके बछड़े गोशाला के एक बड़े कमरे में रहते हैं। उन सब के नम्बर आयु की दृष्टि से नियत हैं और उनके शरीर पर अंकित हैं। दरवाजे पर खड़ा होकर जब ग्वाला कहता है २५ नम्बर; तो २५ नम्बर वाला ही बछड़ा आ जाता है। यदि वह १० नम्बर को पुकारता है तो १० नम्बर वाला ही बच्चा आजाता है इत्यादि।

झरिया और मुज़फ्फरपुर की आर्य कुमार सभायें

(६) झरिया और मुजफ्फरपुर की कुमार सभाओं का उत्तम कार्य देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। झरिया में आर्य कुमारों का मन्दिर और पुस्तकालय उनके उत्साह और तत्परता के साथ कार्य करने का प्रदर्शक है। मुजफ्फरपुर में आर्य भवन का उद्घाटन किया गया है जिसकी तय्यारी में, बहुत बड़ा हाथ कुमारों का था।

प्रबन्ध कार्या के ैसे पृथक् होन

कन्या गुरुकुल सासनी की प्रबन्ध कर्त्री सभा के प्रधान पद

से त्याग पत्र देकर छुट्टी ली गई। इसी प्रकार गुरुकुल वृन्दावन के कुल पतिपद और प्रबन्ध कर्त्री सभा के प्रधान पद से भी त्याग पत्र देकर छुटकारा प्राप्त कर लिया। अब एक काम सार्व० सभा के प्रधान पद का परित्याग बाक़ी है।

अड़तालीसवां अध्याय

सिन्ध प्रान्त का भ्रमण

आर्य प्रति निधि सभा सिंध की इच्छानुसार १० दिन का समय सिंध प्रान्त के भ्रमण के लिये दिया गया था। इन दिनों में निम्न स्थानों पर प्रचार किया गया। करांची, कैमारी, हैदराबाद सिंध, सक्खर, लड़काना, मोहनजोडोरो और शिकारपुर। मुख्य बातें, जो इस भ्रमण से संबंधित और नोट करने योग्य हैं, इस प्रकार हैं :—

(१) इस प्रान्त में पहले कोई पार्टीबंदी न थी। सब समाजें सिंध की सभा के साथ मिलकर काम करती थीं परन्तु पार्टीबन्दों को पार्टीबंदी फैलाये विना कदाचित् रोटी हज़्म नहीं हुआ करती। लाहौर की कौलिज पार्टी ने इस प्रान्त में पार्टीबन्दी फैला कर और पार्टी की समाजें खोलकर बड़ा निकृष्ट काम किया है। इस काम की जितनी मलामत की जावे थोड़ी है।

(२) कराची समाज की कन्या पाठशाला बड़े पैमाने पर उपयोगी काम कर रही है। यहां युवक समाज का काम आदरणीय और प्रशंसनीय है। यहां युवकों की एक व्यायामशाला है जिसको नित्योपयोगी करने में १६३६ ई० के अंत तक २५०००) खर्च हो चुके हैं। प्रातः नियम से युवकगण इस व्यायामशाला में जाकर व्यायाम किया करते हैं। एक दिन प्रातः ५ बजे मैं

व्यायामशाला में बिना सूचना दिये चला गया तो वहां २२ युवकों को व्यायाम करते पाया। यहां सभी प्रकार की देशी और विदेशी वरजिशें सिखलाई जाती हैं। एक दिन रात्रि में युवकों ने अपने व्यायाम संबंधी कर्तव्यों का प्रदर्शन किया था। उनके सभी कर्तव्य अभूतपूर्व थे। प्रदर्शन की समाप्ति पर कुछ इनाम भी उन्हें दिया गया था।

(३) यहां कराची के स्वयं सेवक जिस वीरता से हिन्दुजाति की रक्षा करते हैं वह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। उन्होंने सैकड़ों स्त्रियों को पतित होने से बचाया है।

(४) कराची का बन्दर कराची से प्रायः ढाई मील की दूरी पर है। वहीं जहाज़ आया जाया करते हैं। स्वामी सेवकानन्द के प्रयत्न से, जहां सिंध में एक गुरुकुल खोलने की तहरीक जड़ पकड़ रही है वहां इस बन्दरगाह (कैमारी) में एक अच्छा आर्यसमाज का मन्दिर बन गया है। इस मन्दिर के संबंध में, धर्मशाला के भी कुछ कमरे बनाये गये हैं जिनसे यात्रियों को बड़ा लाभ पहुंच रहा है। मन्दिर समुद्र पाटकर बनाया गया है। आ० स० कैमारी के अधिकारी, १९३७ ई० की बात है, बड़े उत्साही हैं और सब मिलकर बड़े प्रेम से काम करते हैं।

(५) कराची में क्लिफ्टन (Clifton) जिसे वहाँ हवा बन्दर कहते हैं, सैर करने के लिए अच्छी जगह है। सायं काल के समय मैंने देखा कि नगर के अनेक स्त्री पुरुष सैर करने के लिए वहां गये हुये थे। यहां की इमारतों से समुद्र का दृश्य देखने से अत्यन्त सुहावना मालूम होता है।

(६) हैदराबाद, कराची के बाद सिंध में सबसे बड़ा शहर है। यहाँ पश्चिमी फ़ैशन और पश्चिमी रंग ढंग का आधिपत्य है। आर्य समाज का मन्दिर अच्छा बना हुआ है। स्वामी सेवकानन्द ने यहीं गुरुकुल खोलने का निश्चय सा कर रक्खा है। वह भूमि मुझे दिखलाई गई जो गुरुकुल के लिये तजवीज़ की गई है। भूमि अच्छी और काफ़ी है एकान्त भी है।

(७) आर्यसमाज बाग़ सक्खर के नवयुवक कार्यकर्ता बड़े उत्साही और पुरुषार्थी हैं। यहाँ प्रचार आदि का सभी प्रबन्ध इन्हों ने किया था।

(८) सक्खर बैरज की सैर की गई। यहाँ से सिंध नदी से सात नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों के बाद सिंध नदी एक बड़े नाले से अधिक बाकी नहीं रहती। यह स्थान दुनिया के प्रसिद्ध स्थानों में से एक है और इंजीनियरिंग की उच्च कला का प्रदर्शक है।

(९) सक्खर में अछूतों की एक कौलोनी (बस्ती) है। इसे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ एक बैंक अछूतों के धन से खुला है और अछूतों के द्वारा ही उसका प्रबन्ध होता है। कौलोनी का सारा खर्च इसी बैंक से चलता है। जहाँ जहाँ अछूतों के उद्धार के कार्य देश में हो रहे हैं, वहाँ के कार्य-कर्ताओं को इस बस्ती में आकर यहाँ का प्रबन्ध देखना चाहिये। यहाँ के बैंक का अनुकरण करने से चंदा मांगने की जरूरत नहीं रहती।

(१०) मोहनजो डारो—यहाँ खुदाई से जो स्थान निकले हैं उन्हें तथा यहाँ से निकली हुई वस्तुओं के संग्रहालय को देखा गया। यहाँ की आबादी को ईसा से ३००० वर्ष पहले का होना कूता गया है। संग्रहालय में मिट्टी के बरतन, खिलौने, सोने चांदी के ज़ेवर, लोहे तथा अन्य धातों की अनेक चीज़ों के देखने से साफ़ ज़ाहिर होता है कि अबसे ५००० वर्ष पहले यहाँ के निवासी उच्च कोटि की सभ्यता रखने और प्रत्येक धात का इस्तैमाल करना जानते थे। शहर तथा मकानों के अन्दर नालियों का प्रबंध (Drainage System) प्रचलित था उसके बचे हुए चिन्ह इन खंडहरों में मौजूद हैं मकानों में स्नानागारों का प्रबंध था। उपासना के लिए गुंबददार मन्दिर बने हुए हैं। दीवारें असाधारण रीति से चौड़ी और बहुत बड़ी पकी हुई ईंटों की बनी हुई हैं।

(११) सिंध प्रान्त में यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यहाँ के नवयुवक आर्यसमाज के कार्य्यों में गहरी दिलचस्पी रखते हैं।

सार्वदेशिक सभा की २७ वर्षीय रिपोर्ट

सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार उसकी २७ वर्षीय रिपोर्ट फ़रवरी १९३७ ई० तक की लिखकर तय्यार करदी गई। यद्यपि इस कार्य्य के पूरा करने में २½ मास कठिन परिश्रम करना पड़ा परन्तु संतोष के योग्य बात यह है कि आर्य्य समाज के भावी इतिहास लेखकों के लिये इतनी सामग्री और किसी तरह से नहीं मिल सकती थी। इसके सिवा इस (सार्वदेशिक) सभा के

बनने का इतिहास जानने वाला तो इस समय और कोई मौजूद ही नहीं था, न उस सब का रिकार्ड ही मौजूद है। इस लिये यदि मैं उसे न लिख देता तो फिर आगे वह लिखा ही नहीं जा सकता था। प्रसन्नता है कि आवश्यक निरीक्षण आदि कराने के बाद सभा ने उसे प्रकाशित कर दिया है।

पृथ्वीराज का क़िला

देहली से ५ मील के फ़ासिले पर, हाल में जो खुदाई हुई है उससे पृथ्वीराज का क़िला निकला है। उसे देखा गया। जो चीज़ें निकली थीं उन्हें तो सरकार ने हटा लिया है। केवल इमारतों की बुनियाद आदि वहां देखने को मिली थी।

हाथ में फिर दर्द

अधिक लिखने के कारण १८ फ़रवरी १९३७ ई० से हाथ में फिर दर्द होना शुरू होगया है। सार्वदेशिक सभा का तथा अन्य लिखने के कार्य्य को छोड़े बिना, कदाचित यह तकलीफ़ दूर न होगी।

विद्यार्थी जीवन रहस्य

विद्यार्थी जीवन रहस्य को शोध कर दूसरा संस्करण छापने के लिये सार्वदेशिक सभा को दिया गया। प्रसन्नता है कि सभा ने प्रचार की दृष्टि से उसका मूल्य केवल ≡) रखकर प्रकाशित कर दिया।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद का त्याग

२२ वीं मार्च १९३७ ई० को देहली में सार्वदेशिक सभा की

वार्षिक साधारण सभा थी। अन्य कार्य्य होने के बाद जब निर्वाचन का समय आया तो जैसा कि पहले से घोषणा करदी गई थी, मैंने सभा में कह दिया कि अब मैं सभा के प्रधानपद को नहीं ग्रहण करूंगा। १४ वर्ष तक सभा का मैं प्रधान रहा। सभा का कार्य्य जब मेरे हाथ में आया था तब सभा नाम मात्र की सभा थी। प्रसन्नता की बात है कि इस १४ वर्ष के प्रयत्न और सभा के सदस्यों तथा आर्य्य जनता के सहयोग से, धन, मान और काम सभी दृष्टियों से अब १४ वर्ष के बाद जब मैं सभा का काम छोड़ रहा हूँ तब सभा नाम की नहीं अपितु काम की सभा बन चुकी है, यह मेरे लिये बड़े सन्तोष की बात है। इस साधारण सी घोषणा के बाद सभा का प्रधानपद सदैव के लिये छोड़ दिया गया।

आर्य्य समाज आगरा का झगड़ा

आगरा समाज संयुक्त प्रान्त के मुख्य समाजों में से एक था। दुर्भाग्य से उसके सभासदों के मध्य झगड़ा होगया। झगड़े ने भयानक रूप धारण किया। कचहरियों में एक दूसरे के विरुद्ध फ़ौजदारी मुक़दमे दायर हुये। शान्ति भंग होने की संभावना होने पर पुलिस ने आर्य्य समाज मन्दिर पर क़बज़ा कर लिया। साप्ताहिक सत्संग होना बन्द हो गये। इस हद तक मामला जब पहुंच गया तब समाज के दोनों फ़रीकों ने नियमपूर्वक इक़रार नामा लिखकर, मामला एक पंचायत के आधीन कर दिया गया। मेरे सिवा स्वामी स्वरूपानन्द और कुंवर हुक्मसिंह जी दो और

पंच थे। हम तीनों व्यक्ति १६ से २२ मई १९३७ ई० तक एक सप्ताह आगरा रहे। दोनों फ़रीकों के उपस्थित किये हुये काग़ज़ों को देखा, जो बातें मौखिक कहीं गईं उन्हें भी सुना गया। जिन बातों के जानने की और ज़रूरत समझी गई तथा जिन काग़ज़ों के देखने की आवश्यकता मालूम हुई उन्हें और जाना तथा देखा गया। जब झगड़े की सभी बातें हमारे सामने आगईं और हमें उसके सभी पहलू स्पष्ट दिखाई देने लगे तब हमने यत्न किया कि दोनों फ़रीक आपस में इस मामले को तै करलें और हम उन्हें इस तय करने में सहायता देवें जिससे हमें फ़ैसला देने की ज़रूरत न रहे। इस यत्न में सफलता हुई। २१ मई को संस्थाओं के बटवारे और अधिकारियों के निर्वाचन आदि के सम्बन्ध में, जिनमें पारस्परिक मत भेद था, दोनों फ़रीक ने राज़ीनामा कर लिया और दोनों फ़रीक की स्वीकृत बातें नोट करली गईं। २२ मई को यह राज़ीनामा नियमपूर्वक लिखा जाने वाला था परन्तु २२ को प्रातःकाल ही बाबू पूर्णचन्द जी वकील जो एक फ़रीक़ के मुखियाओं में से थे मेरे पास आये और प्रकट किया कि जो राज़ीनामा कल हुआ था वह अब स्वीकार नहीं है। उनकी यह बात हम सब को अच्छी नहीं मालूम हुई। इस लिये उनसे साफ़ लफ़्ज़ों में कह दिया गया कि यदि वे कल की स्वीकार की हुई बातों को आज़ अस्वीकार करते हैं तो हम दोनों फ़रीक़ की स्वीकार की हुई बातों के मुताबिक़ फ़ैसला देदेंगे। ऐसा ही किया गया। नियम पूर्वक फ़ैसला लिख दिया और दोनों फ़रीक़

को सुना दिया गया। फ़ैसले की इत्तिला दोनों फ़रीक़ ने जाकर कोर्ट में की और उनकी इच्छानुसार पुलिस ने आर्य्य समाज मन्दिर उनके हवाले कर दिया। रात्रि में कई मास के बाद वहां (आर्य्य मन्दिर में) पहला अधिवेशन किया गया जिसमें दोनों फ़रीक़ सम्मिलित हुये। अधिवेशन में फ़ैसला दिया गया और देने के बाद शान्ति के साथ मिलकर रहने का आदेश दिया गया।

(२) जब हम आगरे ही में थे तो रात्रि में बाबू त्रिलोकी नाथ (Retired Distt. and Session Judge) और उनके पुत्र बाबू हरनाथ सिविल जज मिलने आये और उनकी इच्छानुसार उन्हें जप की विधि तथा जप के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातें बतलाई गईं।

कश्मीर की फिर एक यात्रा

इस वार ३० जूलाई से ९-८ १९३७ तक श्रीनगर रहकर वहां के उत्सवों में भाग लेने के सिवा मनोरंजनार्थ निम्न स्थानों में भ्रमण किया गया।

(१) दूसरी अगस्त का दिन चश्मा में शाहीबाग में व्यतीत किया गया। यहां का पानी बहुत अच्छा है।

(२) ५ वीं अगस्त को वेरीनाग, अच्छावल, अनन्तनाग की सैर की गई वेरीनाग के बड़े चशमे से वितस्ता (जेहलम्) नदी निकली है। बाग बड़ा सुन्दर है। अच्छावल का स्रोत और उससे सैंकड़ों फ़व्वारों का चलना दर्शनीय है

(३) श्रीनगर से जो सड़क जम्मूं को जाती है उससे ११ वें और १२ वें मील के बीच में, अवन्तीपुर की ओर केसर की क्यारियां हैं उन्हें देखा गया। समस्त कशमीर में केसर केवल इसी जगह पैदा होती है।

(४) जम्मूं के रास्ते से लौटना था। सायंकाल कुद में ठहरना पड़ा। वहां श्री पं० ठाकुरदत्तजी वैद्य मुलतानी के उदार्तापूर्ण आतिथ्य से बहुत आराम मिला। प्रातःकाल जम्मू के लिये यात्रा की।

उनचासवां अध्याय

सार्वदेशिक दयानन्द भिक्षु मंडल की योजना

संन्यासी संगठित होकर काम कर सकें और उनके रोगी आदि होने पर उनकी समुचित सेवा और चिकित्सा हो सके, मुख्य रीति से इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखते हुये श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने मेरी सलाह से इस मंडल की स्थापना की थी। मंडल १९३७ ई० में स्थापित होकर रजिस्टर्ड हो चुका था; परन्तु हैद्राबाद के सत्याग्रह का काम बीच में आजाने से उसका कुछ काम न होसका था। सत्याग्रह के समाप्त होने पर इसका फिर काम शुरू किया गया। चन्दे से धन इस काम के लिये संग्रह किया जावे मैं इसके हक़ में नहीं था। इस लिये भक्त सुन्दरदासजी वान प्रस्थी ने, जो इस मंडल के कार्य्यों में गहरी दिलचस्पी लेते हैं, तजवीज की कि मंडल के अंतर्गत एक आर्य नगर बसाया जावे। काम तो इस नगर के बसाने का विरक्तार्य्य-आश्रम ज्वाला-पुर की अध्यक्षता में प्रारंभ कर दिया गया था। परंतु प्रशंसित आश्रम ने अपना स्वत्व मंडल के हवाले कर दिया इसलिये ज्वाला पुर का आर्य्य नगर अब मंडल के आधीन हो गया। भूमि लेकर प्लाट बनाकर आर्यों के हाथ वेचने में थोड़ा थोड़ा धन प्रति प्लाट मंडल के कार्यों के लिये बढ़ा कर बेचने से, मंडल के काम चलाने के लिये पच्चीस हज़ार रुपये के लगभग धन एकत्र हो

गया। मंडल का हेडक्वार्टर ज्वलापुर है। श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ मंडल के मन्त्री हैं। उनके मन्त्री होने और ज्वालापुर आ जाने से, आशा है कि मंडल का काम उत्तम रीति से चलने लगेगा।

गले का खराब होना और खांसी का कष्ट

मैंने अपने हाथों और गले के साथ बड़ा अन्याय किया है और इसलिये वे कभी एक कभी दूसरा कष्ट देते रहते हैं। वर्षों ऐसे बीते हैं जिन में सत्रह सत्रह और अठारह अठारह घंटे रोजाना लिखने का काम मुझे करना पड़ा। और वर्षों प्रति दिन अपितु कभी कभी एक एक दिन में दो दो तीन तीन बार व्याख्यान देने पड़े हैं। १९३७ ई० के अंत में अनेक प्रान्तों का दौरा करने से बहु मात्रा में व्याख्यान देने पड़े और अधिकांश बहु उपस्थिति में बिना लाउड स्पीकर के। उसका फल यह हुआ कि प्रथम गले में जख्म और उसीसे फिर खांसी हो गई और खांसी ने इतनी तक़लीफ़ दी कि आर्य्य प्रति निधि सभा संयुक्त प्रान्त की स्वर्णजयन्ती में आठ दिन शरीक रहते हुये भी केवल एक व्याख्यान बहुत कठिनता से लाउड स्पीकर के सहारे से दे सका। गले और खांसी की चिकित्सार्थ मुझे कई मास तक देहली और ज्वालापुर रहना पड़ा। २२ फरवरी १९३८ ई० को जब मैं ज्वालापुर था तो मेरी अस्वस्थता का हाल सुन कर शाहपुराधीश श्री राजाधिराज उम्मेदसिंहजी मुझे देखने के लिये मेरी कुटी में पधारे और कुछ देर तक ठहर कर सब हाल पूछने के बाद वापिस चले गये।

वान प्रस्थाश्रम में बृहद्‌यज्ञ

इस वर्ष हरद्वार में कुंभ का मेला था। बहु संख्या में यात्री १६३८ ई० के प्रारंभ ही से आने लगे थे। वानप्रस्थाश्रम की प्रबंध कर्त्री सभा ने निश्चय किया था कि २१ दिन २० मार्च से ६ वीं अप्रेल १६३८ ई० तक चारों वेदों से बृहद्‌यज्ञ किया जावे और साथ ही प्रचार भी बराबर जारी रक्खा जावे। यज्ञ में ब्रह्मा का पद मुझे ग्रहण करना पड़ा था। यज्ञ और प्रचार दोनों उत्तमता के साथ समाप्त हुये। इन्हीं दिनों में श्रीयुत ला० धनीराम भल्ला ने भी, मोहन आश्रम भीमगोड़ा में यज्ञ की व्यवस्था कर रक्खी थी। एक दिन मैं उनके यज्ञ में भी शरीक हुआ। वहां महात्मा हंसराज से भी भेंट हुई। दुःख है कि यह भेंट अन्तिम सिद्ध हुई। उसके कुछेक समय के बाद उनका देहावसान हो गया।

इस ज्वालापुर की स्थिति की कुछेक विशेष घटनायें

जब मैं चिकित्सार्थ ज्वालापुर ठहरा हुआ था तो यज्ञादि के सिवा कुछेक और भी उल्लेखनीय घटनायें घटित हुईं। उनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) ६ वीं अप्रेल को. आर्य्य नगर को, जिसका जिक्र सार्वदेशिक दयानन्द भिक्षु मंडल के प्रकरण में आ चुका है, बुनियाद रक्खी गई।

(२) श्रीमती शिवदेवी जी (रावलपिंडी) ने आर्य्य नगर में एक कुआं बनवाना निश्चय किया था उसका कार्य्य भी

(खुदाई आदि का) उसी दिन से जारी हुआ।

(३) निम्न सज्जनों ने १० वीं अप्रेल १९३८ ई० को संन्यास की दीक्षा ली।

(१) बाबू जयनारायण रिटायर्ड पोस्ट मास्टर जिनका नाम स्वामी विज्ञानन्द रक्खा गया। इन्होंने एक विशाल आर्य्य भवन बदायूं में बनवाकर उसकी रजिस्टरी आर्य्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के नाम करादी है। इस भवन की तय्यारी में पर्याप्त धन खर्च हुआ था। अब इस भवन में आर्य्य समाज के बड़े बड़े अधिवेशन हुआ करते हैं। आज कल स्वामी विज्ञानन्दजी वान प्रस्थाश्रम प्रबन्ध कर्त्री सभा के मंत्री हैं और यह काम वे बड़ी योग्यता से कर रहे हैं।

(२) महाशय डालचन्द जी M. A., L L. B.,

एक युवक का बहक जाना

जब मैं फैजाबाद के जिले के आर्य्य समाज दयानन्द नगर अछोरा में था तब उस ओर के प्रसिद्ध पहलवान भीम कुमार १३ अप्रैल १९३८ ई० को एक युवक शिवराज बहादुरसिंह को लाये और प्रकट किया कि इसने यज्ञोपवीत उतार दिया है और ईश्वर के मानने से भी इन्कार करने लगा है। मैंने उसे प्रेम से अपने पास बिठला लिया और अवकाश मिलने पर उससे बात चीत की। मैंने जगत रचना के सम्बन्ध में उसे बतलाया कि तीन कल्पनायें जी जा सक्ती हैं:—(१) जगत इसी प्रकार अनादि काल से बना चला आता है (Self Existed eternally) (२)

स्वयं बन गया (Self Created) (३) किसी वाह्य शक्ति ने उसे बनाया (Created by Some External Agency) इनके सिवा यदि और कोई कल्पना हो सक्ती है तो बतलाओ ? इन्कार करने पर मैंने कहा कि बतलाओ कि इनमें से तुम्हें कौनसी कल्पना अपील करती है। बिचार करते हुए उसने स्वीकार किया कि पहली दो कल्पनायें अवैज्ञानिक होने से स्वीकृत नहीं होसक्तीं, इस लिये माननी तो तीसरी ही कल्पना पड़ती है। मैंने कहा कि जब तुम यह स्वीकार करते हो कि जगत् किसी वाह्य शक्ति (External Agency) का बनाया हुआ है तो फिर वाह्य शक्ति के मानने से इन्कार किस प्रकार किया जा सक्ता है ? इसपर शिवराज बहादुर ने उदारतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार करली।

कर्म रहस्य

कर्म रहस्य पुस्तक समाप्त करके आर्य्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान को, उसके अधिकारियों की इच्छानुसार, सभा की स्वर्ण जयन्ति के उपलक्ष में प्रकाशनार्थ दी गई। यह बीसवां ग्रन्थ है जो रचा गया।

वैदिक सन्ध्या रहस्य का तामिल अनुवाद

श्रीयुत C. Aumavatar Sulur (कोयमवटूर) मदरास की इच्छानुसार वैदिक सन्ध्या रहस्य के तामिल भाषा में अनुवाद करके प्रकाशन करने की अनुमति ११ जून १९३८ ई० को दी गई।

एक धूर्त

१३ वीं अगस्त १९३८ ई० को एक व्यक्ति नारायण आश्रम रामगढ़ में आया। उसने अपना नाम चतुर्भुज और अपने को कराची का रहनेवाला बतलाया। अपने कराची से यहां आने का एक विलक्षण कारण बतलाया। उसने कहा कि उसके घर मोती निकालने का व्यवसाय होता है। कराची के सिवा उसकी एक दूकान बसरे में है जहां समुद्र से मोती निकाले जाते हैं। उसने यह भी प्रकट किया कि एक वर्ष ६ मास के लिये उसका पिता बसरे में रहा करता है और दूसरे वर्ष वह वहाँ रहा करता है। उसके कथनानुकूल, उसके बसरा रहने के काल में उसके पिताने उसकी स्त्री से अनुचित सम्बन्ध कर लिया। जब वह करांँची आया और उसको उस दुर्व्यवहार का हाल मालूम हुआ तो उसने अपने पिता से शिकायत की। इस पर उसने इसे मारकर घर से निकाल दिया है। उसने यह भी प्रकट किया कि वह अलमोड़ा के ज़िले में, गर्म पानी के निकट एक इस्टेट का लेना तै कर चुकाहै कुछ दिनों के बाद वह जाकर उस इस्टेट को ख़रीद लेगा। उसकी बातें यद्यपि सन्देहप्रद सी जँचीं परन्तु इस नियम का आदर करते हुये कि "प्रत्येक को अच्छा समझना चाहिये जब तक वह अपने को बुरा न सिद्ध करदे"। उसे एक ख़ाली स्थान ठहरने को दे दिया गया और माली से कह दिया गया कि वह उसके भोजन आदि का प्रबन्ध कर देवे। उसके पास कपड़े नहीं थे; इस लिये आवश्यक वस्त्र भी उसे दिलवा दिये गये।

दो-चार दिन इस प्रकार वह आश्रम में रहा था कि उसकी दयनीय दशा समझ कर बाबू प्यारेलाल रिटायर्ड जज ने, जो नारायण आश्रम ही में रहते हैं, उसे अपने पास रख लिया। इस प्रकार वह आश्रमवासियों से हिलमिल गया। कुछ दिन के बाद यह निश्चय हुआ कि बाबू प्यारेलाल, वह और एक दो सज्जन और जाकर उसकी इस्टेट को देखें जो वह ख़रीदना चाहता है। उसने इसलिये बाबू प्यारेलाल जी आदि से जितना धन वह लेसका था, उधार के नाम से लिया और सब गर्म पानी तक मोटर में गये। उन सबको उसने एक जगह बिठलाया और कहा कि वह अभी भोजन लाता है। भोजन करके तब इस्टेट देखने चलेंगे। इधर ये सब बैठे रहे और वह काठगोदाम जानेवाले मोटर में सवार होकर भाग गया। आज तक फिर उसका पता नहीं चला। ❀

❀ इसके बाद वह पकड़ा हुआ आया और उसे धोखा देने के इलज़ाम में नैनीताल की एक अदालत से १६४० ई० में ६ मास का कठोर दण्ड मिला।

पचासवां अध्याय

हैदराबाद काण्ड

हैदराबाद दक्षिण की रियासत देसी रजवाड़ों में सबसे बड़ा राज्य है। वर्तमान हैदराबादी सरकार के शासन काल में आर्य्य समाज के प्रचार में रुकावटें पड़ने लगीं। मेरे प्रधानत्व काल में सार्व० सभा ने लगातार छ: वर्ष तक पत्र व्यवहार करके पूरा यत्न किया कि रुकावटें दूर होजावें परन्तु फल कुछ नहीं निकला "मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।" रुकावटें कुछ बढ़ीं तो परन्तु कमी कुछ नहीं हुई। अंत में १९३८ ई० के बृहदधिवेशन में जो वर्ष के प्रारम्भ ही में संगठित हुआ था, सार्व० सभा ने, पं० इन्द्र विद्या वाचस्पति को अपना उपप्रधान बनाकर हैदराबाद सम्बन्धी कार्य्य उनको सौंपा। पं० इन्द्र ने, जो अधिवेशन में मौजूद थे, इस कार्य्य को करना स्वीकार कर लिया। इससे हैदराबाद सभा के प्रतिनिधि सन्तुष्ट होकर हैदराबाद चले गये और बाट देखने लगे कि कब पं० इन्द्र जी वहां पहुंचकर काम शुरू करते हैं। ५०००) का बजट भी इसके लिये बनाकर सभा ने पं० इन्द्र के आधीन किया था। ६ मास से कुछ अधिक समय जब बीत गया और हुआ कुछ नहीं तब आमतौर से आर्य्य जनता में और खास कर हैदराबादी आर्य्य जनता में असंतोष बढ़ने लगा। इस परिस्थिति पर विचार करने के लिये ६ अक्टूबर

१९३८ ई० को अन्तरंग सभा की एक विशेष बैठक बुलाई गई। अंतरंग सदस्य बहु संख्या में उपस्थित थे। पं० इन्द्र जी जिन्हें आकर बतलाना चाहिये था कि क्यों इस कार्य्य को नहीं कर सकते, जिसे उन्होंने सोच समझ कर अपने ज़िम्मे लिया था, इस सभा में उपस्थित नहीं हुये। कई घण्टे तक गर्मागर्म बहस हुई। बहस में हैदराबाद के प्रतिनिधियों का पारा सब से ऊंचा चढ़ा हुआ था। कोई इस काम को लेने के लिये आगे नहीं बढ़ रहा था; तब म० कृष्ण ने मुझ से इस काम को अपने ज़िम्मे लेने की प्रेरणा की और बाकी उपस्थित सदस्य इस प्रेरणा के समर्थन में उनके साथ होगये। जब मामला और किसी तरह से सुलझने में नहीं आरहा था तब मजबूरन सभा की इच्छानुसार मुझे इस काम को अपने ज़िम्मे लेना पड़ा। अन्तरंग सभा ने इस पर जो निश्चय किया उसका उपयोगी भाग यह है।

"हैदराबाद राज्य में आर्य्य समाज के धार्मिक अधिकारों पर जो आघात हो रहे हैं, उनका ब्यौरा सुना गया। विचार के बाद सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि उन अधिकारों की रक्षार्थ, उचित कार्य्य करने के लिये महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज को पूर्ण अधिकार दिया जावे।"

आयु, शारीरिक अवस्था आदि दृष्टियों से मुझे यह कार्य्य भार अपने ऊपर नहीं लेना चाहिये था परन्तु जब कोई और इस काम को लेने के लिये तय्यार नहीं था; और महाशय कृष्ण ने

प्रेरणा करते हुये कहा था कि चाहे इस काम में मर भी जाने का भय हो तब भी यह काम मुझको लेना चाहिये। इन हालात में विवश होकर मुझे यह काम लेना पड़ा। मेरे लिये सन्तोष की बात केवल यह थी कि श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के लिये विश्वास था कि वे इस काम में मेरा साथ देंगे।

शोलापुर को हेड क्वार्टर बनाया गया

अब जब काम अपने शिर ले लिया गया तो चिन्ता हुई कि यथा सम्भव शीघ्र इसे पूरा करना चाहिये। इसलिये निश्चय किया गया कि शोलापुर को प्रारम्भिक कार्यार्थ, केन्द्र बनाया जावे और वहीं रहकर कार्य शुरू किया जावे; इसलिये २८ अक्टूबर ३८ शोलापुर के लिये प्रस्थान करने की तिथि नियत करली गई। २६।१०।३८ तक ज्वालापुर, सीतापुर, रामपुर स्टेट, बरेली, इलाहाबाद स्थानों के पहले से नियत कार्य क्रमों को पूरा करके २७।१०।३८ को प्रातः काल में देहली पहुंच गया। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी भी देहली पहुँच गये थे। उसी दिन सार्वदेशिक सभा के कार्यकर्ताओं के साथ सलाह मशवरा कर लिया गया। २८ को प्रातः काल फ्रांटियर मेल से, सहयोगियों आर्य जनता और देहली निवासियों की मंगल कामना लेते हुये, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी को साथ लेकर, देहली से कुछ काल के लिये, चल दिये। आर्य रक्षा समिति के मन्त्री भी आवश्यक फाइलों को साथ लिये हुये हमारे साथ थे। एक दिन रास्ते में बम्बई ठहरे। बम्बई में वहां के कार्यकर्ताओं से सलाह मशवरा कर और

पूरी पूरी सहायता देने का वचन लेकर २९ १०/३८ की रात्रि में मदरास मेल से शोलापुर के लिये चल दिये। ३० को प्रातःकाल गाड़ी शोलापुर पहुँची। स्टेशन पर हैदराबाद प्रतिनिधि सभा के मन्त्री पं० बन्शीलाल तथा कुछ और सज्जन मिल गये। उनके साथ शहर में जाकर एक किराये के मकान में ठहर गये।

आगे का कार्यक्रम

शोलापुर पहुँच कर हैदराबाद स्टेट के सब हालात जाने गये और शोलापुर की स्थिति देखी गई। आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य के कार्य कर्ताओं तथा शोलापुर निवासियों से बातचीत की गई। सब बातों पर विचार करने के बाद निश्चय किया गया कि आगामी दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह बड़े दिन को छुट्टियों में, सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन (आर्य कांग्रेस) की एक बैठक शोलापुर में बुलाई जावे। यद्यपि शोलापुर हमारे लिये नई जगह थी। न वहाँ आर्य समाज था, न आर्य पुरुष जिन से सुगमता से सहायता मिल जाती। समय केवल पौने दो मास का शेष था। परन्तु ईश्वर की अनुकम्पा से, नई और अपरिचित जगह होते हुये भी, इसी थोड़े से काल में सब प्रबन्ध ठीक हो गया; और उसी शोलापुर में, जहां के एक व्यक्ति से भी हमारी जानकारी न थी, इतने सहायक हमको मिल गये कि एक मास के बाद उसका नई जगह मालूम होना ही बन्द हो गया। जिस नीति से हमें शोलापुर में सफलता मिली वह हमारी अनेक बार की परीक्षित नीति थी। शोलापुर में उसका रूप यह था:—

(१) झगड़ा हमें एक स्टेट से करना था इसलिये निश्चय किया गया कि हमें बम्बई गवर्नमेन्ट और बृटिश राज कर्मचारियों से मेल रखकर उन्हें अपना सहायक बनाये रखना चाहिये।

(२) किसी भी स्थानिक पार्टीबन्दी से सम्बन्ध न रखते हुये और किसी से भी बिगाड़ न करके, जिससे जितनी सहायता मिलसके लेनी चाहिये। शोलापुर में हिन्दू सभा और कांग्रेस में शत्रुता थी और एक दूसरे, के प्रत्येक कार्य में विघ्न डाला करते थे; परन्तु हमें दोनों ने जी खोलकर सहायता दी।

(३) हम ने निश्चय कर रक्खा था कि निज़ाम, उनके ख़ानदान, उनके राज्य में से किसी एक का भी हमें विरोध नहीं करना चाहिये, न मुसलमानों को अपना अशुभ चिन्तक बनाना चाहिये, न इस समय मुसलमानी सम्प्रदाय के विरुद्ध हमें कोई आन्दोलन खड़ा करना चाहिये।

(४) हमारा एक मात्र ध्येय आर्य समाज के कार्यों में रुकावटों का दूर करना होना चाहिये।

इस नीति का प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अक्षरश: पालन किया गया और इस बात से हमें बड़ी प्रसन्नता है कि यह नीति पूर्णतया सफल हुई। इस में ज़रा भी सन्देह नहीं है कि यदि हैदराबाद राज्य के कर्मचारी धन का प्रलोभन देकर उन्हें न उभारते तो शोलापुर के मुसलमान हमारे काम का विरोध न करते। हैदराबाद राज्य के अनेक वैतनिक कर्मचारी

जो शायद इसी काम के लिए रक्खे गये थे उनका इसके सिवा और कोई काम न था कि शोलापुर रहकर हमारी देखभाल रक्खें। जब मैं शोलापुर से किसी काम के लिये बम्बई आदि जाता तो तीन चार हैदराबाद के सी. आई. डी. के आदमी इधर उधर होकर बराबर हमारे साथ जाया करते थे।

एक घटना

एक बार रात्रि में रायचूर पूना पसेंजर द्वारा पूना जा रहा था। इस ट्रेन में इन्टर क्लास नहीं था इसलिये शोलापुर ही से एक थर्ड क्लास की गाड़ी में अपना बिस्तरा बिछाकर लेट गया था। अभी हमारे आदमी जो हमें स्टेशन पहुँचाने आये थे गाड़ी न छूटने के कारण, हमारे पास ही थे कि इसी बीच में एक सज्जन मेरे पास आये और कहा कि वह दरजा जिसमें वह थे, बिलकुल ख़ाली है इसलिये मैं वहाँ चलकर लेटूं तो उनको उस दरजे में अकेले होने से जो भय था जाता रहेगा। मैंने अपने आदमी को उनके साथ भेजा कि वह जाकर देख आवें कि जिस दरजे में मैं हूँ दूसरा डिब्बा इतना ही बड़ा है या क्या? और यह भी कि उसमें कितने आदमी हैं? उसने लौटकर बतलाया कि छोटा सा डिब्बा है और उसमें चार पांच हैदराबाद के मुसलमान कर्मचारी हैं और यह भी कि उन्होंने ही सिखाकर इन्हें भेजा था कि मुझे उस डिब्बे में लिवा लावें। इस प्रकार की घटनायें अनेक बार घटित हुईं परंतु हम सचेत रहते थे इसलिए उनसे कभी हमें नुक़सान नहीं उठाना पड़ा।

शोलापुर निवासियों में से अनेक हमारे शुभचिन्तक हमारे पास आते और कहते कि मैं कभी कहीं अकेला न जाया करूं क्योंकि यह बात ख़तरे से ख़ाली नहीं; परन्तु सत्याग्रही बनकर इस प्रकार की बातों से डरना अनुचित था; इसलिये इन बातों ने हमारे किसी कार्य पर प्रभाव नहीं डाला। मैं और स्वामी स्वतंत्रानन्दजी नित्य प्रति प्रात: ४ बजे उठकर जंगल चले जाते थे। २½ तीन मील दूर जाकर शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर प्राय: ७ बजे के लगभग लौटा करते थे। घंटों हमें शहर से बाहर आर्य नगर में रहकर काम देखना पड़ता था और एक मास तो बराबर डेरों ही में हमें शहर से बाहर रहना पड़ा। अस्तु, इस प्रकार ख़तरे में रहते हुये भी, दिन रात के परिश्रम का फल यह हुआ कि आर्य सम्मेलन बड़ी सफलता के साथ समाप्त होगया और उसने अनेक महत्वपूर्ण निश्चय किये। सम्मेलन ने सत्याग्रह करने का निश्चय करके तजवीज़ की (क) "यह सम्मेलन अहिंसात्मक सत्याग्रह के आन्दोलन के संचालन के लिये एक सत्याग्रह समिति नियत करता है जिसके प्रथम सर्वाधिकारी (डिक्टेटर) श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज होंगे। (ख) यह सम्मेलन श्री महात्मा नारायण स्वामीजी को अधिकार देता है कि वे इस समिति के सदस्यों की संख्या और नामावली नियत करें।"

सम्मेलन के बाद का कार्य क्रम

सम्मेलन के निश्चयानुसार समिति बनादी गई और उनके

नामों की घोषणा करदी गई। अब जेल जाने से पहले उस समय मेरे सामने काम यह था कि ऐसा प्रबंध कर दिया जावे जिससे मेरे पीछे सत्याग्रह का काम ठीक तरह से चलता रहे। यह बात पहले से भी लक्ष्य में थी। अस्तु, सम्मेलन के समाप्त होने के बाद एक मास का समय इन सब बातों के प्रबंध करने में लगाया गया। सम्मेलन का हिसाब समाप्त किया गया। जहां जहां से जो जो चीजें आई थीं उन सब को वापिस किया गया। एक मास के बीतने से पहले से जो जो काम कर दिये गये थे उनका विवरण इस प्रकार है :—

(१) शोलापुर में सत्याग्रह केम्प स्थापित किया गया और पं० वंशीलाल मन्त्री हैदराबाद सभा को उसका इनचार्ज बनाकर हिदायत की गई कि वे इसकी बराबर देख भाल रक्खें कि केम्प में जो ५०० स्वयं सेवक इस समय हैं वह संख्या कम न होने पावे। जितने आदमी कैम्प से सत्याग्रह करने चले जावें उतने ही और भरती होते रहें।

(२) बाईस हजार स्वयं सेवकों की सूची कार्य्यालय में तय्यार थी। इन स्वयं सेवकों ने प्रतिज्ञा की हुई थी कि जब बुलाये जावेंगे फ़ौरन उपस्थित होजावेंगे।

(३) इक्यावन हजार धन सेंन्ट्रल बैंक शोलापुर में जमा करा दिया गया जिसमें सत्याग्रह के काम में धन की कमी बाधक न हो।

(४) मेरे जेल जाने के बाद कौन कौन डिक्टेटर किस किस

क्रम से होंगे इसका इस प्रकार निश्चय करके उन सबकी स्वीकारी मंगाली गई।

(१) दूसरे डिक्टेटर कुं० चांद करण शारदा अजमेर।

(२) तीसरे ,, ला० खुशहाल चन्द जी लाहौर।

(३) चौथे ,, राजगुरु पं० धुरेन्द्रशास्त्री सं० प्रांत।

(४) पांचवें ,, पं० वेदव्रत जी वानप्रस्थ पटना।

(५) श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को समस्त सत्याग्रह के कार्य्यों का स्थिर रीति से इनचार्ज बनाकर उनसे प्रार्थना की गई कि वे जेल न जावें।

(६) पं० बंशीलाल जी को भी यही आदेश दिया गया कि वे भी जेल में न जाकर स्थिर रीति से सं० १ में वर्णित काम करते रहें। इन प्रबन्धों के कर लेने पर मुझे विश्वास होगया कि अब दो वर्ष तक सत्याग्रह के काम चलने में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। इन कार्य्यों से निवृत्त होने पर अब जेल जाने की तय्यारी शुरू की गई।

जेल जाने की तय्यारी

हैदराबाद नगर के आर्य्यों की इच्छानुसार निश्चय किया गया कि मुझे हैदराबाद जाकर सत्याग्रह करना चाहिये। निज़ाम राज्य के कर्मचारियों ने भरसक यत्न किया था कि सत्याग्रह करने के लिये कोई हैदराबाद न जा सके। रेल के जाने वालों को वाडी जँकशन से जहां से हैदराबाद को रेल बदलती है, उतार लिया करते थे। सड़कों के रास्तों पर, जहां जहां से निज़ाम

राज्य की हद शुरू होती थी लोहे की मोटी जंजीरों से सड़क रोकी हुई थी जिससे कोई सवारी बिना राज्य कर्मचारियों की अनुमति प्राप्त किये हैदराबाद न जा सके। इस प्रकार की अनेक रुकावटों के होने पर सोचा गया था कि बम्बई से हवाई जहाज़ के द्वारा हैदराबाद पहुँचना चाहिये। बम्बई की हवाई जहाज़ की सीट रिज़र्व करने के लिये लिख भी दिया गया था। हैदराबाद सत्याग्रह समिति को भी इसकी सूचना देदी गई थी कि मैं हवाई जहाज़ से ३१ जनवरी ३६ को ४ बजे दिन के हैदराबाद पहुंचूंगा। इसलिये वहां ऐसा प्रबंध रक्खा जावे कि जहाज से उतरते ही मैं हैदराबाद पहुँच कर सत्याग्रह कर सकूं। इस प्रकार से सब प्रबंध करके ३० जनवरी की रात्रि में शोलापुर से बम्बई जाना निश्चय कर लिया गया था; परन्तु रात्रि में ट्रेन के छूटने से एक घंटा पूर्व बम्बई से तार आया कि हवाई जहाज में ६ फरवरी ३६ तक जगह न मिल सकेगी। अवश्य १७ फ़रवरी के लिये सीट रिज़र्व हो सकती है। इस तारके आने पर फिर रेल ही से हैदराबाद जाने का प्लैन तय्यार किया गया। इस प्लैन में एक कठिनता यह थी कि शोलापुर स्टेशन पर, जैसा कि कहा जा चुका है, निज़ाम राज्य के अनेक सिपाही उपस्थित रहते थे। उनका काम यह था कि बाड़ी पुलिस को ख़बर दे देते थे और वहां सत्याग्रही जो हैदराबाद जाते थे उतार लिये जाते थे। इस कठिनता को दूर करने के लिये यह उपाय किया गया कि मैंने शोलापुर से हैदराबाद का फ़र्स्ट क्लास का टिकट अपने लिये ख़रीद लिया, परन्तु शोलापुर स्टेशन से अपनी

जगह शोलापुर के एक प्रतिष्ठित सज्जन को गाड़ी में बिठला दिया और उनसे कह दिया गया कि होटगी स्टेशन पर, जो मद्रास ऐक्सप्रेस के जिस गाड़ी से मुझे हैदराबाद जाना था, ठहरने का पहला स्टेशन है, मैं उन्हें मिलूंगा। वे फ़र्स्टक्लास के डिब्बे की खिड़की पीछे से खुली रक्खें। यह प्रबन्ध करके मैं श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के साथ, मोटर से होटगी के लिये चल दिया। होटगी पर मैं गाड़ी में बैठ गया और जो शोलापुर के सज्जन गाड़ी में थे वे स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के साथ मोटर में बैठकर शोलापुर चले गये। इस प्रकार हम हैदराबाद की पुलिस से शोलापुर आदि स्टेशनों पर, बचकर ३१⁄३ को प्रातः ८ बजे हैदराबाद पहुंच गये। वहां की पुलिस ने प्लेटफ़ार्म घेर रक्खा था इस लिये मैं स्टेशन से बाहर जाने की फ़िक्र न करके फ़र्स्टक्लास के वैटिंगरूम में जाकर बैठ गया। आधा घंटे में, रेल के जाने के बाद प्लेटफ़ार्म ख़ाली हो गया। तब मैं स्टेशन से बाहर आया और एक ताँगा किराया करके आर्य समाज सुलतान बाज़ार के मन्दिर के दरवाज़े पर बिना किसी रोक टोक के पहुँच गया। इत्तफ़ाक की बात थी कि मन्दिर का दरवाज़ा बन्द था इसलिये मुझे लगभग आधा घंटे तक दरवाज़े पर सड़क के किनारे खड़ा रहना पड़ा। मेरे हैदराबाद पहुँचने की इत्तला समाज के अधिकारियों और पुलिस को साथ साथ मिली; इसलिये दोनों साथ साथ ही मेरे पास मन्दिर के द्वार पर पहुंचे। दो सब इन्सपेक्टर से ऊँचे दरजे के पुलिस

कर्मचारी मोटर लेकर मेरे पास पहुँचे और कहा कि पुलिस कमिश्नर की कोठी पर चलें। मैं उनके साथ चल दिया।

हैदराबाद की घटित घटनायें

हैदराबाद शहर की पुलिस, पुलिस कमिश्नर के आधीन है मुफस्सिलात की डैरेक्टर जनरल पुलिस के अधिकार में रहा करती है। जब मैं पुलिस कमिश्नर के पास पहुँचा तो वे बड़े तपाक से मिले और चाय के लिये पूछा, मैंने धन्यवादपूर्वक इन्कार कर दिया। उसी समय जब मैं कमिश्नर के बंगले में था एक नोटिस की तामील मुझ पर की गई जिस में लिखा था कि मेरे हैदराबाद रहने से शान्ति भंग होने की संभावना है इसलिये मुझे जल्द से जल्द हैदराबाद छोड़ देना चाहिये। मैंने नोटिस पर हस्ताक्षर करके कमिश्नर साहिब को कह दिया कि मैं इस हुक्म की तामील नहीं करूंगा इस लिये उन्हें सोच लेना चाहिये कि आगे उन्हें क्या करना है। इसके बाद एक पुलिस आफ़ीसर के साथ मोटर में सवार कराके मुझे ऐंडरसन साहिब असिस्टैंट डैरेक्टर पुलिस के कार्यालय में पहुंचाया गया जहां हैदराबाद की सी. आई. डी. पुलिस का कार्य्यालय भी है। वहां मुझे चार घंटे तक ठहरना पड़ा। इस बीचमेंऐंडरसन साहिब सत्याग्रह के संबंध में बात चीत करते रहे। उनका कहना था परिमित रूपमें उस समय तक, उनके नोटिस में कोई ऐसा केस नहीं लाया गया जिसमें आर्योंपर सख्ती की गई हो। इसपर उन्हींके मेज़पर से उठाकर सार्वदेशिक सभा

की ओर से प्रकाशित किया हुआ 'आर्यसमाज का केस' नामक अंगरेज़ी पैम्फिलेट में अंकित अनेक घटनायें उन्हें दिखलादी गई और कहा कि ऐसे मामलात तो बहुत से रियासत के अधिकारियों के नोटिस में लाये जाते हैं; परन्तु अधिकारी लोग उन पर ध्यान नहीं देते। मैंने उदाहरण में इसी पैम्फलेट की बात कही पैम्फिलेट उनकी मेज़ पर है परन्तु उन्होंने देखने की तकलीफ़ नहीं उठाई। इस पर वे मुसकराकर चुप होगये।

(४) इसके बाद एक दूसरे मुसलमान सज्जन, जिनका संबंध सी. आई. डी. के प्रकाशन विभाग से था, बोले कि हैदराबाद में जबसे आर्य्य समाज का ज़ोर हुआ है तभीसे अशान्ति बढ़ी है। उन्हें उत्तर दिया गया कि सुधारक समाज को, सदैव सुधार के विरोधी, बुरा-भला कहा करते हैं, इसलिये यह कोई नई बात नहीं है यदि यहां कुछ लोग आर्य्य समाज को बुरा कहते हैं इसलाम के फैलने की प्रारंभिक अवस्था में अरब के लोग इसलाम को इसी तरह से बुरा कहते थे जैसे यहां के लोग आर्य्य समाज को कह रहे हैं। तब वेभी चुप होगये और मेरे लिये अलग एक कुरसी डालदी गई और एक अंगरेजी अख़बार मुझे पढ़ने को देदिया गया। जब इस प्रकार एकान्त में बैठे हुये लगभग ३ घंटे बीत गये तब मैंने उन्हीं मुसलमान आफ़ीसर से कहा कि मुझे बतलाया जावे कि मुझे क्या करना होगा और कहां जाना या रहना होगा ? उत्तर मिला कि थोड़ी और प्रतीक्षा करें। मैं फिर अखबार उलटने पलटने लगा। लगभग एक

एक और घंटा बीतने पर एक दूसरे असिस्टेंट डैरेक्टर आये, यह एक मदरासी हिन्दू थे। उनके आने पर मुझे बतलाया गया कि मुझे उनके साथ जाना होगा। मैं यह समझकर कि शायद वे मुझे जेल पहुँचावेंगे, उनके साथ चल दिया। वे मुझे मोटर पर सवार कराके स्वयं मोटर तेज़ी से चलाने लगे, पीछे दो कान्स्टेबिल बैठे थे। जब शहर से दूर निकल आये तब मैंने उनसे पूछा कि आख़िर वे कहाँ चल रहे हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें यह हुक्म मिला है कि वे मुझे शोलापुर पहुँचा देवें। मैंने उनसे कहा कि वे अपना और मेरा दोनों का समय व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं। शोलापुर पहुंचकर मैं क्या फिर हैदराबाद नहीं आसक्ता? इस पर वे चुप होगये। हैदराबाद से लगभग ५० मील के फ़ासिले पर "काम कोट" पहुँचकर शाम होगई। यहाँ रियासत की ओर से एक बंगला बना है जिसे Traveller's Bunglow कहते हैं।

कामकोट का यात्रियों का बंगला

उसी बंगले में हम सब ठहर गये। एक कमरे में मैं ठहरा दूसरे में असिस्टेंट डैरेक्टर और पुलिस के सिपाही। भोजन वहां कुछ नहीं मिल सका। दिन में भी भोजन नहीं किया था। थोड़ा सा दूध मिल जाने को वहां ग़नीमत समझा गया। पीने का पानी तो शौलापुर के बाद कहीं नहीं मिल सका। कामकोट के बङ्गले का चौकीदार एक मुसलमान था, उसके घड़े में पानी था, कुंआं दूर तक नहीं था। उसकी कोठरी और घड़ा दोनों

इतने मैले थे कि उस पानी को; प्यास होने पर भी मैं न पी सका। रात्रि में सोने से पहिले कुछ देर तक असिस्टेन्ट डैरेक्टर महाशय से बात चीत हुई। वे. जैसा कि कहा जा चुका है उसी बङ्गले में थे। जब मैंने उनसे यह बात दुहराई कि वे व्यर्थ मुझे शोलापुर लिये जा रहे हैं। जो सत्याग्रह की तहरीक मजबूर होकर मुझे करनी पड़ी है उसमें गर्मी लाने के लिये यह आवश्यक है कि मैं जेल जाऊँ तो फिर मुझे जेल जाने से कौन रोक सक्ता है ? इस पर असिस्टेन्ट साहिब ने पूछा कि क्या मुझे सत्याग्रह करने की इतनी इच्छा है ? मैंने उनसे अपनी एक विज्ञप्ति में अंकित कुछेक बातें बतलाईं। जिनका विवरण इस प्रकार है:—

हैदराबाद राज्य में ८६ फी सदी हिन्दू १० फीसदी मुसलमान और एक फीसदी ईसाई आदि हैं। हैदराबाद के कुछेक प्रभावशाली मुसलमान चाहते हैं और हैदराबाद की सरकार उनकी पीठ ठोकती है कि उचित अनुचित जिस तरीके से भी संभव हो बहु संख्या में हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर मुसलमानों का बहुमत कर लिया जावे। इसके लिये जो कार्य किये जाते हैं उनमें से कुछेक का विवरण इस प्रकार है:—

(१) दीनियात के विभाग की ओर से मुसलमान वाइज नियत हैं जिनका मुख्य कार्य हिन्दुओं को मुसलमान बनाना है।

(२) मदरसों में अधिक तर मुसलमान अध्यापक ही रक्खे जाते हैं। जिस से वे हिन्दु लड़कों को मुसलमान बनावें। एक मदरसे में कुछेक अछूत लड़कों के मुसलमान हो जाने पर उन

की फीस माफ कर दी गई जिससे अन्यों को मुसलमान बनने की रुचि हो।

(३) सरकारी नौकरी अधिकतर मुसलमानों को दी जाती है जिस से हिन्दुओं को मुसलमान होने की क्रियात्मक उपयोगिता मालूम हो इत्यादि इत्यादि। हैदराबाद की गवर्नमेन्ट समझती है कि हैदराबाद राज्य में आर्य समाज की सत्ता, उनके उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति में, बाधक सिद्ध हो रही है; इसलिये उसने आम तौर से हिन्दुओं और आर्यों को धार्मिक कृत्यों के करने और नागरिक अधिकारों की स्वतंत्रता से वंचित करने के लिये अनेक रुकावटें डाल रक्खी हैं जिनमें से कुछेक का विवरण इस प्रकार है:—

(१) आर्य मन्दिरों में बिना इजाज़त लिये कोई उत्सव, उपदेश, कथा आदि नहीं कराई जा सकती और इजाज़त के लिये प्रार्थना करने पर वह प्राय; नहीं दी जाती।

(२) नगर कीर्तन या कोई जुलूस नहीं निकाला जा सकता

(३) कोई व्यायामशाला या निजी पाठशाला नहीं खोल सकता।

(४) आर्य समाज कोई अखबार रियासत में नहीं निकाल सकता। बाहरसे आनेवाले एक दरजन से अधिक हिन्दु और आर्य अखबारातका दाखिला रियासत में बंद कर दिया गया है।

(५) आर्य मन्दिरों अथवा संस्कार आदि करने के लिये अपने घरोंमें बिना इजाज़त के कोई हवन कुंड नहीं बना सकता।

(६) नये आर्य समाज खोलने अथवा स्वतंत्रता के साथ प्रचार करने में अनेक बाधायें उपस्थित की जाती हैं।

(७) ओ३म् आदिका झण्डा कोई अपने मन्दिर पर नहीं लगा सक्ता।

(८) त्योहारों के मनाने में बाधायें उपस्थित की जाती है।

(९) गवर्नमेंट का आम तौर से पुलिस तथा लोकल अधिकारियों का व्यवहार ख़ास तौर से हिन्दुओं और आर्यों के साथ उसके सवथा बिरुद्ध होता है जैसा वे मुसलमानों के साथ करते हैं। ये और इस प्रकार की अनेक बाधायें हैं जिन्हें प्रत्येक हिन्दु या आर्य अपने दैनिक व्यवहार में अनुभव किया करता है। और उनसे कहा कि अवश्य स्टेट की सर्विस में हैं परन्तु उन्होंने अपना अंतः करण (Conscience) स्टेट के हाथ नहीं वेच दिया है इसलिये, उन्हें सोचना चाहिये कि इन हालात में जो प्रयत्न, इन अत्याचारों को रोकने के लिये. मैं कर रहा हूँ वे उचित हैं या नहीं। इसपर उन्होंने कहा कि वे मुझसे सहमत नहीं है। उन्हें उत्तर दिया गया कि कुछ परवाह नहीं यदि वे मुझसे सहमत नहीं। हमें मतभेद रखने के लिये सहमत रहना चाहिये (We must agree to differ)—इसके बाद हम सब सोगये। प्रातः काल से फिर यात्रा शुरू हुई और लगभग ३ बजे दिन के हम वहां पहुँचे जहां हैदराबाद राज्य की हद समाप्त होती है और जहां से शोलापुर १० मील रह जाता है। शोलापुर जाने के लिये वहां एक बस तय्यार थी इसलिये हैदराबाद की मोटर छोड़ और अपने साथी असिस्टेंट डैरेक्टर से रुखसत हो उसमें सवार होकर १ फरवरी १९३९ ई० को सायंकाल शोलापुर अपने निवास स्थान पर पहुँच गया।

इक्यावनवां अध्याय

गुलबर्गा जेल के लिये प्रस्थान

शोलापुर में सलाह करके निश्चय यह किया गया अब दुबारा हैदराबाद जाने का विचार छोड़ देना चाहिये। कहां जाना चाहिये इस पर विचार करने से गुलबर्गा उपयोगी जगह बतलाई गई। इस लिये निश्चय कर लिया गया कि चौथी फ़रवरी ३६ को १० बजे दिन की गाड़ी से गुलबर्गा के लिये प्रस्थान करना चाहिये। दो दिन शोलापुर ठहर कर आवश्यक कार्य्य कर लिये गये। ४ फ़रवरी को प्रातः ६ बजे के लगभग स्टेशन पर पहुंच गया। हजारों पुरुष स्त्रियों की भीड़ मुझे रुख़सत करने के लिये एकत्रित थी। स्टेशन के अहाते में पहुँचते ही सबसे पहले अनेक माताओं ने आरती उतारी तिलक लगाया और मातृ प्रेम प्रदर्शन करते हुये मुझे रुख़सत किया। स्टेशन के भीतर प्लेटफ़ार्म पर कांग्रेस, हिन्दू-सभा आदि सभी श्रेणी के गण्यमान्य पुरुष मौजूद थे। फूलों और मालाओं से मुझे लाद दिया गया। जो प्रेम शोलापुर निवासियों ने उस समय प्रदर्शित किया उसका मेरे ऊपर इतना प्रभाव पड़ा कि मैं उस समय भूल सा गया कि मैं पंजाब, देहली, या यू० पी० के किसी शहर में हूँ या शोलापुर में। इस प्रकार सब से रुख़सत होकर मैं अपने कठोर कर्त्तव्य का पालन करने के लिये रेल पर सवार होकर गुलबर्गा की

ओर चल दिया। बीस स्वयं सेवक और भी मेरे साथ थे। शोलापुर छोड़ने से पहले तीसरी फ़रवरी को मैंने गुलबर्गा के सूबेदार (कमिश्नर) को तार दे दिया था कि मैंने हैदराबाद की गवर्नमेन्ट के उस हुक्म को तोड़ने के लिये, जो उसने हैदराबाद में मेरे दाखिल न होने के सम्बन्ध में दिया था, गुलबर्गा आता हूँ।

वसीयतनामा

हैदराबाद राज्य के जेल, श्यामलाल की मृत्यु के बाद काफ़ी बदनाम हो चुके थे। हम लोगों के भीतर इस विचार ने. अपना घर बना रक्खा था कि हैदराबाद के राज्य के विरुद्ध आन्दोलन करके, वहां की जेलों में जाना, मौत का मुक़ाबला करना है। मुझे भी यही समझ कर जेल जाना था। इस लिये जाने से पहले मैंने रामगढ़ के नारायण आश्रम आदि के सम्बन्ध में एक वसीयतनामा लिखकर, उस पर स्वामी स्वतन्त्रानन्द और शुक्लानन्द जी की गवाही कराके, एक लिफ़ाफ़े में बन्द करके लिफ़ाफ़े पर लिख दिया था कि मेरी मृत्यु होजाने पर यह लिफ़ाफ़ा डाक्टर इन्द्रसैन प्रोफेसर हिन्दू कौलिज देहली या बाबू प्यारेलाल रिटायर्ड जज के पास भेज दिया जावे।

गुलबर्गा की घटित घटनायें

४ फ़रवरी २६ को दिन के दो बजे हमारी गाड़ी गुलबर्गा स्टेशन पर पहुंची। स्टेशन से एक मील इधर ही से, दर्शकों की लंबी कतार गुलबर्गा तक लगी हुई थी। स्टेशन का अहाता तो

खचाखच दर्शकों से भरा हुआ ही था हम और हमारे साथी रेल से उतर कर सेटफ़ार्म पर खड़े हुये ही थे कि गुलबर्गा पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट मेरे पास पास आये और अंग्रेज़ी में मुझसे पूछा कि जब मेरा दाखिला स्टेट में बन्द है तो मैं क्यों यहां आया ? मैंने अंग्रेज़ी ही में उन्हें उत्तर दे दिया कि उसी हुक्म के तोड़ने के लिये मैं इरादा करके यहां आया हूं। इस पर उन्होंने यह कहकर, कि मैं अब अपने को हिरासत में समझूं, अपने साथ चलने को कहा। हम तो जेल जाने के लिये कई दिन से लालायित ही हो रहे थे, यह समझते हुये भी कि हैदराबाद की पुलिस को, रेल के सैटफ़ार्म पर किसी को भी गिरफ्तार करने का अधिकार नहीं, हम सब प्रसन्नता के साथ उनके साथ हो लिये। सेटफ़ार्म से बाहर एक बस पर सवार कराके हमें पुलिस स्टेशन पर पहुंचाया गया। पुलिस स्टेशन के एक हाल में, जिसमें फ़र्श तक नहीं था, हम सबको बैठने को कहा गया। मैं अपने बिस्तरे के बुलँदे पर बैठ गया बाकी सब ज़मीन पर बैठ गये। वहां पुलिस ने, इस ख़्याल से कि दाख़िले के हुक्म को तोड़ने का मुक़दमा चलाने के लिये गवर्नमेन्ट की स्वीकारी अपेक्षित थी और वह शीघ्रता के साथ नहीं मिल सकती थी, हम पर जय बोलने, जुलूस निकालने आदि के नियमों के तोड़ने का अभियोग चलाया। जिसमें रत्ती भर भी सचाई नहीं थी। एक हिन्दु और एक मुसलमान पुलिस के पेटेंट गवाह थे। आगे भी सत्याग्रह के प्रायः सभी मुक़दमों में बराबर यही गवाह पेश होते रहे। उनकी गवाही के

बाद मुक़दमा चालान हुआ। चौथी और पांचवी फ़रवरी ३९ को पेशी हुई। हमने अपना वही बयान दे दियाजो पुलिस के सुपरिन्टेन्डेंट से प्लेटफ़ाम पर कहा था। ज़ाप्ते की अदालती खाने पुरी के बाद, हम सबको एक वर्ष की कड़ी सज़ा कर दी गई।

गुलबर्गा जेल में ६१ मास

हम जब चौथी फ़रवरी सायंकाल जेल में पहुँचे थे तो सबसे पहले हमारे सब के सीधे पैरों में एक एक लोहे का कड़ा डाल दिया गया। मेरे पांव कुछ बड़े थे इसलिये विशेष रीति से एक मोटा कड़ा जो वज़न में ½ सेर से कम न होगा मेरे पांव में डाला गया। उसके बाद एक बिस्तरा जो गूदड़ और रद्दीसूत से बनाया गया था और एक कम्बल हमें दिया गया। हमारा बिस्तरा ले लिया गया। मुझे दो दिन विचाराधीन क़ैदियों की बैठक में रहना पड़ा था। ६$\frac{२}{३९}$ को सज़ा मिल जाने पर जेल की एक लम्बी बैठक में, जिसमें १०० से कुछ अधिक क़ैदियों के रहने के नम्बर पड़े हुये थे, हमें रहने को जगह मिली। गुलबरगा जेल में सत्याग्रह का यह पहला जत्था था परन्तु हैदराबाद जेल से कुछेक आय क़ैदी यहां बदल कर आ गये थे उन्हीं में से एक ने अपने पास खिड़की के सामने मेरा बिस्तरा रखकर मेरे लिये जगह बना दी।

एक घटना

४ फ़रवरी की सायंकाल जब हम लोहे का कड़ा पहन कर विचाराधीन क़ैदियों की बारक में पहुँचे थे तो थोड़ी देर के

बाद एक वार्डर मेरे पास आया और कहा कि मुझे जेल के सुपरिंटडेन्ट साहिब बुलाते हैं। मैं चला गया। मुझे नहीं मालूम था कि यहां नङ्गा सिर रखना अपराध समझा जाता है। मैं जैसे सदैव नङ्गा सिर रखता था वैसे ही नंगे सिर उनके सामने चला गया। उन्होंने बहुत बुरी तरह से झिड़क कर कहा कि नंगे सिर क्यों आये हो ? मैंने उत्तर दे दिया कि हम सन्यासी हैं, सदैव सिर खुला रखते हैं। इस पर उन्होंने और भी अधिक झिड़क कर कहा कि जाओ सिर ढक के आओ। मैं वारक में चला आया। मेरे कपड़े सब जेल में दाखिल हो चुके थे, मेरे पास सिर ढकने के लिये कुछ नहीं था तब एक वार्डर ने अपना एक सफ़ेद रूमाल मुझे दिया कि इसे सिर पर डाललें। मैंने वैसा ही किया। तब सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कुछ मामूली बात की। इस बातचीत के बाद जब वैरक में अपनी जगह पर पहुँचा तब मैंने समझा कि मैं अब जेल में हूँ। सुपरिन्टेन्डेन्ट के दो बार झिड़कने पर भी जब मेरे हृदय में उनके लिये प्रतिहिंसा के भाव पैदा नहीं हुये तब मैंने ख्याल किया कि जेल में रहकर सत्य और अहिंसाव्रत का पालन कर सकूँगा।

जेल का कार्यक्रम

जेल का कार्यक्रम जिस पर कड़ी क़ैद वालों को चलना पड़ता था इस प्रकार था:—प्रातः काल ६ बजे वैरक का ताला खुलता था। उससे पहले वैरक में शौच, स्नान, सन्ध्या और कुछ अन्य क्रियाओं के बाद कुछ देर तक भ्रमण कर लिया

करता था। ६ से ७ बजे तक आपस में कुछ बातचीत करते थे। कभी कभी इसी बीच में जेल के कोई अधिकारी आ जाते थे तो उनसे भी बातचीत कर लेनी पड़ती थी। इसके बाद ७ बजे दिन का भोजन आजाता था। भोजन में दो ज्वार की रोटी और अत्यंत पतली दाल, जिसमें कोई साबित दाल ढूंढने से भी नहीं मिल सकती थी और कभी इसी प्रकार का बहुत पानी वाला शाक होता था। भोजन से निवृत्त होने पर ८ बजे से ४ बजे दिन तक काम का समय था। ठीक ८ बजे मैं अपने काम पर पहुँच जाता था। मुझे काम यह मिला था कि दो सूतों को मिला कर दुहरा किया जावे। यह दुहरा सूत निवाड़ बनाने के काम में आता था। शुरू में एक सेर सूत और कुछ दिन के बाद दो सेर सूत हम दुहरा कर दिया करते थे। दुहरा करने के लिये चरखा मिला हुआ था। रोज़ाना काम लिखा जाता था। आठ घंटे बराबर बैठकर काम करने से शरीर की बुरी हालत हो जाती थी। चार बजे, काम समाप्त करने के बाद बैरक में जाकर आधा घंटा लेटकर शरीर को शिथिल करने की क्रिया करलेने से, शरीर फिर काम देने के योग्य हो जाता था। ४ से ५ बजे तक छुट्टी रहती थी। मैं बाक़ी आधा घंटे में शौच आदि से निवृत्त हो लेता था। ५ और ६ बजे के बीच में फिर भोजन का समय था। भोजनोपरान्त ६ बजे सायंकाल फिर सब बैरक में गिनती के बाद चले जाते थे और बैरक प्रातःकाल तक के लिये बन्द हो जाती और ताला लग जाता था।

१½ रोटी प्रातः और एक रोटी सायंकाल खालिया करता था और इससे तृप्त और प्रसन्न रहता था। वस्त्र जो पहनने पड़ते थे उनमें पायजामा और कमर से बांधने के लिये उसी कपड़े का एक दुपट्टा और एक दुपल्लू टोपी थी। यही वस्त्र मैं पहनता था और जब कोई बड़ा अधिकारी जेल के निरीक्षणार्थ आता था तो गले में एक मोटे गोलाकार तार में लगी हुई काष्ट का एक छोटी सी तख्ती भी लटका लेनी पड़ती थी। १½ मास तक बराबर यही कर्यक्रम जारी रहा। इस बीच में काम के समय में जेल के सुपरिन्टेण्डेण्ट रोज़ाना आते थे और काम देख कर चले जाया करते थे। कभी कभी तअलुकेदार (District-officer) और सूबेदार (Commissioner) भी आ जाया करते थे। इनमें से जो भी आते थे यह प्रश्न प्रायः सभी करते थे कि यदि मैं अपने लिये कुछ रिआयत चाहता हूँ तो उनसे कह दूं, वे उसका मेरे लिये प्रबन्ध कर देंगे। परन्तु मेरा एक ही उत्तर सबके लिये यह होता था कि यदि कोई रिआयत सबके लिये हो तो मैं उसे क़बूल कर सकता हूं अन्यथा नहीं।

मुझे कुछ कार्य-क्रम बदलने के लिये मजबूर होना पड़ा

समाचार पत्रों के आन्दोलन को लक्ष्य में रखते हुये जेल के डैरेक्टर जनरल हालेन्स महोदय की आज्ञानुसार मेरे स्वास्थ्य की दैनिक रिपोर्ट गुलबरगा जेल से उनके पास जाया करती थी। मैं जब जेल मे दाखिल हुआ था तो मेरा वज़न १६६ पौंड था। परन्तु १ मास के बाद जब तोल हुई तो १६४ पौंड रह

गया। उसके बाद १५ दिन बीतने पर विशेष रीति से जो मेरा वज़न लिया गया तो १६१ पौंड रह गया। इस रिपोर्ट के पहुँचने के बाद डैरेक्टर साहिब ने अपने असिस्टेंट को गुलबरगा भेजा। उन्होंने जेल का निरीक्षण किया और मेरे पास भी आये। जब उनसे भी उनके पूछने पर मैंने अपने लिये कोई रिआयत लेने से इन्कार कर दिया तो उन्होंने और सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल ने भी नम्रता के साथ कहा कि चूंकि मेरा वज़न बराबर कम हो रहा है इसलिये मुझे डाक्टर की सम्मति (Medical adviee) पर चलना होगा। उन्होंने यह भी कहा कि मैं जेल के नियंत्रण में रहने का व्रत लिए हुये हूँ इसलिये मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। उन्होंने जैसे लहजे और जैसे शब्दों में इस भाव को प्रकट किया वह वास्तव में प्रशंसनीय था और मैंने समझा कि मुझे अपने को, उनकी बात स्वीकार करने के लिए वाधित समझना चाहिये तदनुकूल मैंने उनसे कह दिया कि मैं डाक्टरी सलाह (Medical advice) को मानूंगा। इस पर वे मुझे धन्यवाद देकर चले गये। उसके बाद जेल के डाक्टर ने कदाचित् उन्हीं की सलाह से, मेरे लिये निम्न नियमानुसार चलने का अदेश दिया:—(१) मैं अपने को आवश्यक कार्य करने से मुक्त समझूं, (२) मुझे अपने कपड़े पहनने और बिस्तरे बिछाने की इजाज़त है, (३) ज्वार की जगह गेहूं की रोटी मुझे मिला करेगी, (४) दूध और फल नियम पूर्वक प्रयोग में लाने चाहिये।

मैंने इस सबको स्वीकार करते हुये नम्रता के साथ एक

प्रार्थना की कि अन्य सत्याग्रहियों की भी इसी प्रकार जांच की जावे और यदि उनमें किसी परिवर्तन की जरूरत हो तो की जावे। जेल के अधिकारियों ने इसे स्वीकार कर लिया और २३ आदमियों के लिये उनके भोजनादि में परिवर्तन करने का आदेश दिया।

यद्यपि मैं काम से मुक्त कर दिया गया था परन्तु मैंने काम करना छोड़ा नहीं कुछ कम अवश्य कर दिया था।

इस बीच में यह देखकर कि मैं जेल के किसी छोटे से छोटे नियम का भी उल्लंघन नहीं करता, सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल का व्यवहार मेरे साथ बहुत अच्छा होगया था। वे प्रायः घंटा आध घंटा रोज़ाना जेल की बैरिक में आकर मेरे पास बैठा करते थे। जब गरमी अधिक पड़ने लगी तो उन्होंने तीन बैरिकों के सत्याग्रही कैदियों को बाहर खुले सेहन में सोने की इजाज़त देदी थी। ये तीनों बैरिकों के कैदी प्रायः मेरे आधीन समझे जाते थे। यदि इनमें से किसी की शिकायत, वार्डर या अन्य जेल कर्मचारियों को होती थी तो वे मेरे पास ही शिकायत करने आते थे और मैं सत्याग्रहियों को समझाकर वह शिकायत दूर करा दिया करता था।

अब सुपरिटेन्डेन्ट जेल का न केवल व्यवहार ही मेरे साथ अच्छा होगया था बल्कि उनके हृदय में मेरे लिये श्रद्धा के भाव भी पैदा हो गये थे। एक दिन की घटना है कि वे अपने समस्त छोटे छोटे बच्चे और बच्चियों को मेरे पास जेल में लाये और

कहा कि इनके सिरों पर हाथ रखकर इन्हें आशीर्वाद दे देवें। मैंने उन्हें प्रेम-पूर्वक आशीर्वाद दे दिया।

सुलह की बात चीत

३० मार्च १९३९ ई० को पुलिस और जेल के डैरेक्टर हालेन्स महोदय गुलबरगा आये और मुझे तथा अन्य दो डिक्टेटरों को बुलाकर सुलह की बात चीत की। उन्होंने, जब मैं कमरे में दाखिल ही हुआ था तो मुझे संबोधन करके कहा कि इस प्रकार मुझे जेल में देखकर उन्हें रोना आता है और आँखों से आंसू निकलने लगते हैं। उन्होंने प्रबल इच्छा प्रकट की कि सत्याग्रह समाप्त कर दिया जावे और कहा कि जब स्टेट उन सभी मतालिबों को पूरा करना स्वीकार करती है तो फिर सत्याग्रह क्यों जारी रहना चाहिये? मैंने उन्हें उत्तर दिया कि जेल में दाखिल होजाने के बाद अब हमारा अधिकार सत्याग्रह बंद करने न करने के संबंध में कुछ नहीं रहा। सार्वदेशिक सभा के कार्य-कर्ता ही यह काम कर सकते हैं। अंत में हमारे और उनके बीच में तै यह हुआ कि हैदराबाद में एक कान्फ्रेंस की जावे। सार्व० सभा के कार्य-कर्ता भी वहाँ आजावें। हम लोगों को गुलबरगा से वे हैदराबाद बुला लेंगे और वे तथा कुछेक अन्य सज्जन राज्य के प्रतिनिधि रूप में उसमें शरीक हो जावेंगे। उस कान्फ्रेन्स में सब बातें तै करके सत्याग्रह बंद कर दिया जावे। उन्होंने यह भी कहा कि ये बातें अभी बिलकुल गुप्त रक्खी जावें और इस संबंध में सब पत्र व्यवहार गुलबरगा जेल के

सुपरिन्टेन्डेन्ट के नाम पर किया जावे। इन बातों के तै हो जाने पर शोलपुर से श्री स्वामी स्वतंत्रानन्दजी को बुलाकर वे सब बातें समझा दी गईं और किस प्रकार यह कार्य करना चाहिये यह भी बतला दिया गया। इस संबंध में आगे जो कार्य हुआ वह इस प्रकार नहीं हुआ जैसा कि नीतिज्ञों को करना चाहिये था। इसलिये जो बातें गुप्त रहनी चाहिये थीं वे पबलिक की वस्तु बन गईं। फल स्वरूप यह यत्न फ़ेल हुआ और बुरी तरह से फ़ेल हुआ।

सेन्ट्रल जेल से हमारा स्थान परिवर्तन

अस्तु। इसके बाद ३० अप्रैल ३९ तक मैं गुलबरगा जेल की बैरक में, यथा पूर्व, रहा और मामूली काम वहाँ की मर्यादा-नुसार करता रहा। इस बीच में कई अन्य डिक्टेटरों के साथ सत्याग्रहियों के बड़े बड़े जत्थे आचुके थे। इससे जहाँ जेल में चहल पहल बढ़ी वहाँ उसके साथ कुछ अशान्ति की मात्रा भी बढ़ने लगी। जेल के अधिकारियों ने उस समय यह उचित समझा कि प्रभावशाली डिक्टेटरों को सत्याग्रहियों से अलग रक्खें। इसी नीति के अनुसार राजगुरु पं० धुरेन्द्र शास्त्री और कुंवर चांदकरण शारदा तो अन्य जेलों को बदल दिये गये मुझे और ला० खुशहालचंद को रहने तो गुलबरगा ही दिया गया परन्तु तजबीज़ यह की कि जेल की इमारत से पृथक् कहीं रक्खा जावे क्योंकि जब तक हम सेंन्ट्रल जेल की बैरकों में रहे तब तक वहाँ सत्याग्रहियों की संख्या कम करने के जितने भी

यत्न जेल कर्मचारियों ने किये वे प्रायः फेल ही होते रहे। हमारे लिये गुलबरगा के वाटर वर्क्स के करीब एक बंगला किराये पर लिया गया। यह जेल से एक मील के फासिले पर था। अच्छी और खुली जगह पर था। हवा तो वहाँ प्रति समय बड़ी तेजी से चलती रहती थी, इसलिये उस बंगले को हम सब हवा घर कहा करते थे। ३० अप्रैल को इस बंगले में हम सब पहुंच गये थे और सत्याग्रह की समाप्ति तक वहीं रहे।

सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल तो रोजाना वहाँ आया करते थे। कभी कभी तअल्लुकेदार और सूबेदार भी आ जाया करते थे। यहाँ पुलिस के सिपाहियों का बंगले के चारों ओर पहरा रहा करता था। हम लोग बंगले के अहाते से बाहर नहीं जा सकते थे। इस नये स्थान में दो सत्याग्रही मेरी और ला० खुशालचंद की सेवा के लिये भेजे गये थे। इन तीन के सिवा दो सत्याग्रही भोजन बनाने के लिये आये थे। एक व्यक्ति पानी लाने और बरतन आदि साफ करने के लिये नियत था। रोजाना दूध और सब्जी जेल से आया करती थी। हमको यह भी इजाजत थी कि अपने पैसों से कोई चीज वहाँ, जेल कर्मचारियों द्वारा मंगा सकते थे। आठवें दिन भोजन सामग्री जेल से आ जाया करती थी। मेरा कार्य-क्रम इस नये स्थान पर इस प्रकार थाः—

४ बजे से ७ बजे तक—दैनिक नित्य कर्म
७ „ से ११ „ —छान्दोग्योपनिषद् की टीका लिखी जाती थी
११ „ से १ „ —भोजन तथा विश्राम

१ बजे से ३ बजे	—चरखा कातना
३ ,, से ४½ ,,	—अखबार पढ़ना तथा अन्य ग्रंथों का स्वाध्याय
४½ ,, से ५ ,,	—उपनिषद् की कथा
५ ,, से ७ ,,	—राज्य कर्मचारियों से भेंट और वार्तालाप
७ ,, से ६ ,,	—भोजन आदि
६ ,, से ४ ,,	—शयन।

यहाँ लिखने-पढ़ने आदि का सुभीता था इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि इस समय नवीं छान्दोग्योपनिषद् की टीका का प्रारंभ करके समाप्त करने का यत्न किया जावे। प्रसन्नता की बात है कि इस उद्योग में सफलता हुई और जेल छोड़ने से पहले वह समाप्त होगई और अब तो छपकर पाठकों के हाथों में भी पहुंच चुकी है।

बम्बई का दैनिक अँगरेजी पत्र "टाइम्स आव इन्डिया" हमें हमारे खरचे से देखने के लिए मिल जाया करता था।

एक षड्यंत्र

जब हम जेल की इमारत में थे और जब जेल से बाहर के बंगले में थे तब ये खबरें हमारे पास आती रहती थीं कि हमारे बध के लिये षड् यन्त्र रचा जारहा है परन्तु हम और हमारे साथी इतनी सावधानी से रहते थे कि हम पर वार करने का कोई साहस ही नहीं कर सका।

सत्याग्रहियों से भेंट

जेल से बाहर बंगले में आने के बाद दोबार हम जेल में सत्याग्रहियों से मिलने के लिये जा पाये थे। उसके बाद हमारा जेल जाना बन्द होगया। ला० खुशहालचन्द के जिम्मे यह इलज़ाम, जेल के अधिकारियों ने लगाया कि वे जेल जाकर सत्याग्रहियों से, भूख हड़ताल कराने के लिये, काना फूंसी किया करते हैं खुशहालचन्द को यह बात स्वीकार न थी परन्तु इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि ला० खुशहालचन्द और जेल के अधिकारियों के बीच में, सदैव तनातनी रहा करती थी और मुख्य रीति से यही कारण जेल जाने में बन्दिश लगने का हुआ।

सत्याग्रहियों की मृत्यु

अस्तु:। इसके बाद सत्याग्रहियों से हमारी भेंट स्मशान में हुआ करती थी। जब किसी सत्याग्रही का देहावसान हुआ करता था तो उसकी अन्त्येष्टि में शरीक होने के लिये मैं तथा ला० खुशहालचन्द जी अवश्य बुलाये जाया करते थे।

आम तौर से मेरे साथ वार्डर से लेकर सुपरिंटेन्डेन्ट जेल तथा जेलसे बाहर के उच्चाधिकारियों, सुपरिंटेंडेंट पुलिस, तअल्लुकेदार और कमिश्नर सभी का व्यवहार अच्छा था, इस लिये मैं उन सबका कृतज्ञ हूँ।

नकली शङ्कराचार्य्य

जब मैं सेन्ट्रल जेलकी इमारत ही में था तो एक दिन

सायंकाल मेरे पास जेलका चपरासी आया और उसने आकर कहा कि कोई शंकराचार्य्य आये हैं और वे मुझसे मिलना चाहते हैं। उन्हीं से भेट करने के लिये सुपरिन्टेन्डेण्ट जेल ने मुझे बुलाया है। मैं जब गया तो वे उठकर बड़े तपाक से मिले, और मुझसे तथा ला० खुशहालचन्द जी से देर तक बात करते रहे। उसके बाद वे फिर ८ बजे रात के आये और ११½ बजे रात तक बात करते रहे। काम की बातें थोड़ी और व्यर्थ की बहुत थीं। रात्रि की बात चीत करने में मेरे और खुशहालचदजी के सिवा पं० धुरेन्द्र शास्त्री भी शामिल थे। उन्होंने जो कुछ कहा उसका सार यह थाः—

(१) हैदराबाद राज्य रजामन्दी के साथ सत्याग्रह समाप्त करना चाहता है।

(२) सरअकबर हैदरी सब सत्याग्रहियों को छोड़ देना चाहते हैं वे और बात चीत करने के लिये हम लोगों को हैदराबाद बुलाना चाहते हैं।

इस भले आदमी ने हमसे तो ये बातें कीं परन्तु गुलबरगा के सूबेदार आदि से जाकर कह दिया कि हम लोग पुनः सत्याग्रह न करने और घर जाने के प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर कर देने के लिये रजामन्द हैं और यह भी कि हम अपने अनुयाई सत्याग्रहियों को प्रेरणा करेंगे कि वे भी इस फ़ार्म पर हस्ताक्षर करके घर चले जावें। उन्होंने सूबेदार से भी कहा कि वे इन बातों की रिपोर्ट सर अकबर हैदरी को करदेवें परन्तु सूबेदार

अनुभवी व्यक्ति थे उन्होंने यह आवश्यक समझा कि वे इन बातों की, हमसे तसदीक किये बिना, कुछ न करें। दूसरे दिन प्रातः काल जेल में आकर सूबेदार ने हमसे बातचीत की। शंकराचार्य भी साथ थे परन्तु अलग खड़े हो गये थे। बातचीत करने पर सूबेदार को मालूम होगया कि जो बातें हमारे सम्बन्ध में शंकराचार्य ने उनसे की हैं वे सब झूठ हैं। शंकराचार्य नामधारी व्यक्ति के इस अनाचार को देखकर हमें सन्देह हो गया कि यह कोई ठग है और सत्याग्रह की आड़ में वह स्टेट से कुछ ऐंठना चाहता है। थोड़े दिन के बाद ही, आर्य सत्याग्रह समिति शोलापुर के प्रकाशन विभाग ने छाप दिया कि यह (शंकराचार्य) असल में एक मदरासी वकील था। पहले इसने अलमोड़ा जाकर कैलाश और मानसरोवर की यात्रा करने का आन्दोलन किया और इस काम के लिये कुछ धन भी जमा किया और अन्त में आठ दस हज़ार रुपये लेकर अलमोड़े से भाग गया। अब जब उसने देखा कि सत्याग्रह आन्दोलन ज़ोर के साथ चल रहा है इससे भी कुछ धन कमाने के लिये, उसने शंकराचार्य का रूप धारण किया और स्टेट में तथा हमारे पास आया।

एक और ठग

एक और व्यक्ति साधू के भेष में, सत्याग्रही बनकर गुलबरगा पहुँचा था। उसने अपना नाम पुरुषोत्तम गिरि और अपने को आर्य समाज बरेली का लीडर प्रकट किया

था। उसने तअल्लुकेदार से मिलकर कुछ धन ऐंठा और और एक उर्दू की विज्ञप्ति सत्याग्रह के विरुद्ध छपवाकर बांटी थीं। उपर्युक्त प्रकाशन विभाग ने उसकी भी कलई खोलदी और प्रकट कर दिया कि वह ग्वालियर का एक मुसलमान था और मसनूई साधू बना हुआ था। इस प्रकार से अनेक लोगों ने हैदराबाद राज्य के कर्मचारियों को यथा सम्भव खूब ठगा।

गुलबरगा का ज़लवायु

मैं जब गुलबरगा जेल में आया था तभी से मैंने अनुभव किया कि वहां का जल मेरे अनुकूल नहीं है। वहां आमतौर से बन्द तालाबों का जल पिया जाता है और मैं ऐसे जल पीने का अभ्यासी न था। वहां की गरमी भी मेरे लिये असह्य थी। मैं लगातार २० वर्ष से गरमियों में अपनी पहाड़ी कुटी (नारायण आश्रम, रामगढ़) में रहा करता था इसलिये यह गरमी मुझे और भी अधिक कष्टप्रद सिद्ध हुई। अप्रैल तक तो मैंने उस गरमी और प्रतिकूल जल को सहन किया। वहां गरमी मार्च ही से अच्छी मात्रा में पड़ने लगती है और सरदी दिसम्बर तथा जनवरी में भी बहुत मामूली पड़ती है। मई की गरमी शरीर के लिये असह्य सिद्ध हुई। उस निकृष्ट गरमी के प्रभाव से तमाम शरीर में फुंसियां निकल आईं। हाथ, पांव और सिर बुरी तरह से इन फुंसियों के शिकार हुये। मई का सारा महीना इन फुंसियों के कष्ट और उनकी चिकित्सा की

चिन्ता में समाप्त हुआ। जून के शुरू होते ही जब पहली वर्षा हुई तो उनके साथ ही ऋतु परिवर्तन हो गया; गरमी का प्रकोप समाप्त हुआ और सरदी पड़नी शुरू हो गई। फुंसियां भी समाप्त हो गईं। जब मैं इन फुंसियों के कष्ट से पीड़ित था, उस बीच की दो घटनायें उल्लेखनीय हैं:—

(१) वहां के तअल्लुकेदार ने स्वयं भी एक से अधिक बार कहा और वहां के जेल के सुपरिन्टेन्डेण्ट से भी कहलवाया कि मैं दो मास की छुट्टी लेकर नैनीताल जाकर वहां की अपनी कुटि में रहूँ; और अच्छा होने पर फिर जेल में आ जाऊँ। इससे उनका बाहरी मतलब तो मेरे साथ सहानुभूति प्रदर्शन करना था परन्तु आन्तरिक उद्देश्य यह था कि इस प्रकार मेरे जेल से चले जाने से सत्याग्रह की हवा उखड़ जायगी और उन्हें प्रत्येक सत्याग्रही से यह कहने का अवसर प्राप्त हो जायगा कि 'जब तुम्हारा नेता ही चला गया तो फिर तुम क्यों जेल में सड़ते हो।" मैं उनकी इस होशियारी को खूब समझता था। इसलिये मेरा निश्चय था, कि यदि इन कष्टों से मर भी जाना पड़े तो अच्छा है परन्तु जेल से उपर्युक्त भांति जाना अच्छा नहीं। इसलिये यह प्रस्ताव जब भी और जिस रूप में भी आया मैंने अस्वीकार कर दिया। एक बार तअल्लुक़ेदार ने बार बार के मेरे इस निषेध परक उत्तर से, अप्रसन्न होकर कहा कि वे जबरन अपने सिपाहियों के साथ मुझे नैनीताल पहुंचवा देंगे। मैंने उत्तर दिया कि वे ऐसा

नहीं कर सकते क्योंकि नैनीताल उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यदि उन्होंने ऐसा करने की ग़लती भी की तो मैं गुलबरगा से चलकर शोलापुर पहुँचते ही उनके सिपाहियों को तो ब्रिटिश पुलिस के द्वारा "हब्सबेजा" (342 J. P. C.) के इलज़ाम में गिरफ़्तार कराके, अपने को फिर गुलबरगा लौट आने के लिये स्वतंत्र कर लूंगा। इस प्रकार उत्तर पाने के बाद, लोगों ने नैनीताल जाने के प्रकरण को तब कहीं छोड़ा।

मुझे यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि ख़ास ख़ास व्यक्तियों को छोड़ कर, आमतौर से हैदराबाद राज्य के निम्न श्रेणी के राज्य कर्मचारी अयोग्य हैं और पुलिस के अहलकार तो बहुत ही अयोग्य हैं। उनकी सारी योग्यता उर्दू का मामूली सा ज्ञान होता है। अच्छी उर्दू भी उन्हें नहीं आती।

(२) मेरे शरीर में हुई फुंसियों की चिकित्सा पहले गुलबरगा के सिविल हौस्पीटल सिविल सरजन की देख रेख में, जो एक महाराष्ट्र थे, होती थी। ये बड़े सज्जन और योग्य चिकित्सक थे और बड़ी सहानुभूति से चिकित्सा करते थे। लगभग फुन्सियों के अच्छा होने पर, जेल की आबादी बढ़ जाने से, जेल के लिये एक दूसरे सिविल सरजन नियत होकर आये थे। इनमें मनुष्यत्व बहुत थोड़ा था, इसीलिये रोगियों के साथ कठोरता का व्यवहार करते थे। अन्त में उन्हीं की देख रेख में मेरी चिकित्सा हुई परन्तु जैसा कि कहा जा चुका है मेरी फुन्सियों के अच्छा हो जाने का असली कारण ऋतु परिवर्तन ही था।

हार्लेस साहिब का पुनरागमन

जुलाई मास के प्रारम्भ में हार्लेस फिर गुलबरगा आये और हमारे पास भी आये। वे वहाँ लगभग ३ घण्टे ठहरे थे। इस बीच में बराबर सत्याग्रह की ही बातचीत करते रहे। बातचीत का निचोड़ इतना ही था कि सत्याग्रह बन्द होना चाहिये। ला० खुशहालचन्द जी ने उनसे कह दिया कि सत्याग्रह बन्द कराना (मेरी ओर संकेत करके) इनके हाथ में है। इस पर उनके पूछने पर, मैंने उत्तर दिया कि असल में सत्याग्रह का बन्द करना न करना तो सार्वदेशिक सभा के हाथ में है; परन्तु बाबू घनश्यामसिंह गुप्त और ला० देशबन्धु जी गुप्त यहां आसकें तो उनसे इस सम्बन्ध में बातचीत की जा सकती है। इस पर घनश्यामसिंह जी का नाम सुनते ही उन्होंने (हार्लेस साहिब) मुंह फुला सा लिया और कहा कि उन्हें मैं अपने अधिकार से कभी नहीं बुलाऊंगा। देशबन्धु जी को जरूर बुला दूंगा। लेकिन यदि मैं घनश्यामसिंह के बुलाने पर आग्रह करूंगा तो यह बात वे गवर्नमेंट को लिख देवेंगे। यदि गवर्नमेंट चाहेगी तो बुला देगी। इस पर तल्लुकेदार साहिब, ने कहा, (यह सज्जन हार्लेस साहिब के साथ ही आये थे) कि घनश्यामसिंहजी के बुलाने से तो बना हुआ काम भी बिगड़ जायगा। इतनी बातें होने पर मैंने हार्लेस साहिब को अन्तिम उत्तर यह दिया कि मैं इस मामले को सोचूंगा और फिर जिसका बुलाना अनिवार्य समझा जायगा उसके बुलाने के लिये उन्हें लिख दूंगा या ताल्लुक़ेदार साहिब से कह दूंगा।

सत्याग्रह की समाप्ति

अभी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया जा सका था कि म० देशबन्धु जी का एक तार ३ अगस्त ३९ को नागपुर से आया कि वे हैदराबाद जाते हैं और वहां होकर वे मुझे भी गुलबर्गा आकर मिलेंगे। ६ अगस्त को ला० देशबन्धु जी हमारे बंगले में, सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के साथ आये और एकांत में लगभग दो घण्टे बातचीत की। खुशहाल चन्द जी भी मौजूद थे। उन्होंने एक ड्राफ्ट भी दिखलाया था जो उनसे सर अकबर हैदरी की बातचीत होने के बाद बनाया गया था परन्तु उस पर अब भी पुनः दृष्टि करना बाकी था। इस बातचीत का सार इतना था कि हैदराबाद की गवर्नमेन्ट ने जो सुधार देने की घोषणा १९ जुलाई १९३९ ई० को की थी उसका, गवर्नमेन्ट की ओर से, इस प्रकार स्पष्टी करण, कर दिया जावेगा जिससे आर्य्य समाज की सब मांगें पूरी हो जावेंगी। हमने उत्तर देदिया कि स्पष्टीकरण से, जो हैदराबाद की गवर्नमेन्ट करेगी, यदि सार्वदेशिक सभा सन्तुष्ट, हो तो बेशक सत्याग्रह बन्द कर दिया जावे। हम इस प्रकार सत्याग्रह के बन्द हो जाने से सन्तुष्ट होंगे। ला० देशबन्धु जी ने अपना प्रोग्राम बतलाया कि वे कल ७ अगस्त को फिर हैदराबाद जावेंगे और स्पष्टी करण का अन्तिम रूप देखने के बाद कल ही अंतरंग सभा में शरीक होने के लिये नागपुर चले जावेंगे। ८ अगस्त ३९ को सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा नागपुर में होने वाली थी जिसमें अन्य भी अनेक

सज्जन निमन्त्रित किये गये थे। इस अंतरङ्ग सभा में सत्याग्रह के भाग्य का निपटारा होने वाला था। ला० देशबन्धु जी ने, रुख़सत होने से पहले इच्छा प्रकट की कि जो उत्तर मैंने उन्हें दिया है वह एक तार द्वारा सार्वदेशिक सभा के मन्त्री को भी, नागपुर भेज दिया जावे जिससे हमारी सम्मति सीधी उन्हें प्राप्त होजावे तदनुसार उनके जाने के बाद, नागपुर अपेक्षित तार भेज दिया गया। नवीं अगस्त को प्रातःकाल ही सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल मेरे पास आये और एक तार सार्वदेशिक सभा का जो मेरे नाम था, मुझे दिया, उसमें लिखा था कि प्रशंसित सभा ने, अपनी ८ अगस्त १९३९ की बैठक में आर्य्य समाज की मांग पूरी हुई देखकर निश्चय कर दिया कि सत्याग्रह बंद कर दिया जावे। यह तार सभी सत्याग्रहियों को सुना दिया गया।

एक और घटना

सुपरिन्टेन्डेण्ट जेल के पास एक तार और भी था वह उन्होंने मुझे एकान्त में लेजाकर दिखलाया। यह तार हालेंस साहिब डैरेक्टर जेल का था। उस तार में लिखा था कि डाक्टर खत्री सिविल सरजन की सिफ़ारिश पर, सेहत ख़राब होने के कारण, मुझे जेल से फ़ौरन छोड़ दिया जावे। मैंने तार देखते ही कह दिया कि डाक्टर खत्री की यह बात झूठ है कि मेरी सेहत ख़राब है और इच्छा प्रकट की कि मैं हालेन्स साहिब को लिखना चाहता हूं कि वे मेरे ख़रचे से बृटिश इन्डिया से एक सिविल सरजन को बुलाकर मेरे सेहत की जांच करावें। तब डाक्टर खत्री के लेख की क़लई खुल जावेगी।

इस पर सुपरिन्टेन्डेण्ट जेल ने शरमाते हुये कहा कि ऐसा नहीं करना चाहिये। और यह भी कहा कि यदि मैं जेल से नहीं जाना चाहता हूं ता मैं एक चिट्ठी उनके नाम लिख दूं कि सत्याग्रहियों की आम रिहाई होने पर उनके साथ ही मैं जाना चाहता हूं। उससे पहले नहीं जाना चाहता हूँ और उन्होंने वायदा किया कि ऐसा करने पर वे मुझे जेल से पहले नहीं छोड़ेंगे। मैंने अपेक्षित चिट्ठी लिख दी और नतीजा यह हुआ कि मैं यथा पूर्व अन्तिम रिहाई तक जेल में रहा और डाक्टर खत्री की सिफ़ारिश रद्दी के टोकरे में डाल दी गई।

जेल से रिहाई

१५ अगस्त ३९ ई० को हैदराबाद गवर्नमेन्ट का तार आया कि १७ अगस्त को विशेष भोजन देकर सब सत्याग्रही रिहा कर दिये जावें। १७ अगस्त को ३ बजे दिन के, जेल को हमेशा के लिये छोड़ कर सुपरिन्टेन्डेण्ट जेल के बंगले पर आये, वहां से अपना प्राप्तव्य धन लेकर गुलबरगा स्टेशन पर पहुँचा। मेरे साथ ला० खुशालचन्द और दो सत्याग्रही और थे जो हमारी सेवा के लिये हमारे साथ रहते थे। स्टेशन पर हमें विदाई देने के लिये बे हिसाब भीड़ थी। देवियों ने आरती उतारी, पुरुषों ने फोटो लिये। निदान जो प्रेम चलते समय गुलबरगा निवासियों ने दिखलाया वह भुलाया नहीं जा सकता। हम लोगों के फ़ोटो लेने वालों में गुलबरगा पुलिस के सुपरिन्टेन्डेण्ट भी थे जिन्होंने ४ फरवरी को इसी स्टेशन पर हमें गिरफ़्तार किया था। उन्होंने मेरे और खुशालचन्द जी के

कई फोटो लिये। एक या दो ग्रूप में वे स्वयं भी शामिल हुये। गुलबरगा जेल के सुपरिन्टेन्डेण्ट भी मौजूद थे। सच तो यह है कि इन सब से विदा होते हुये मुझे दुःख हुआ। ६½ मास जिनके साथ रहना सहना पड़ा हो और जो सदैव दुःख सुख में हमारे शरीक रहे हों, उन्हें अचानक छोड़ते हुये, कैसे सम्भव था कि दुःख न होता। अस्तु, इसी दुःख-सुख के सम्मिश्रण में हम मदरास मेल से गुलबरगा से बिदा हुये।

शोलापुर में पुनरागमन

६ बजे सायंकाल हमारी गाड़ी शोलापुर पहुँची। यहां भी स्टेशन और स्टेशन का विस्तृत अहाता, शोलापुर निवासियों से भरा था जो हमारे स्वागत के लिये आये थे। ट्रेन से उतरते ही स्टेशन नमस्ते और जय ध्वनि से गूंज उठा। फूल मालाओं के ढेर लग गये। लगभग पौन घण्टा इस आवभगत में ख़र्च होगया। इसके बाद कुनाडे जी और कुछेक शोलापुर के और जिम्मेदार पुरुषों ने मुझ से कहा कि वे कुछ बात मुझ से एकान्त में करना चाहते हैं। मैंने कहा कि प्लेटफ़ार्म पर तो बात करने का कौन अवसर देगा किसी वेटिंग रूम में घुस चलो वहां बात कर लेंगे।

शोलापुर में मेरे दाख़िले का निषेध

एक वेटिंग रूम में पहुंचने पर मुझे बतलाया गया कि शोलापुरके मजिस्ट्रेटने दो हुक्म पहले ही से जारी कर रक्खे हैं:—

(१) दफ़ै १४४ का नोटिस तामील करके यह पाबन्दी

लगाई गई है कि हमारे शोलापुर आने पर कोई जुलूस न निकाला जावे।

(२) मेरा शोलापुर में दाखिला निषिद्ध ठहराया गया है। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि जुलूस सम्बन्धी जिलाधीश की आज्ञा तो मान ली क्योंकि उसका सम्बन्ध बहुतों से है परन्तु मेरे शोलापुर जाने का प्रभाव केवल मुझ पर पड़ेगा, इसलिये इस सम्बन्ध में मेरा निश्चय यह है कि मैं जिलाधीश की आज्ञा भंग करके जरूर शोलापुर में प्रवेश करूँगा। यदि जिलाधीश चाहेंगे तो मुझे गिरफ़तार कर लेंगे, मैं दोचार महीने उनके जेल में भीरह लूँगा। मेरे इस उत्तर से शोलापुर के सभी समझदार पुरुष सन्तुष्ट हुये और मैं तथा खुशालचन्द जी एक मोटर मेंसवार होकर शहर की ओर चले। कहने को तो जुलूस नहीं था परन्तु स्टेशन से निवास स्थान तक दो मील का फ़ासिला तै करने में हमें चार घण्टे लग गये। चार चार दस दस क़दम चलने के बाद मोटर फूलमाला पहनाने के लिये रोकी जाती रही। तमाम रास्ते में बड़े बड़े दरवाजे बनाकर सजाये गये थे और तमाम बाजार रोशनी तथा अन्य सजावट के सामानों से सुसज्जित था। लगभग १० बजे रात के हम कुनाडे जी के स्थान अर्थात् अपनी पुरानी ठहरने की जगह पर पहुंचे।

शोलापुर में स्वागत समारोह कर्त्री सभा

१८ अगस्त ३६ की रात्रि में स्वागत समारोह कर्त्री सभा

शोलापुर की ओर से, एक विशाल सभा का आयोजन, लिगायतों के मन्दिर के बृहद् हाल में हुआ। मेरे और खुशहालचन्द जी के सिवा दो डिक्टेटर पं० धुरेन्द्र शास्त्री और कुंवर चांदकरण शारदा भी अन्य जेलोंसे छूटकर आगये थे। शोलापुर के नेताओं ने सत्याग्रह की सफलता पर हर्ष प्रकट करते हुये हम सबको बधाई दी, उसके बाद हम सबने अपने अपने संक्षिप्त भाषणों में जहां सत्याग्रह के परिणाम पर सन्तोष प्रकट किया वहां शोलापुर निवासियों को, उनकी सहायता के लिये धन्यवाद दिया। सभा को इस प्रकार विसर्जित करके हम सभी रायचूर पसेंजर से बम्बई के लिये चल पड़े।

पूना और बम्बई

पूना में गाड़ी बदलनी थी इसलिये प्रातः ६ बजे पूना स्टेशन पर उतरे। वहां पूना के आर्य्य भाई मौजूद थे। उन्होंने हम सबका स्वागत करते हुये सफलता के लिये बधाई दी, उसके बाद पूना मेल से हमारी पार्टी बम्बई के लिये चल पड़ी। १० बजे दिनके बम्बई पहुँचे। स्टेशन पर बहु संख्या में बम्बई निवासी स्वागत करने के लिये मौजूद थे। इस प्रारम्भिक शिष्टाचार से निवृत्त होकर शहर की ओर सब चल दिये और आर्य्यसमाज के विशाल भवन में, शहर पहुँच कर, निवास किया। रात्रि में समुद्र के किनारे चौपाटी पर एक महती सभा का संगठन हुआ जिसमें बम्बई के गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे भीड़का तो कुछ ठिकाना ही न था। वहां म० कृष्ण भी औरङ्गा-

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी
(सन् १९४१ ई० में)

बाद जेल से छूटकर पहुँच गये थे। पं० वेदव्रत वानप्रस्थ पटना को छोड़कर बाकी सब डिक्टेटर इस सभा में सम्मिलित थे। मामूली व्याख्यानों के सिवा सत्याग्रह समिति बम्बई ने २५००) की थैली हैदराबाद सम्बन्धी कार्य्यों के लिये, मुझे भेंट की जो सा० दे० सभा के कोष में पहुंचा दिये गये।

बम्बई के अन्य समाजों में भाग लिया गया

२० अगस्त को प्रातः काल दादर और एक और नये स्थापित समाज में शरीक होकर व्याख्यान दिये और विशेष निमन्त्रण पर भोजन एक विशेष स्थान पर किया गया। रात्रि में बम्बई मेलमें झांसी के लिये यात्रा कीगई, रास्ते में मन्माड़, भुसावल, भूपाल, बीना, और ललितपुर आदि स्टेशनों पर जहां जहां मेल ठहरा प्रायः सभी स्थानों के भाई बहु संख्या में स्टेशनों पर स्वागत के लिये मौजूद मिले। तमाम रात इन्हीं स्वागतों में बीती। कोई भी हममें से सो नहीं सका।

झांसी में स्वागत समारोह

इस प्रकार रतजगा करते और आर्य्य भाइयों से मिलते मिलाते, २१ अगस्त को ७½ बजे दिनके झांसी पहुँचे। सत्याग्रह के प्रसंग में कुछेक समाजों ने इतने उत्साह और हौसले के साथ सार्वदेशिक सभा को सहयोग दिया था जिसका उदाहरण कठिनता से कहीं ढूंढ़ा जा सकता है। झांसी उन समाजों में से एक था। स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही प्लेटफ़ार्म पर उपस्थित सहस्रों स्त्री पुरुषों की जय ध्वनि से स्टेशन गूंज उठा।

फूल मालाओं के ढेर लग गये। हमारी पार्टी एक बड़े शानदार जुलूस के साथ, निवास स्थान तक पहुंचाई गई। बाजार जो रास्ते में जुलूस के पड़ते थे, भली भांति सजाये गये थे। तीसरे पहर के बाद हम सब उस सभा में शरीक हुये जो स्वागत के लिये, बहुत बड़े पैमाने पर संगठित की गई थी। सभी डिक्टेटरों को अभिनन्दन पत्र दिये गये, उसके बाद स्थानिकपुरुषों के भाषणों के बाद डिक्टेटरों ने, स्थानिक समाज नगर निवासी और उनके मुख्य कार्य-कर्ताओं को, उनके महान् सहयोग और उत्साह पूर्ण कार्य को प्रशंसनीय और अनुकरणीय प्रकट करते हुये उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया। उसके बाद साधारण सा विश्राम लेने और सूक्ष्माहार करने के बाद, रात्रि में हमारी पार्टी ने देहली के लिये, पेशावर ऐक्सप्रेस से प्रस्थान किया। इस रात्रि में भी कोई एक मिनट के लिये भी नहीं सो सका। ग्वालियर, मुरेना, धौलपुर, मथुरा, कोसी, पलवल, फरीदाबाद, न्यू देहली के स्टेशनों पर बराबर आर्य भाई मिलते और स्वागत के लिये जगाते रहे। अनेक स्टेशनों पर गाड़ी को भीड़ के कारण कुछ अधिक देर तक ठहराना पड़ा। जैसे मथुरा और फरीदाबाद आदि में। हम यहाँ रेल के कर्मचारियों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने जनता की इच्छा का मान करते हुये, नियमित समय से कुछ अधिक देर तक रेल को स्टेशनों पर ठहराया। ट्रेन के कहीं कहीं कुछ अधिक ठहराने का कारण केवल यह था कि वहाँ के आर्य समाजों को, उसी थोड़े समय में अभिनन्दन पत्र देने थे।

फ़रीदाबाद में, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के अध्यापक और ब्रह्मचारी स्टेशन पर मौजूद थे। ये सब म० गोपालजी मुख्याधिष्ठाता की अध्यक्षता में, रात ही में १०, १२ मील की यात्रा करके तुग़लक़-बाद से फ़रीदाबाद आये हुये थे। इन्होंने अभिनन्दन पत्र दिया। उत्तर में मैंने ब्रह्मचारी और अध्यापक वर्ग के इस कष्ट के सहने की प्रशंसा करते हुये, उन सबको धन्यवाद दिया।

देहली में हमारी पार्टी का आगमन

२२ अगस्त ३६ को ट्रेन लेट होती हुई ७½ बजे प्रातः काल के कुछ बाद ही देहली जंकशन पर पहुँची। देहली तो सार्व-देशिक सभा का मुख्य स्थान और आर्यसमाजों के कर्तृत्व का प्रायः केन्द्र बन चुका है। प्लेटफ़ार्म और स्टेशन के अहाते की भीड़ का क्या ठिकाना था। देहली के छोटे और बड़े सभी श्रेणियों के स्त्री पुरुषों से स्टेशन भरा हुआ था। मैं एक वर्ष के बाद हैदराबाद का कार्य सफलता के साथ समाप्त करके, देहली लौटा था। फिर मैं तनहा नहीं था बल्कि बिजयता सर्वाधिकारियों का एक बैच भी था। इसलिये देहली वासियों में प्रसन्नता का होना स्वाभाविक था। उनके स्वागत के प्रबध को राजसी ठाठ कह सकते हैं। फूलमाला पहनाने वाले स्त्री और पुरुषों के आक्रमण से बचकर निकल जाना कोई सुगम काम नहीं था। इसलिए सबके सम्मुख शिर झुका कर चलना ही श्रेयस्कर समझा गया, इसी मार्ग का अवलंब लेते हुये हम लोग कई प्लेटफ़ारमों को पार करके स्टेशन के सामने क्वीन्स गार्डन में लगाये हुये शामियाने

में पहुंचे। वहां वेद मंत्रों की, मंगल ध्वनि के बाद सार्वदेशिक सभा के प्रधान और कुछेक अन्य महानुभावों ने हम लोगों के स्वागत में वक्तृतायें दो। कुछेक ने कवितायें सुनाईं। अन्त में संक्षिप्त धन्यवाद सूचक मेरे भाषण के बाद वह प्रातः कालीन सभा विसर्जित हुई।

रात्रि में एक और विशाल सभा

रात्रि में गांधी मैदान में, समस्त सर्वाधिकारियों को अभिनन्दन पत्र देने के लिये, एक बहुत बड़ा सभा संगठित हुई। सहस्रों की संख्या में स्त्री पुरुष मौजूद थे। लोगों के उत्साह और प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। अभिनन्दन पत्र भेंट करने और उनके उत्तरों के दिये जाने के बाद वह सभा समाप्त हुई। इसके बाद आर्य समाज नये बांस की ओर से दिये हुये सहभोज में सब शरीक हुये। दूसरे दिन एक विशाल सार्वजनिक भोज में सबने भाग लिया। अनेक चित्रकारों ने इस अवसर पर फ़ोटो लिये।

सत्याग्रह के कार्य की समाप्ति

मेरे दृष्टि कोण से, देहली के उपर्युक्त कार्य के समाप्त हो जाने के बाद, हैदराबाद का आन्दोलन और सत्याग्रह काण्ड समाप्त हुआ। देहली ही से हमारी यात्रा शुरू हुई और यहीं पहुंचकर समाप्त हुई।

यू. पी. और पंजाब के कुछेक समाजों में जाना अनिवार्य समझा गया

पंजाब और संयुक्त प्रान्त से सत्याग्रह के काम में सबसे

अधिक सहायता प्राप्त हुई थी। इन्हीं दो प्रान्तों के आर्यसमाजों का आग्रह था कि विशेष स्थानों पर अवश्य सभी डिक्टेटरों को जाना चाहिये। जाना निश्चय हो गया। सबसे पहले मेरठ की बारी आई।

१—मेरठ में समारोह

२४ अगस्त को मेरठ पहुंचकर वहाँ ठहरना पड़ा। देहली से जब हम चले थे तो डिक्टेटरों की दो पार्टियां होगई थी। एक पार्टी जिसमें म० कृष्णजी आदि थे पानीपत के रास्ते से अंबाला गई। दूसरी मेरे साथ मेरठ आई थी। रात्रि में मेरठ नगर में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया था। पचीस हज़ार से कम उपस्थिति न होगी। सभा के शिष्टाचारानुसार प्रारंभिक वक्तृताओं के होने पर हमारी पार्टी के सर्वाधिकारी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया। समुचित उत्तरों के बाद सभा विसर्जित हुई। २५ अगस्त को हम लोग सहारनपुर के रास्ते से चले। हमें भी अंबाला पहुँचकर दूसरी पार्टी से मिल जाना था। रास्ते में दौराला, मुज़फ़्फ़रनगर, देवबंद सहारनपुर और जगाधरी आर्यसमाजों के आर्य भाई बहु संख्या में अपने अपने स्टेशनों पर उपस्थित थे। प्रत्येक जगह फूल फल आदि से सत्कार हुआ। आ० स० मुजफ़्फ़रनगर के सदस्यों ने सौ रुपये की एक थैली भी भेंट की, जो सार्व० सभा के कोष में दक्षिण प्रचार के कार्यार्थ भेज दिये गये। दोपहर को सब अंबाला छावनी पहुँचकर एकत्रित हो गये। स्टेशन ही पर आर्य समाज अंबाला

छावनी की ओर से बड़े स्केल पर स्वागत किया गया। इसी समाज की ओर से सबके भोजन का भी प्रबंध था। भोजन ट्रेन ही में करना पड़ा। अंबाला के अनेक भाई लुधियाना तक हमारे साथ गये। हम सब पेशावर ऐक्सप्रेस से लाहौर आ रहे थे। रास्ते में अंबाला शहर, लुधियाना, जालंधर और अमृतसर आदि पर उपर्युक्त भांति स्वागत हुआ।

लाहौर में समारोह

सायंकाल हम सब लाहौर पहुंच गये। उसी रात्रि में गुरुदत्त भवन के विशाल मैदान में सभा संगठित हुई। विशेष रीति से शामियाने आदि का प्रबंध किया गया था। सभा के "सभापति स्वामी सत्यानन्दजी थे। सभा में हम सबको अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये। अनेक वक्तृतायें हुई, कवितायें पढ़ी गईं हम लोगों के उत्तर और सभापति के अन्तिम भाषण के बाद सभा समाप्त हुई। यहाँ से प्रत्येक सर्वाधिकारी अपने अपने स्थानों को चले गये। मैं लाहौर से २६ अगस्त के सार्वजनिक भोज में शरीक होने के बाद जलंधर गया, वहाँ रात्रि की सभा में शरीक होकर २७ अगस्त को अमृतसर लौटना पड़ा। वहाँ आ० स० लोहगढ़ की ओर से बुलाई हुई सभा में भाग लिया गया। दोनों जगह अभिनन्दन पत्र लेकर समुचित उत्तर दिये गये, रात्रि में ज्वाला-पुर अपने आश्रम की ओर चल दिया।

ज्वालापुर वान प्रस्थाश्रम

२८ अगस्त की प्रातः काल ज्वालापुर पहुंचा। स्टेशन पर

आश्रम निवासियों के सिवा गुरुकुल कांगड़ी और ज्वालापुर महा विद्यालय के अध्यापक और ब्रह्मचारी स्वागत के लिये मौजूद थे। स्टेशन से आश्रम तक सबके साथ जुलूस की शक्ल में रास्ता तै करते हुये पहुँचे। आश्रम में सभा का आयोजन था। सभा में शरीक होकर गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर, और आश्रम तीनों की ओरसे पृथक् पृथक् अभिनन्दन पत्र लिये गये। धन्यवादसूचक समुचित उत्तर देने के बाद सभा विसर्जित हुई। आश्रम में दो दिन ठहर कर आश्रम तथा आर्य्यनगर का सब हाल मालूम किया गया। २६ अगस्त की रात में रामगढ़ के लिये यात्रा की गई।

नारायण आश्रम में पहुँचना

३० अगस्त को हलद्वानी और भवाली के स्वागत में भाग लेते हुये दिन के १ बजे रामगढ़ पहुँच गया। यहां पहुँच कर शान्ति के श्वास लेने नसीब हुये। एक वर्ष के संघर्षण के बाद यहां से प्रारम्भ की हुई यात्रा यहीं आकर ख़त्म हुई।

नारायण स्वामी हाई स्कूल रामगढ़

इस स्कूल की बुनियाद ग्राम निवासियों की जरूरत से पड़ी थी। हैदराबाद सत्याग्रह को समाप्त करके जब मैं रामगढ़ पहुँचा तो १५ सितम्बर १९३९ को रामगढ़ पट्टी के निवासियों ने एक विशाल सभा का आयोजन किया और अभिनन्दन पत्र उपस्थित करते हुये इच्छा प्रकट की कि इस सत्याग्रह के विजय के उपलक्ष में रामगढ़ में एक हाई स्कूल खोला जावे क्यों कि रामगढ़ के

चारों ओर आठ-आठ दस-दस मील तक कोई मिडिल स्कूल भी नहीं है। ग्राम निवासियों की वास्तविक आवश्यकता पर ध्यान देते हुये मैंने इस कार्य में उनकी सहायता करने का वचन देदिया। स्कूल के प्रारम्भिक कार्यों की पूर्ति करने के बाद पहली जुलाई को स्कूल की बुनियाद रक्खी गई। श्री पं० गोविंद बल्लभ पंथ ने जो कांग्रेस की गवर्नमेन्ट में इस प्रान्त के प्राइम मिनिस्टर थे सदिच्छा प्रकट करते हुये स्कूल के कार्यों में सहायता देने की जनता से अपील की। जनता ने भी जी खोलकर सहायता दी। स्कूल अब जुलाई ४३ ई० से हाई स्कूल होगया है। उसकी इमारतें भी लगभग २५ हजार रुपये की लागत से तय्यार होगईं। शिक्षा विभाग ने स्कूल के चलते कार्यों तथा इमारत के व्यय में सहायता देने का वचन दिया हुआ है। शिक्षा विभाग के उच्च कर्मचारियों की सम्मति है कि यह स्कूल कुमायूं के प्रथम श्रेणी के स्कूलों में से एक होगा। स्कूल में साधारण शिक्षा के सिवा, शहद निकालने, जिल्दें बांधने, सूत कातने आदि व्यवसायों की क्रियात्मक शिक्षा दीजाती है। स्कूल में अनेक सुधारोंके होने का कारण उसके योग्य मुख्याध्यापक तथा उनके सहयोगी अध्यापक हैं। स्कूल के इतने शीघ्र उन्नतावस्था को प्राप्त करने का कारण मुख्यतया निम्न सज्जन हैं:—

(१) श्री पं० गंगाप्रसाद रिटायर्ड चीफ़ जज प्रधान
(२) श्री ठाकुर दीवानसिंह मंत्री
(३) श्री ठाकुर बच्चीसिंह जी उप प्रधान तथा श्री पं० कमलापति जी आदि हैं।

स्कूल के लिये बोर्डिंग हाउस तथा अन्य कई इमारतें और क्रीडाक्षेत्र बनाना बाकी है। जनता ने जिस प्रकार अब तक सहायता दी है उससे यह आशा की जासक्ती है कि ये काम भी शीघ्र पूरे होजावेंगे।

रामगढ़ निवासियों ने स्कूल के साथ मेरा नाम जोड़कर केवल अपने प्रेम का परिचय दिया है। स्कूल वस्तुतः जनता की सहायता का पात्र है। उच्च राज कर्मचारियों ने स्कूल को देखकर समय समय पर अच्छी सम्मतियां दी हैं। स्कूल में धार्मिक शिक्षा दी जाती है और विद्यार्थियों के चरित्र को अच्छा बनाने की ओर विशेष ध्यान रक्खा जाता है।